समर्पण

सत्य अहिंसा के समु-

ज्ज्वल प्रतीक, प्रकाश-पुञ्ज

परम-पूज्य पुण्य-मूर्ति शासन

प्रभावक महास्थविर पद

विभूषित सद्गुरुवर्य श्रद्धेय

१००८ श्री ताराचंदजी महा

राज को जिन्होंने मुझ पामर

प्राणी को सत्य-धर्म के

संदर्शन कराये, उन्हीं का पवित्र

चरित श्रद्धा से विभोर होकर

श्रद्धांजलि रूप में सादर सभक्ति

-भाव समर्पित करता हूँ।

चरणसेवक—

हीरामुनि

प्रेरणात्मक धूनें

★

अमर पूज्य गुरु ताराचन्द ।
घर-घर में कर दो आनन्द ॥१॥

भव तारक तारा गुरुदेव ।
तन-मन से करता मैं सेव ॥२॥

दुर्गुण नाशक सद्गुण वृन्द ।
गुरु हमारे ताराचन्द ॥३॥

अमर गच्छ के ये सिनगार ।
जपत आप पावें सुखसार ॥४॥

नित प्रति उठ के करिये जाप ।
कटत-कष्ट तन-मन के पाप ॥५॥

सुगुरु नाम की फेरें माला ।
जाप नाम से मंगल माला ॥६॥

मन के मनोरथ पूरण वाला ।
तारा गुरु की फेरो माला ॥७॥

चरितनायक

[सिर्फ परिचय के लिए]

—: प्रकाशक के दो बोल :—

'जीवन-पराग' श्रमणसंघ के महामान्य महास्थविर मुनीश सद्गुरुवर्य श्री ताराचन्द्रजी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय है। महापुरुषों का पवित्र चरित्र माउन्ट एवरेस्ट की चोटी की भाँति उत्तुंग होता है, जिस पर चढ़ना हर एक व्यक्ति के लिए संभव नहीं। महास्थविरजी म० भारतीय सन्त-परम्परा के पुनीत प्रतीक थे। उनका उज्ज्वल चरित्र उन्हीं के अन्तेवासी शिष्य श्रीहीरा मुनिजी ने अंकित किया है। अन्तेवासी होने के नाते वे जीवन-चरित्र को लिखने में काफी सफल रहे हैं, ऐसा अधिकार की भाषा में कहा जा सकता है।

यह जीवन-पराग बहुत पहिले ही प्रकाशित हो जाना चाहिए था किन्तु सम्पादन में विलम्ब हो जाने से और प्रेस सम्बन्धी अड़चन से अत्यधिक माँग होने पर भी हम समय पर पाठकों की पुनीत सेवा में न पहुँचा सके, अतः इस विलम्ब के लिए पाठकगण हमें क्षमा करेंगे।

जैन साहित्य के यशस्वी लेखक सम्पादनकलाविशारद, पण्डित-प्रवर श्रीशोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने इसका सम्पादन और प्रूफसंशोधन किया और आयुर्वेदमार्तण्ड, प्राणाचार्य वैद्यावतंस महामहोपाध्याय राजमान्य राजवैद्य भट्टारक यतिवर्य श्री उदयचन्द्रजी महाराज ने भूमिका लिखने की कृपा की है। हम दोनों विद्वानों के प्रति सविनय आभार प्रदर्शित करते हैं।

अन्त में कृतज्ञता प्रकाशन का यह लोभ संवरण नहीं कर सकते कि प्रस्तुत प्रकाशन में ब्यावर निवासी सेठ मगनमलजी कुमट ने और जिन दानी महानुभावों ने आर्थिक सहयोग देकर अपनी अटूट श्रद्धा भक्ति प्रदर्शित की है, वह सब के लिए अनुकरणीय है।

मादरमल लोढ़ा	मगनलाल मेहता
मंत्री, अमर जैन ज्ञान-भंडार जोधपुर	मंत्री अमर जैन पुस्तकालय गोगुन्दा (मेवाड़)

२१)	सेठ भंवरलालजी सांखला	घटाटीया
२१)	,, मगनलालजी सोलंकी	देवास
२०)	,, मीश्रमचन्दजी मुलतानमलजी बाफणा	मोकलसर
२०)	, मेमीचन्दजी छुगमलजी लूंकड़	मोकलसर
१५)	, मुलकचन्दजी सवेरचन्दजी	बम्बई
१५)	,, लखमीलालजी हींगड़	गोराणा
१५)	,, दीपचन्दजी चौधरी	मादड़ा
१५)	, चुनीलालजी चौधरी	मादड़ा
१३)	, मोहनलालजी चौधरी	मादड़ा
११)	, मन्नालालजी *हिंगड़*	मादड़ा
११)	,, भोगड़लालजी बोरा	गोराणा
११)	, गीरधरलालजी मोदी	देवास
११)	,, अर्जुनलालजी चपलासिया	गोराणा
११)	*,, भंवरलालजी सेठ*	*बीरपुरा*
१०)	,, देवीचन्दजी सरेमलजी	मोकलसर
१०)	,, हरखुबाई	मोकलसर
४०)	नोट—आठ सज्जनों के ५-५ रुपये प्राप्त हुए हैं।	

अपनी बात

जीवन चरित मानव जीवन को सुमार्ग बताने के लिए पथ प्रदर्शक होते हैं। जीवन-चरित में वह शक्ति है, जो सोये हुए, गिरे हुए, उद्भ्रान्त जीवनयात्री में स्फूर्ति उत्साह और प्रेरणा का नवजीवन फूंक देता है। जीवन चरित मानव जीवन के चारित्र्य की दीवारों को मजबूत बना देता है। जीवन-चरित महापुरुषों का बोलता हुआ जीवन है जिससे मनुष्य हर घड़ी हर पल नित्यनूतन शिक्षा ले सकता है। जिस समाज और देश में जितने अच्छे और चारित्र्यशील पुरुषों के जीवन-चरित लिखे जाते हैं, वह समाज और देश उतना ही उन्नत माना जाता है। 'जीवनपराग' भी मानव जीवन के एक अमर यात्री का जगमगाता हुआ जीवन चरित है। मेरे पूज्य गुरुदेव श्रीताराचन्द्रजी महाराज की जीवन यात्रा का परिच्छिन्न दिग्दर्शन ही वस्तुतः 'जीवनपराग' है।

जयपुर में लालभवन के विशाल स्थानक में बैठा हुआ मैं एक दिन मनन चिन्तन कर रहा था। सहसा मेरे चित्त में यह स्फुरणा पैदा हुई कि क्यों न जैन समाज की चारित्र्यशील इस विभूति के जीवन की मधुर पराग जनता में विसरित करूँ? इससे मेरा भी जीवन उज्ज्वल बन सकेगा और अन्य अनेक लोगों को भी प्रेरणा मिल सकेगी। परन्तु बिना लिखे यह 'जीवनपराग' कैसे एकत्रित हो सकता था। लेखन का काम आसान नहीं है। मैंने अपनी बुद्धि के बाटों से अपनी शक्ति को तोला सहयोगी स्नेही गुरुभ्राताओं की ओर नजर डाली जीवन-चरित लिखने के लिए जिस अनुभव सामग्री और साहित्यिक साधनों की आवश्यकता थी उन पर दृष्टिपात किया मुझे चारों ओर से अनुकूल और उत्साहमय वातावरण नजर आया। बस मैंने लेखनी उठाई और जो जो बातें गुरुदेव के जीवन के सम्बन्ध में मुझे मिलती गई मैं उनका संग्रह और संकलन करता गया। लगभग सवा सौ पृष्ठ तक मैं लिख गया।

परन्तु आप जानते हैं कि श्रेष्ठ कार्यों में बहुत से विघ्न आया करते हैं। मेरे विषय में भी ऐसा ही हुआ। इधर मेरे स्नेही गुरुभ्राता श्रीचन्द्र मुनिजी की तबियत बिगड़ गई थी। उन्हें एपेंडिसाइटिस हो गया था। ऑपरेशन कराने के सिवाय कोई चारा न था। फलस्वरूप उनका ऑपरेशन हुआ। मुझे उनकी परि

चर्या में रुक जाना पड़ा। अतः लेखनी को विश्राम देना पड़ा। कुछ ही अर्से के बाद एकाएक गुरुदेव का स्वास्थ्य खराब होगया। बहुत ही शीघ्र लेखनी को कागज के घोड़े पर दौड़ाना चाहते हुए भी गुरुदेव के शुश्रूषा काम में लग जाने के कारण मुझे फिर लेखनी को अवकाश देना पड़ा। एक बार जब लेखनी रुक जाती है, तो फिर नौसीखिये लेखक के लिए उसका चलाना बड़ा कठिन हो जाता है। फिर भी मैंने हिम्मत नहीं हारी और ज्योंही अवकाश मिला, लिखता रहा। मैंने पहले जो कतिपय पृष्ठ लिखे थे उन्हें गुरुदेव को पढ़कर सुनाए।

जीवन चरित्र सारा लिखे जाने पर तैयार होगया तो मैंने स्थानकवासी जैनजगत के प्रतिभाशाली कलाकोविद कविरत्न उपाध्याय श्रीअमरचन्द्रजी महाराज को दिखलाया। उन्होंने देखकर शुभाशा व्यक्त की और मेरा उत्साह बढ़ाया। मेरा मानसमयूर उत्साह से नाचने लगा। फिर मैंने ऐतिहासिक तथ्य निरीक्षण की दृष्टि से श्रमणसंघ के माननीय मेवाड़ मन्त्री पं० पुष्कर मुनिजी म० को भी अवलोकन कराया। उन्होंने इसे आद्योपान्त देखकर संतोष प्रकट किया और जहाँ कहीं साम्प्रदायिक घटना चक्र में कुछ व्यत्यय होगया था वहाँ उन्होंने सुधार दिया। इस तरह यह 'जीवन पराग' लिखने का कार्य मैं पूरा कर सका।

यद्यपि मैं कोई लेखक नहीं हूँ और न ही मेरे में कोई विद्वत्ता है, फिर भी मेरे स्नेही साथी गुरुभ्राता श्रीदेवेन्द्र मुनिजी एवं गणेश मुनिजी की समय समय पर अमूल्य सूझबूझ एवं सहयोग मिलते रहे, इसलिए मैं इतना लिख सका। मेरे जीवन पुस्तक लेखन का यह प्रथम प्रयास है। इसलिए काव्य कलाविदों की दृष्टि से इसमें कई त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है।

पुस्तक क्या है? कैसी बनी है? इस सम्बन्ध में तो प्रेमी पाठकगण ही निर्णय करेंगे। फिर भी मैं इतना जरूर कह देना चाहता हूँ कि यह कोई उपन्यास नहीं है न कोई प्रेम कहानी है। यह तो जैन जगत के एक जगमग नक्षत्र की जीवनी का तेजोमय प्रकाश है। इसमें वह सत्य है, जो समाज को सेवाधर्म श्रमणधर्म विनय क्षमा दया धैर्य और इन्द्रिय विजय का अमरसंदेश देने में समर्थ है।

इस 'जीवन पराग' के लिखने में मैंने 'अमरसूरि काव्य' 'आचार्य सम्राट' 'शासन सम्राट' आदि पुस्तकों से काफी सहायता ली है, जिसके लिए मैं उनके लेखकगण मन्त्री श्रीपुष्कर मुनिजी एवं नारायणदासजी महाराज का हृदय से आभारी हूँ। साथ ही कवि श्रीजी महाराज एवं मेरे गुरुभ्राता युगल का सस्नेह सहयोग एवं परामर्श मुझे प्रस्तुत लेखन काम की पूर्ति पर पहुँचा सका है इस लिये उन्हें तो भुलाया ही कैसे जा सकता है? जैनसमाज के चिर परिचित

शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने इस पुस्तक का परिश्रमपूर्वक सम्पादन किया है, इसलिए उनकी सेवा भी विस्मृत कैसे की जा सकती है? इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप में किसी भी कृति या व्यक्ति से किसी भी प्रकार का सहयोग मिला हो तो मैं उन सब महानुभावों का कृतज्ञ हूँ।

मैं चाहता था कि गुरुदेव के रहते हुए ही मैं उनके जीवनचरित को पूर्ण करके प्रकाशित पुस्तक के रूप में देख सकूँ लेकिन भाग्य में कुछ दूसरा ही बदा था। गुरुदेव के आकस्मिक महाप्रयाण ने मुझे इस लाभ से वंचित कर दिया। यही कारण है कि पुस्तक के प्रकाशन में इतना विलम्ब हुआ।

आशा है 'जीवन पराग' जनमन जागरण आत्मोत्थान समाज सुधार और राष्ट्र कल्याण के लिए अमित उपकारक एवं नवचेतना प्रदायक होगा। श्रद्धालु पाठक-भ्रमरों ने अगर 'जीवनपराग' का समुचितरूपेण रसपान किया और जीवन में नई चेतना प्राप्त की तो मैं अपना यह क्षुद्र प्रयास सफल समझूंगा। इत्यलं अतिविस्तरेण।

आषाढ शुक्ला ५ सं० २०१६
बाखोर गुरांसा भवन
जोधपुर (राज.)

—हीरा मुनि

भूमिका

पर्वत की दुर्गम घाटी में एक फूल खिलता है, उसकी भीनी-भीनी सुगन्ध और पराग चारों ओर फैलती है। वह फूल कहीं अपनी सुगन्ध का ढिंढोरा पीटने नहीं जाता कहीं यह नहीं कहता फिरता कि मेरी सुगन्ध बहुत तेजी से महक रही है, भ्रमरो! आओ सुगन्ध ले जाओ। किन्तु सुगन्ध और पराग के कद्रदां भ्रमर अपने आप उस फूल की पराग और सुगन्ध लेने के लिए आते हैं और गुंजार करते हुए चले जाते हैं। वायु आती है और अपनी मन्द गति से सुगन्ध के कणों को उड़ा कर ले जाती है, दूर-दूर तक ले जाती है। ठीक इसी प्रकार संसार की दुर्गम घाटी में जीवन सुगन्ध को धारण किये हुए एक महान् मानव खिलता है। वह कहीं अपनी प्रसिद्धि का ढिंढोरा पीटने नहीं जाता कहीं प्रचार-प्रसार नहीं करता परन्तु कद्रदां मानवभ्रमर उसकी जीवन पराग चुनने के लिए स्वयं उमड़ आते हैं। यही मानव जीवन की सबसे बड़ी विशेषता रही है और है।

अरावली की पवित्र पर्वतमालाओं से घिरे हुए ऐसे एक दुर्गम प्रदेश में एक नरपुंगव का जन्म होता है। अपने पूर्वजन्म के सुसंस्कारों की सुन्दर पराग उसके जीवन में ओतप्रोत है। लता की तरह माता-पिता उस मानव पुष्प को धारण-पोषण और शिक्षण संस्कार देने को तैयार रहते हैं। यही मानव पुष्प आगे चलकर 'ताराचन्द्रजी महाराज' के नाम से जगत् में सुप्रसिद्ध होता है। पर्वतीय दुर्गम घाटी में पैदा होने वाले उस फूल की तरह आपने मानव जीवन को कृतार्थ किया और लाखों व्यक्तियों के लिए प्रेरणापात्र बन गये।

महास्थविर मुनि श्री ताराचन्द्रजी महाराज एक ऐसे ही अनुपम व्यक्तित्व के धनी थे। उनमें अद्भुत आकर्षण था। उनकी बोली में मधुरता घोली हुई थी। उनके प्रत्येक रहन-सहन में कूट-कूट कर करुणा भरी हुई थी। मेरा उक्त मुनिराजश्री से लगभग तीस वर्ष का परिचय था। वे जब भी जोधपुर आते तो मुझ से मिले बिना न रहते। उनके हृदय में छलाछल प्रेम भरा था उनकी आँखों में अमृत बसा हुआ था। मैं ठहरा एक वैद्य! धनी निर्धन संस्कारी असंस्कारी, सन्त, महात्मा सभी प्रकार के लोगों से मेरा परिचय होता है। मैं नाड़ी वैद्य होते हुए भी मनुष्य की मनोभावनाओं को बहुत दूर तक पहिचान लेता हूँ। मुनिवर्य श्री ताराचन्द्रजी महाराज के प्रथम संपर्क में ही मैंने उन्हें सच्चे सन्त के रूप में देखा। "सन्त

शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने इस पुस्तक का परिश्रमपूर्वक सम्पादन किया है, इसलिए उनकी सेवा भी विस्मृत कैसे की जा सकती है ? इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप में किसी भी कृति या व्यक्ति से किसी भी प्रकार का सहयोग मिला हो तो मैं उन सब महानुभावों का कृतज्ञ हूँ।

मैं चाहता था कि गुरुदेव के रहते हुए ही मैं उनके जीवनचरित को पूरा करके प्रकाशित पुस्तक के रूप में देख सकूँ लेकिन भाग्य में कुछ दूसरा ही बदा था। गुरुदेव के आकस्मिक महाप्रयाण ने मुझे इस लाभ से वंचित कर दिया। यही कारण है कि पुस्तक के प्रकाशन में इतना विलम्ब हुआ।

आशा है, 'जीवन पराग' जनमन जागरण आत्मोत्थान समाज सुधार और राष्ट्र कल्याण के लिए अमित उपकारक एवं नवचेतना प्रदायक होगा। श्रद्धालु पाठक-भ्रमरों ने अगर 'जीवनपराग' का समुचितरूपेण रसपान किया और जीवन में नई चेतना प्राप्त की तो मैं अपना यह क्षुद्र प्रयास सफल समझूँगा। इत्यलं अतिविस्तरेण।

आषाढ़ शुक्ला ४ सं० २०१६
चार्णोद गुरांसा भवन
जोधपुर (राज०)

विषय प्रवेश

विशाल भूतल पर असंख्य प्रकार के प्राणी दृष्टिगोचर होते हैं। बौद्धिक दृष्टि से मानव इन सब में श्रेष्ठ है। मानव की यह सर्वश्रेष्ठता शास्त्रों से और हमारे अनुभव से भी सिद्ध है। शास्त्र में लिखा है—'दुल्लहे खलु माणुसे भवे'—मनुष्यजन्म निश्चय ही दुर्लभ है। हमारा अनुभव भी यही है। परन्तु प्रश्न यह है कि मानवजीवन की महत्ता किस बात में है?

यह एक सनातन प्रश्न है। अतीतकालीन दिव्यद्रष्टा महात्माओं ने इस प्रश्न का यही उत्तर दिया है कि इसी जीवन में आत्मा अपने अनन्त ज्योतिमय स्वरूप की उपलब्धि करता है और आध्यात्मिक विकास की चरम सीमा पर पहुँच सकता है। जिस अव्याबाध सुख और अखण्ड शान्ति के लिए प्राणी मात्र छटपटा रहा है उसे मानव-तन के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। संक्षेप में आध्यात्मिक परिपूर्णता अनादिकालीन भवभ्रमण के चक्र की परिसमाप्ति और जीवन की चरम कृतार्थता मानवजीवन में ही प्राप्त होती है।

हृदय नवनीत समाना" इस उक्ति के अनुसार वास्तव में उनका सन्त हृदय मक्खन के समान कोमल था। उनका शांत स्वभाव और प्रसन्न मुद्रा देखते ही बनती थी। सरल स्वभाव और नम्रता ने उनके व्यक्तित्व में चार चांद लगा दिये थे। एक सम्प्रदाय में रहते हुए और विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी होते हुए भी उनमें साम्प्रदायिकता बहुत कम थी। मिलनसारी तो उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। विक्रम सम्वत् २००७ में जब उन्हें अर्शरोग हो गया था तब उनका उपचार करने का मुझे ही सौभाग्य मिला था। संयोगवश उन्हें मेरी दवा से शीघ्र आराम हो गया। उस समय वे मेरी हवेली में सुखपूर्वक विराजकर मारवाड़ सादड़ी चातुर्मास के हेतु पधारे थे उस समय के दर्शन के बाद फिर आपका मिलन नहीं हो पाया।

उसी महामुनि का जीवन-चरित्र उनके शिष्य श्री हीरामुनिजी ने 'जीवन पराग' के नाम से लेखनी की अद्भुत छटा से सुशोभित और गुम्फित किया है। महान् व्यक्तियों के जीवन-चरित्र सर्व सामान्य जनता को सुशिक्षा सत्प्रेरणा और सुसंस्कार देने में अमूल्य योगदान देते हैं। उक्त महामुनिजी का जीवन-चरित्र भी जगत् के सभी सामान्य व्यक्तियों के लिए प्रेरणादायक, शिक्षादायक और संस्कार प्रदायक है, इसमें कोई संदेह नहीं। लेखक की शैली संतोषजनक है। लेखक ने किसी के प्रति व्यक्तिगत या साम्प्रदायगत कोई आक्षेप नहीं किया है। पुस्तक के प्रत्येक प्रकरण में लेखक ने उक्त महामुनिजी के जीवन की गूढ़ गुत्थियाँ खोलकर रख दी हैं। लेखक मुनि ने पुस्तक में गुरुभक्ति की अजस्र धारा बहाई है। पुस्तक के अन्त में साधु-साध्वियों और धर्मप्रेमी श्रावकगणों की श्रद्धांजलियाँ दी गई हैं, जो पठनीय हैं। परिशिष्ट विभाग में दिया हुआ भूतपूर्व स्व० अमर सूरि सम्प्रदाय का संक्षिप्त उल्लेख भी मननीय है।

मैं आशा करता हूँ कि यह जीवन-पराग जन-जन के हृदय को सुगन्धित करे, जनता इस 'जीवन-पराग' से अपना जीवन पुण्यमय बनाए, धन्य बनाए, यही हार्दिक अभिलाषा है। मैं उक्त महामुनि के प्रति पूर्णतया कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे अपने वैद्यकीय जीवन में काफी सत्प्रेरणाएँ मिली हैं। पाठकवर, अब पुस्तक खोलिए, गहराई से पढ़िए और जीवन में सत्प्रेरणा लीजिए।

विनीत—
पं० उदयचन्द्र भण्डारक

पूर्वकृत सुकृत के प्रभाव से वि० सं० १६४० की आश्विन शुक्ला चतुर्दशी के दिन माता ज्ञानकुँवर ने एक अतिशय सौम्य और तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। शरद् के निरभ्र, निर्मल गगन ने उसे प्रकाश दिया स्वच्छ दिशाओं ने उसे पावनता प्रदान की और दूसरे ही दिन शारदीय सुधाकर ने अपना सम्पूर्ण स्वरूप प्रकट करके अखण्ड सौम्यता भेंट की।

यथासमय बालक का नाम हजारीमल रक्खा गया। बालक के शरीर में अनेक शुभ लक्षण होने से उसके प्रतापी होने का अनुमान होता था किन्तु उस समय यह किसे ज्ञात था कि निकट भविष्य में वह वैरागी बनेगा और आगे चलकर समग्र सम्प्रदाय के सहस्रों साधु-साध्वियों का उपासनीय महास्थविर बन जायगा।

बाल्यावस्था—

चंचलता बाल्यावस्था का प्रकृतिप्रदत्त गुण है। बालक की शारीरिक और मानसिक स्फूर्ति उसके चांचल्य से ही अभिव्यक्त होती है। हमारे चरितनायक में वह स्फूर्ति असाधारण थी। स्वयं उन्होंने कई बार अपने शैशवकाल की चंचलता का बखान किया था। तीन वर्ष की उम्र में आप इतने नटखट थे कि माता जब पानी भरने जाती तो आपके पाँव को रस्सी द्वारा खंभे से बाँध कर जाया करती थी।

अहा कितनी प्यारी और मधुर प्रतीत होती होगी वह चंचलता माता-पिता को! ऊपर से खीझते, चिढ़ते परन्तु भीतर ही भीतर अपूर्व सुख की अनुभूति करते। वास्तव में आपकी चंचलता माता-पिता के जीवन को मोदमय बना देती। उसे देख वे निहाल हो जाते।

हजारीमलजी एकलौती सन्तान थे। रजनी में व्याप्त निबिड़ अन्धकार को दूर करने के लिये एक ही चन्द्रमा पर्याप्त होता है। माता पिता के हृदयाकाश को प्रकाश और उल्लास से परिपूर्ण करने के लिए आप अकेले ही बस थे। आप ही माता-पिता के समग्र स्नेह के केन्द्र थे।

मानव जीवन के निर्माण में निसर्ग का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। उसके अदृश्य रूप से किये गये कार्यकलापों का पता वही पा सकते हैं जो स्थूल को भेद कर सूक्ष्म तक पहुँचने वाली पैनी बुद्धि के धनी हों। बालक हजारीमल को भविष्य में महान् सन्त बनाने का कार्य प्रकृति अलक्षित रूप से कर रही थी। ममता का बंधन तोड़े बिना प्राय कोई सन्त का पद प्राप्त नहीं कर सकता। चरितनायक के जीवन में माता और पिता की ममता का ही बंधन था। प्रकृति ने उसमें से

जन्म और बाल्यावस्था

कहे 'पुष्कर' मुनि भारत में फिर आया,
कोई देश करे नहीं मेवाड़ की होड़ है।

वास्तव में मेवाड़ मही की महिमा असाधारण है। प्रकृति ने अपने सौन्दर्य का सर्वोत्तम भाग यहाँ बिखेर दिया है। भारतीय गौरव की रक्षा करने का सर्वाधिक श्रेय इसी वीरभूमि को प्राप्त है। स्वाधीनता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए मेवाड़ के वीरों ने जिस प्रकार हँसते-हँसते अपने प्राणों का उत्सर्ग किया, विश्व के इतिहास में उसकी कोई तुलना नहीं है। मेवाड़ी वीरों ने अपने एक स्वतन्त्र मूलमंत्र की रचना की—

जो दृढ़ राखे धर्म को, ताहि राखे करतार।

इस धर्म की रक्षा के लिए मेवाड़ की वीरांगनाओं ने भी अपने प्राणों को तृणवत् समझा। महाराणा प्रताप जैसे नरसिंह यहाँ उत्पन्न हुए।

मेवाड़भूमि जैसे शूरता के लिए प्रसिद्ध है, उसी प्रकार धर्मभाव के लिए भी। इतर प्रान्तों की अपेक्षा यहाँ अधिक धर्मजागृति है। मेवाड़ ने अनेक सन्त-महात्माओं को जन्म दिया है।

मेवाड़ की एक सुन्दर पहाड़ी पर बम्बोरा ग्राम बसा हुआ है। यहाँ का नैसर्गिक सौन्दर्य अद्भुत है। ग्राम के सामने 'जयसमन्द' नामक सरोवर है, मेवाड़ का सबसे बड़ा सरोवर। वह बम्बोरा का पादप्रक्षालन करता है। ग्राम के चारों ओर कोट बना है। वनराज ही उसके द्वारपाल हैं। बम्बोरा की शस्य-श्यामला भूमि मानव-मन को अनायास ही मुग्ध कर लेती है।

बम्बोरा में ओसवालों के सवा सौ घर हैं और वे सब स्थानकवासी जैन हैं। यहाँ के जैन समाज में धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा भक्ति और रुचि है।

इसी ग्राम में शिवलालजी गुन्देचा नामक एक साहूकार निवास करते थे। बड़े दानी परोपकारपरायण और पुण्यशाली पुरुष थे। पंचायत में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। आपकी पत्नी श्री ज्ञानकुँवर बाई थी। दान पुण्य और धर्माचरण में उनकी नैसर्गिक रुचि थी। पतिपरायणता उदारता की प्रतिमूर्ति और शान्तिशीला थी।

उस समय पढ़ने-लिखने के साधन आज की भाँति सुलभ नहीं थे। लकड़ी की पट्टी पर खड़िया से लिखा जाता था। कागज बहुत मँहगा मिलता था और उसकी भी प्रचुरता नहीं थी। फिर भी उस समय के विद्यार्थी मोती जैसे अक्षर लिखते थे। शिक्षक लिपि की ओर भी विशेष ध्यान देते थे। आज की शिक्षा में लिपि की ओर नहीं के बराबर ध्यान दिया जाता है और इसी कारण अधिकांश के अक्षर बहुत रद्दी होते हैं। हमारे चरितनायक की हस्तलिपि अत्यन्त सुन्दर होती थी, देखते ही मन मुग्ध हो जाता था।

नौ वर्ष की उम्र तक आपने शाला में अच्छा अभ्यास कर लिया। पुनीत आत्मा के मन-मन्दिर में सरस्वती विराजमान रहती है। तनिक से परिश्रम से वह जागृत होकर जगमगाने लगती है। स्वल्प काल में ही चरितनायकजी ने जो योग्यता प्राप्त की उससे आपकी माताजी को ही नहीं, शिक्षकों को भी अचम्भा हुआ।

सन्तसमागम का सुयोग—

'क्षणमपि सज्जनसङ्गतिरेका,
भवति भवार्णवतरणे नौका।'

परिवर्तनशील संसार में मुनिसमागम मानव के लिए भवसागर को पार करने की सुलभ नौका है। पूर्वकाल में जिन्होंने सुकृत किया है, उन्हीं को इस प्रकार के समागम की आन्तरिक रुचि उत्पन्न होती है।

माता ज्ञानकुँवर बाई को परम्परा से जिनधर्म की प्राप्ति हुई थी। आपके पितृकुल में और श्वसुरकुल में भी स्थानकवासी जैनधर्म की आराधना होती थी और लगातार सात पीढ़ियों से मुँहपत्ती बाँधकर सामायिक करने की परम्परा चली आ रही थी। अतएव अनायास ही आपका जीवन धर्मक्रियामय बन गया था। परन्तु माताजी का क्रियाकाण्ड ज्ञानहीन नहीं था। उसके पीछे ज्ञान की ज्योति प्रदीप्त थी। उन्हें जैनधर्म का अच्छा ज्ञान था। थोकड़ों और बोलों के माध्यम से उन्होंने तत्त्व का बोध प्राप्त किया था। प्रायः प्रतिदिन वे व्याख्यान सुनने जाया करती थीं।

चरितनायकजी की मातेश्वरी की एक विशिष्टता यह थी कि उनका धर्म ज्ञान और धर्मकृत्य धर्मस्थानक तक ही सीमित नहीं था। वह उनके जीवनव्यवहार में एकाकार हो गया था। उनके प्रत्येक व्यवहार में धर्म का पुट स्पष्ट परिलक्षित होता था। उनका चित्त आकाश की भाँति निर्मल और उदार था। नवनीत की भाँति मृदु था। वाणी में सुधा का माधुर्य था। स्वभाव में अद्भुत सहृदयता

एक बंधन काट दिया। आप जब सात वर्ष के हुए तो पिताजी परलोक सिधार गये।

पिता का स्वर्गवास एक भयानक वज्रपात था। उससे आपकी माता का कलेजा दहल उठा। बालक के संरक्षण संगोपन और शिक्षण की कठिन समस्या उनके सामने खड़ी हो गई। मगर मेवाड़ की नारी का हृदय कायर नहीं होता। फिर ज्ञानकुँवर बाई को तो संसार के स्वरूप का समुचित ज्ञान था। सन्तों की उपासना से उन्होंने जगत् की क्षणभंगुरता को समझ लिया था। अतएव धैर्य के साथ बालक का मुख देखकर, पतिवियोग का दुःख सहन किया।

पिताजी के दिवंगत होने के पश्चात् बालक का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व माताजी पर आ पड़ा। तब उन्होंने विचार किया—बालक की समुचित शिक्षा ग्राम में न होगी अतएव मुझे किसी नगर का आश्रय लेना चाहिए। मेवाड़ की राजधानी उदयपुर ही निकटतर नगर था अतएव माता ज्ञानकुँवर ने वहीं आकर बस जाने का निश्चय कर लिया।

उदयपुर को निवासस्थान बनाने का एक कारण यह भी था कि वहाँ प्रायः सन्त-सतियों का पदार्पण होता ही रहता था और ज्ञानकुँवर बाई को सन्त-सतियों की उपासना का बड़ा चाव था। तिस पर मौजूदा अवस्था में तो उसकी और अधिक आवश्यकता थी। आर्यनारी के लिए सन्तसंगति ही वैधव्य का सबसे उत्तम सहारा है।

पोशाल प्रवेश—

चरितनायक के जमाने में आज जैसे स्कूल हाईस्कूल और कालिज नहीं बने थे। उस समय पोशालें ही अध्ययन के प्रधान केन्द्र थे। आप उदयपुर में ही एक पोशाल में प्रविष्ट हुए। पुनर्जन्मवाद के सिद्धान्त के अनुसार बालक अनेकानेक पूर्वभवों के संस्कार साथ में लेकर आता है। हमारे चरितनायक अतीतकालीन पुनीत साधना के संस्कारों से सम्पन्न थे। अतएव आपकी बुद्धि बड़ी कुशाग्र थी। निमित्त पाकर उसका दिन दूना रात चौगुना विकास होने लगा। अपनी कक्षा के आप सर्वोत्तम छात्र थे। शिक्षक की आज्ञा का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। परिश्रमशीलता आपके स्वभाव का ही एक अंग थी।

अच्छे विद्यार्थी की सभी विशेषताएँ आपमें पाई जाती थीं। नागा किये बिना ठीक समय पर शाला में पहुँचते और रगड़ों-झगड़ों से चुगली निन्दा और ईर्षा आदि दोषों से कोसों दूर रहते। खेलकूद की अपेक्षा पढ़ने में अधिक रुचि रखते थे। सदाचार और सद्व्यवहार आपके जीवन का मूल मंत्र था।

मीठा प्रेमप्याला

पूज्यश्री के प्रवचन-पीयूष की सरासपरिपूर्ण धारा प्रवाहित हो रही थी। सहस्रों नर-नारी मंत्रमुग्ध-से रस का पान कर रहे थे। पूज्यश्री के भाव इस प्रकार थे—

'धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।

जीव मात्र जीवित रहना चाहता है। उनके समग्र प्रयासों का प्रधान ध्येय जीवन की रक्षा करना है। इस ध्येय को पूर्ण करने के लिए प्राणी भौतिक पदार्थों का सहारा लेता है। कोई देवी देवताओं की तो कोई वैद्यों की शरण ग्रहण करता है। परन्तु अनुभव बतलाता है कि अन्तत: सारे प्रयास असफल सिद्ध होते हैं और प्राणी मात्र को मरणशरण होना पड़ता है। केवल एक ही वस्तु है जो इह-परलोक में हमारी रक्षा कर सकती है और वह है धर्म। मगर धर्म उसकी ही रक्षा करता है जो धर्म की रक्षा करता है।

पूज्यश्री ने पुन: कहा—'आत्मा अनादि काल से भवभ्रमण कर रहा है। आत्माराम वासनाओं के जाल में फँसा है। राग और द्वेष आत्मा के प्रधान शत्रु हैं। इनका अन्त करने वाला भव्य जीव ही भवचक्र से मुक्ति पाता है।

मनुष्ययोनि आत्मिक उत्थान के लिए सर्वोत्तम साधन है। किन्तु उसकी स्थिति अल्पकालीन है—

अप्पं च खलु आउयं इहमेगेसिं माणवाणं।

आचारांग प्र० श्रु० अ० २

यह अल्पकालीन आयु भी अनेकानेक विघ्नों से परिपूर्ण है। ठीक ही कहा है—'अस्सरण काला बहुवरण विग्घा'। कौन कह सकता है कि किसका जीवन किस क्षण समाप्त हो जायगा? अतएव अगले क्षण का भरोसा न करके आत्मकल्याण के कार्य में संलग्न हो जाना ही विवेकशीलता है।'

जो महाभाग प्राप्त सुयोग का सदुपयोग करके जिनप्रणीत धर्म का आचरण करते हैं, उन्हें मानव ही नहीं देवदानव भी शिर झुकाते हैं। धर्म के प्रभाव से जिसकी हृत्तंत्री एक बार झंकृत हो उठती है, उसके जीवन की भूमिका इतनी निर्मल सरल और प्रशस्त हो जाती है कि उसका एक-एक वाक्य देश और समाज की उन्नति का निदर्शक हो उठता है।

थी। अभिप्राय यह कि उनके जीवन के सभी पक्षों का साथ-साथ विकास हुआ था—मस्तिष्क का, हृदय का, बुद्धि का और भावना का।

ज्ञानकुँवर बाई भलीभाँति समझती थी कि बालक के शरीर के निर्माण में ही मातृधर्म की कृतार्थता नहीं है, बालक में सुसंस्कारों का बीजारोपण किये बिना मातृधर्म अधूरा रहता है। इस विचारधारा के कारण वे अपने प्रिय पुत्र को स्वयं धर्म का अध्ययन कराती और नमस्कारमंत्र का शुद्ध जाप करवाती थीं। छोटी-सी मुँहपत्ती बाँधकर बालक हजारीमल जब सामायिक में भावपूर्ण मुद्रा में होते तो ऐसे लगते जैसे पर्वता मुनि पुन अवतरित हो आये हों।

इस प्रकार चरितनायक के जीवन का दिव्य और भव्य भवन निर्मित होता जा रहा था। इसी समय एक ऐसी घटना घटी जिससे आपके जीवन ने नवीन मार्ग ग्रहण किया और जीवन में एक विशिष्ट क्रान्ति आ गई।

उदयपुर में स्थानकवासी जैनों के एक हजार घर हैं। उस समय भी वहाँ स्थानकवासी सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव था। अक्सर सन्तों और सतियों का पदार्पण होता रहता था।

वि० सं० १९४९ में पूज्य श्री पूनमचन्दजी महाराज साहब अपनी शिष्य-मण्डली के साथ पधारे। महासती श्री गुलाबकुँवरजी तथा श्री छगनकुँवरजी आदि साध्वियाँ भी विराजमान थीं। श्रावकों और श्राविकाओं की धर्मभावना जागृत होने लगी। धर्म-सरोवर में वपदेश के पावन पवन से उत्साह की उदात्त ऊर्मियाँ उठने लगीं।

हमारे चरितनायक उस समय उम्र से छोटे थे किन्तु दिल और दिमाग से बहुत बड़े थे। आप प्रतिदिन पूज्यश्री का व्याख्यान सुनते और मुखवस्त्रिका बाँधकर पाट के निकट ही बैठते थे। व्याख्यान श्रवण करते समय आपकी एकाग्रचित्तता असाधारण रहती थी। निद्रा तन्द्रा या आलस्य समीप भी नहीं फटकने पाता था। बगल में बैठे बुजुर्ग जब निद्रा से गर्दन झुकाते तो आप उन्हें सावधान कर दिया करते थे। आपकी गहरी धर्मनिष्ठा वाक्पटुता और विनय विवेकशीलता ने पूज्यश्री के मन को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था।

आलित्ते णं ! भंते ! लोए,
पलित्ते णं भंते ! लोए,
आलित्तपलित्ते णं भंते! लोए।

यह संसार जन्म-मरण के दावानल में सुलग रहा है, और नाना प्रकार की आधि-व्याधियों से संतप्त हो रहा है, यह तथ्य जब से मैंने समझा है तभी से मैंने दीक्षा लेने का विचार किया है। मुझे गृहस्थ जीवन में किसी प्रकार का अभाव नहीं है। माताजी मुझ पर असीम स्नेह की वर्षा करती रहती हैं। मुझे किसी ने बहकाया भी नहीं है। यह मेरी अन्तरात्मा की पुकार है।

पूज्यश्री अत्यन्त अनुभवी और प्रभावशाली महापुरुष थे। बालक के हृदयोद्गार सुन उन्होंने सोचा—यह कोई निकटभव्य आत्मा है। वहाँ उपस्थित सभी उनकी ओर अनिमेष दृष्टि से देखने लगे। सब के हृदय सानन्द विस्मय से व्याप्त थे। पूज्यश्री ने माता ज्ञानकुँवर की ओर देखकर तथा अंजलि बाँध कर सामने खड़े बालक की तरफ इशारा करके कहा—सुनती हो बहिन हजारीमल आज क्या कह रहा है ?

ज्ञानकुँवर बाई सहर्ष किन्तु तनिक गंभीर होकर बोली—हाँ गुरुदेव ! आपका अनुग्रह रहेगा और हजारीमल की यह उच्च भावना स्थिर रहेगी तो मैं अपने को धन्य समझूंगी। मैं स्वयं भगवती दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूँ सिर्फ इस बालक के लिए ही रुकी हूँ।

पूज्य श्री—'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।' जैसे सुख हो वही करो। धर्मकार्य में विलम्ब न करो। अल्पकालीन जीवन बहुविध विघ्नों से भरा पड़ा है। हजारीमल के चित्त में वैराग्य भाव उदित हुआ है तो इसे सन्तों की सेवा में रहने दो।

ज्ञानकुँवर बाई ने अपने प्रिय पुत्र को पूज्य श्री की सेवा में रख दिया। वह दो बार भोजन के लिए माता के पास आता और शेष समय पूज्य श्री की सेवा में ही व्यतीत करता था। ज्ञान-ध्यान की ओर ज्यों-ज्यों भावना बढ़ती गई, मोह का आवरण क्षीण होता चला गया। कुछ ही दिनों में सन्तों को ही चरितनायक ने अपना परिवार बना लिया।

चरितनायक की कसौटी—

वैरागी हजारीमलजी के मामा सेठ हंसराजजी भंडारी अमरावती में रहते थे। साधारण श्रेणी के व्यापारी थे, परन्तु पंचों में गिने जाते थे। उनकी ख्याति

मानवजीवन को सशक्त और संस्कारी बनाने के लिए धन की अपेक्षा धर्म की अधिक आवश्यकता है। अतएव जीवन का प्रत्येक क्षण धर्ममय ही व्यतीत होना चाहिए।

अमरता के पथ पर—

पूज्यश्री का प्रवचन सुनकर भद्रहृदय बालक हजारीमल के विचारों में एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ। उसे पुन पुनः यही विचार आता कि मैं अपने जीवन को किस प्रकार कृतार्थ करूं ? वह संसार की असारता एवं धर्म की मंगलकरता पर गम्भीर विचार करने लगा। उसे संसार के प्रपंच बन्धन रूप दृष्टिगोचर होने लगे।

बालक हजारीमल के अन्तःकरण में जन्मजात धर्मश्रद्धा के जो सजीव बीज विद्यमान थे पूज्यश्री की उपदेशवर्षा से वे अंकुरित होकर लहलहाने लगे। उसे गुरुदेव के प्रति विशेष आकर्षण उत्पन्न हो गया और वह बारंबार धर्मस्थान में जाने लगा।

चरित्रनायक के व्यवहार में जो विशेषता आई थी वह माता ज्ञानकुँवर की दृष्टि से छिपी नहीं रही। उन्होंने सोचा बहुत अच्छा हो रहा है। पुण्योदय से गुरुदेव का पदार्पण हुआ है। ऐसे त्यागी तपस्वी महामुनियों की सेवा में रहने से मेरे पुत्र का कल्याण ही होगा। स्वयं ज्ञानकुँवरजी नित्य प्रातः-सायं महासती श्री छगनकुँवरजी म० की सेवा में जाया करती थी और धर्मक्रिया करती थी। सतीजी के सदुपदेश से ज्ञानकुँवरजी को विशेष ज्ञान की प्राप्ति हुई। संसार से विरक्ति उत्पन्न हो गई। उन्होंने पुत्र को पूज्यश्री की सेवा में रख कर स्वयं संयम ग्रहण कर लेने का निश्चय कर लिया।

श्रावण की सुहावनी ऋतु थी। शीतल वायु के साथ नन्हीं २ बूंदें बरस रही थीं और इधर स्थानक में पूज्यश्री के मुखचन्द्र से तत्त्वामृत की वर्षा हो रही थी। शिष्यगणों में से कोई स्वाध्याय कर रहा था तो कोई आत्मध्यान में लीन हो रहा था। महासती श्री छगनकुँवरजी श्री गुलाबकुँवरजी आदि सन्मुख विराजमान थीं। ज्ञानकुँवरजी साथ थीं और हमारे चरित्रनायक भी तत्त्वचर्चा का आनन्द लूट रहे थे। उसी समय उन्होंने अवसर देखकर, पूज्यश्री से सविनय निवेदन किया—

भंते ! संयम ग्रहण करके मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ। मैं सामायिक करता हूँ, प्रतिक्रमण सीखता हूँ। रात्रिभोजन का त्याग कर चुका हूँ। आपके मुखारविन्द से मैंने सुना है—

देवकी की कथा सुनाकर सान्त्वना देने का प्रयत्न किया, परन्तु वह भी निष्फल हुआ। छह महीने बीत गये। कोई सहायक न मिला जो इस परिस्थिति का अन्त लाता।

उस समय उदयपुर में स्थानकवासी जैनों का अच्छा वर्चस्व था। मेहता परिवार का महाराणा साहब से घनिष्ठ सम्पर्क था और सत्ता भी उनके हाथ में थी। वे ड्योढीदार कहलाते थे जो मेवाड़ में एक सम्मानित पद माना जाता है।

मानकुँवर बाई की सारी स्थिति जब श्रावकों को ज्ञात हुई तो वे मेहता-परिवार से मिले। उन्हीं की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधिमंडल तत्कालीन मेद पाटाधीश महाराणा फतहसिंहजी से मिला। महाराणा साहब स्वयं धर्मप्रिय शासक थे। प्रतिनिधिमंडल की बात सुनकर उन्होंने आदेश दे दिया—'भगवान् की भक्ति में जीवन अर्पण करने से कोई रोक नहीं सकता। हजारीमल और उसकी माता पर कोई सरकारी प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता। माता-पुत्र को प्रेम पूर्वक मिलने दिया जाय। कोई बाधक न बन।

महाराणा का इस आशय का आदेशपत्र लेकर प्यारचन्दजी मेहता कमरला गये और चरितनायक को उदयपुर ले आये।

माता और पुत्र के सम्मिलन का वह अवसर अपूर्व था। इतना भावमय कि लेखिनी उसे शब्दों में अंकित नहीं सकती। सामान्य सुख-दुख की बातें होने के पश्चात् माता ने बालक के माथे पर दुलारभरा हाथ फेरते-फेरते कहा—पुत्र ! जैसी इच्छा हो कर सकते हो। धर्माराधन घर में भी हो सकता है। दीक्षा अंगीकार करने के लिए न मेरा आग्रह था न है।

हजारीमलजी बोले—माता जन्म-जन्म के पुण्योदय से यह सुयोग मिल रहा है। इसे हाथ से गँवा दिया तो असीम मूर्खता होगी। हस्तागत चिन्तामणि को कौन बुद्धिमान् फेंकना चाहेगा ?

इस प्रकार संकट की घड़ियाँ बीत गई। भंडारीजी के सिवाय रोक़ा अटकाने वाला कोई था ही नहीं। अब दोनों स्वतन्त्र थे। पूज्यश्री चातुर्मास समाप्त होते ही विहार कर चुके थे। अतएव दोनों मुमुक्षु सतियों की सेवा में जाते और धर्मध्यान करते थे।

उदयपुर-श्रीसंघ को पूर्ण विश्वास हो गया कि माता-पुत्र का संयम धारण करने का संकल्प सुदृढ़ और आन्तरिक है।

आस-पास में फैली हुई थी। जब उन्हें पता चला कि उनकी भगिनी और भागिनेय दोनों ने दीक्षा लेने का संकल्प कर लिया है तो वास्तविकता को जानने और दीक्षा रोकने के विचार से वे स्वयं उदयपुर आये। उस समय पर्युषण पर्व चल रहा था। व्याख्यान में पूज्य श्री की सिंहगर्जना हो रही थी। भंडारीजी सीधे व्याख्यान में पहुँचे। देखा कि हजारीमलजी श्रोताओं में सबसे आगे पूज्यश्री के पाट के निकट ही बैठे हैं। मुखवस्त्रिका बंधी है और पास में प्रमार्जिनी है। यह दृश्य देखते ही उन्होंने समझ लिया कि जो सुना था सत्य है। किसी भी उपाय से भागिनेय की रक्षा करनी होगी। भोला बालक माँ के कहने से साधु बनने को तैयार हो गया है।

व्याख्यान समाप्त होने पर भंडारीजी ज्ञानकुँवर बाई के घर पहुँचे। उन्हें समझाने की चेष्टा की मगर सफल न हुए। ज्ञानकुँवर बाई के अन्तःकरण पर वैराग्य का जो किरमिची रंग चढ़ चुका था, उसके उतरने की कोई सम्भावना नहीं थी। बहुत सिरपच्ची करने पर भी जब दाल न गली तो भंडारीजी ने कूटनीति का सहारा लिया। उन्होंने माता-पुत्र को अलग २ रख देने का निश्चय किया। बोले—जान पड़ता है कि दोनों मानने वाले नहीं दीक्षा लेकर ही रहोगे। अच्छी बात है। मगर हमें भी कुछ दिन भानजे का प्यार कर लेने दो। हजारीमल को मेरे साथ उमरड़ा भेज दो।

सरलहृदया ज्ञानकुँवर बाई भाई की बातों में आ गई। हजारीमलजी उमरड़ा पहुँचे। भंडारीजी ने उनके वैराग्य का रंग उतारने की भरसक कोशिश की परन्तु जब निराशा ही पल्ले पड़ी तो कठोर कार्यवाही करने को उद्यत हो गये। उन्होंने न्यायालय में अर्जी भेजी कि नाबालिग बालक हजारीमल को उसकी माता जबर्दस्ती दीक्षा दिला रही है। उसे रोकने का उपाय किया जाय।

बालक हजारीमल बुलाये गये और जब उन्होंने स्पष्ट प्रकट किया कि मैं स्वेच्छा से आत्म-कल्याण के लिए दीक्षित होना चाहता हूँ तो भंडारीजी के मंसूबों पर पानी पड़ गया। फिर भी उन्होंने आशा न छोड़ी। सोचा—उमरड़ा में रहते-रहते समय व्यतीत होने पर इसकी भावना पलट जायगी। यह सोचकर चरितनायक को उन्होंने उदयपुर न भेजकर अपने पास ही रख लिया।

ज्ञानकुँवर बाई के सामने भारी उलझन खड़ी हो गई। सहसा अतर्कित बाधा उपस्थित होने पर बड़े-बड़े मनस्वी भी किंकर्त्तव्यमूढ़ हो जाते हैं तो बेचारी ज्ञानकुँवर बाई का तो कहना ही क्या था। पुत्रमिलन की प्रबल उत्कंठा ने उनके चित्त को अधीर कर दिया। इस चिन्ता के कारण उनकी सामायिक, प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं में भी व्याघात उपस्थित होने लगा। सतीजी ने महारानी

देवकी की कथा सुनाकर सान्त्वना देने का प्रयत्न किया, परन्तु वह भी निष्फल हुआ। छह महीने बीत गये। कोई सहायक न मिला जो इस परिस्थिति का अन्त लाता।

उस समय उदयपुर में स्थानकवासी जैनों का अच्छा वचस्व था। मेहता-परिवार का महाराणा साहब से घनिष्ठ सम्पर्क था और सत्ता भी उनके हाथ में थी। व ड्योढीदार कहलाते थे जो मेवाड़ में एक सम्मानित पद माना जाता है।

मानकुँवर बाई की सारी स्थिति जब श्रावकों को ज्ञात हुई तो वे मेहता-परिवार से मिले। उन्हीं की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधिमंडल तत्कालीन मेद पाटाधीश महाराणा फतहसिंहजी से मिला। महाराणा साहब स्वयं धर्मप्रिय शासक थे। प्रतिनिधिमंडल की बात सुनकर उन्होंने आदेश दे दिया—'भगवान् की भक्ति में जीवन अर्पण करने से कोई रोक नहीं सकता। हजारीमल और उसकी माता पर कोई सरकारी प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता। माता-पुत्र को प्रेम-पूर्वक मिलने दिया जाय। कोई बाधक न बने।

महाराणा का इस आशय का आदेशपत्र लेकर प्यारचन्दजी मेहता उमरडा गये और परितनायक को उदयपुर ले आये।

माता और पुत्र के सम्मिलन का वह अवसर अपूर्व था। इतना भावमय कि लेखिनी उसे शब्दों में अंकित नहीं सकती। सामान्य कुशल-क्षेम की बातें होने क पश्चात् माता ने बालक क माथे पर दुलारभरा हाथ फेरते-फेरते कहा—पुत्र! जैसी इच्छा हो कर सकते हो। धर्माराधन घर में भी हो सकता है। दीक्षा अंगीकार करने के लिए न मेरा आग्रह था, न है।

हजारीमलजी बोले—माता जन्म-जन्म के पुण्योदय से यह सुयोग मिल रहा है। इसे हाथ से गँवा दिया तो असीम मूढ़ता होगी। हस्तागत चिन्तामणि को कौन बुद्धिमान् फेंकना चाहेगा?

इस प्रकार संकट की घड़ियाँ बीत गईं। भंडारीजी के सिवाय रोड़ा अटकाने वाला कोई था ही नहीं। अब दोनों स्वतन्त्र थे। पूज्यश्री चातुर्मास समाप्त होते ही विहार कर चुके थे। अतएव दोनों मुमुक्षु सतियों की सेवा में जाते और धर्मध्यान करते थे।

उदयपुर-श्रीसंघ को पूर्ण विश्वास हो गया कि माता-पुत्र का संयम धारण करने का संकल्प सुदृढ और आन्तरिक है।

सुश्राविका मेहतीजी—

परोपकारी महात्मा स्वकीय परकीय के भेदभाव को भूलकर समान भाव से सब की सेवा करते हैं। श्रीयुत प्यारचन्दजी मेहता की धर्मपत्नी—मेहतीजी ऐसी ही सेवापरायणा श्राविका थीं। संकट के समय आपने ही युगल मुमुक्षुओं की सब प्रकार से सेवा और सहायता की थी। उदयपुरवास के समय माता पुत्र के खानपान परिधान आदि का समग्र उत्तरदायित्व आपने ही अपने ऊपर ओढ़ रक्खा था और तारीफ यह कि उन्होंने भूल कर भी कभी किसी के सामने इसका जिक्र नहीं किया था। यश और कीर्ति के लिए देने वाले बहुत हैं परन्तु गुप्तदान करने वाला कोई विरला ही होता है। वास्तव में मेहतीजी धर्म की जानकार, दयालु, दानशीला पतिव्रता और भारतीय नारीजाति के आदर्शों की सजीव प्रतिमा थी। उनकी यह शुभ सेवा हमारे चरितनायक अन्त तक न भुला सके। समय-समय पर वे मेहतीजी के प्रति कृतज्ञभाव प्रकट किया करते थे।

भंडारीजी के अनुचित हस्तक्षेप के कारण भाई-बहिन के बीच का स्नेह का धागा टूट चुका था। भागिनेय के प्रति भी उन्हें आकर्षण नहीं रह गया था। अतएव भंडारीजी ने भगिनी और भागिनेय का मुँह देखना भी छोड़ दिया। तथापि अब उनकी सेवा-सहायता करने वालों की कमी नहीं थी। त्यागियों के चरणों में देवगण भी नतमस्तक होते हैं तो मनुष्यों की बात ही क्या।

चरितनायक के मन में संवेग बढ़ रहा था। दिनोंदिन विरक्ति की मात्रा द्विगुणित हो रही थी। उन्होंने पूज्यश्री के चरणारविन्द में आने की भावना प्रकट की।

गुरुदेव की सेवा में—

विघ्नैः पुनः-पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।

विवेकवान् पुरुष गंभीर विचार के अनन्तर ही किसी कार्य में हाथ डालते हैं और हाथ में लिये कार्य को हजारों विघ्न आने पर भी अधूरा नहीं छोड़ते। आने वाले विघ्नों का वे सोत्साह स्वागत करते हैं और उनके साथ संघर्ष करके शक्तिसंचय करते हैं। विशेषतया पारमार्थिक जीवन की ज्योति जगाने वाले ऋषियों की विचारधारा विघ्नों से टकरा कर रुकती नहीं है और बड़ी-बड़ी चट्टानों को तोड़ती हुई अग्रसर ही होती जाती है। उन्हें अपनी आत्मिक शक्ति पर पूर्ण श्रद्धा होती है। वे अपने भीतर परमात्मिक सामर्थ्य की सत्ता अनुभव करते हैं।

चरितनायक ने एक दिन सुखपृच्छा में धीरे-धीरे कहा—माताजी गुरुदेव के दर्शन की अभिलाषा बलवती हो रही है। उनके चरणकमलों में रहने पर चित्त में अद्भुत समाधि उत्पन्न होती है। ज्ञान-ध्यान की ओर मन स्वतः दौड़ने लगता है।

माता ने कहा—वत्स अच्छा साथ मिलने की ही देर है। पूज्यश्री इस समय जालौर में विराजमान हैं। जालौर दूर तो है ही मार्ग भी विकट है। उदयपुर से चित्तौड़ तक करीब साठ मील बैलगाड़ी से जाना होगा। चित्तौड़ से रेल मिलेगी जो समदड़ी तक पहुँचायगी। वहाँ से पच्चीस मील तक ऊँट पर सवार होकर जालौर पहुँचना होगा। यह यात्रा सरल नहीं है।

स्पष्ट है कि उस समय यातायात के साधनों का ऐसा विकास नहीं हो पाया था। इसी कठिनाई के कारण ज्ञानकुँवर बाई पूज्यश्री की सेवा में अब तक नहीं पहुँच सकी थी। किन्तु पुत्र से प्रेरणा पाकर उन्होंने मेहताजी के सामने अपना और चरितनायकजी का दीक्षा लेने का विचार प्रकट करते हुए पूज्यश्री की सेवा में जाने की इच्छा व्यक्त की। मेहताजी ने अपनी प्रकृति के अनुसार प्रसन्नता प्रकट की और मार्ग व्यय आदि की सेवा करने की तत्परता भी दिखलाई।

आखिर शुभ मुहूर्त देखकर माता-पुत्र ने मारवाड़ की ओर प्रस्थान किया और मार्ग की कठिनाइयों को सहर्ष झेलते हुए वे सकुशल जालौर जा पहुँचे। पहले कभी ऊँट की सवारी न करने के कारण समदड़ी से जालौर तक की यात्रा से बहुत थकावट महसूस हुई परन्तु गुरु देव के चरणों में पहुँच जाने पर अपूर्व आनन्द की जो प्राप्ति हुई, उससे सारी थकावट दूर हो गई और हृदय प्रफुल्लित हो उठा। भावितात्मा भक्तजन को सद्गुरु के दर्शनों से जिस अनूठे आनन्द की अनुभूति होती है उसके लिए कोई उदाहरण मिलना कठिन है।

हमारे चरितनायक ने पूज्य श्री की सेवा में रह कर ज्ञान-ध्यान अभ्यास आरम्भ कर दिया। ज्ञानकुँवर बाई ने भी वैरागिन बनकर महासती श्री धन-कुँवरजी महाराज के निकट आत्म-साधना की भूमिका आरम्भ की। अपने प्रिय पुत्र को गुरु चरणों में आनन्दपूर्वक ज्ञान-ध्यान का अभ्यास करते देख माता का हृदय पुलकित हो उठता था। चिरकाल की मनोभिलाषा अब सफलता की मंजिल पर पहुँच रही थी। अब उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि बेटे का मन मुनियों के साथ रम गया है, वह दूध-पानी की तरह उनमें एकमेक हो गया है, और विरक्ति के संस्कार उसकी रग-रग में समा चुके हैं तब उन्होंने हर्ष के साथ आज्ञा-पत्र लिख दिया। उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है—

सुश्राविका मेहतीजी—

परोपकारी मन्यात्मा स्वकीय-परकीय के भेदभाव को भूलकर समान भाव से सब की सेवा करते हैं। श्रीयुत प्यारचन्दजी मेहता की धमपत्नी—मेहतीजी ऐसी ही सेवापरायण श्राविका थीं। संकट के समय आपने ही मुमुक्षु मुमुक्षुओं की सब प्रकार से सेवा और सहायता की थी। पद्मपुरवास के समय माता पुत्र के खानपान, परिधान आदि का समग्र उत्तरदायित्व आपने ही अपने ऊपर ओढ़ रक्खा था और खारीफ यह कि उन्होंने भूल कर भी कभी किसी के सामने इसका जिक्र नहीं किया था। यश और कीर्ति के लिए देने वाले बहुत हैं, परन्तु गुप्तदान करने वाला कोई विरला ही होता है। वास्तव में मेहतीजी धर्म की जानकार, दयालु दानशीला पतिव्रता और भारतीय नारीजाति के आदर्शों की सजीव प्रतिमा थी। उनकी यह शुभ सेवा हमारे चरितनायक अन्त तक न भुला सके। समय-समय पर वे मेहतीजी के प्रति कृतज्ञभाव प्रकट किया करते थे।

भंडारीजी के अनुचित हस्तक्षेप के कारण भाई-बहिन के बीच का स्नेह का धागा टूट चुका था। भागिनेय के प्रति भी उन्हें आकर्षण नहीं रह गया था। अतएव भंडारीजी ने भगिनी और भागिनेय का मुँह देखना भी छोड़ दिया। तथापि अब उनकी सेवा-सहायता करने वालों की कमी नहीं थी। त्यागियों के चरणों में देवगण भी नतमस्तक होते हैं तो मनुष्यों की बात ही क्या।

चरितनायक के मन में संवेग बढ़ रहा था। दिनोंदिन विरक्ति की मात्रा वृद्धिगत हो रही थी। उन्होंने पूज्यश्री के चरणारविन्द में आने की भावना प्रकट की।

गुरुदेव की सेवा में—

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।

विवेकवान् पुरुष गंभीर विचार के अनन्तर ही किसी कार्य में हाथ डालते हैं और हाथ में लिये कार्य को हजारों विघ्न आने पर भी अधूरा नहीं छोड़ते। आने वाले विघ्नों का वे *सोत्साह स्वागत* करते हैं और उनके साथ संघर्ष करके इतिकर्त्तव्य करते हैं। विशेषतया पारमार्थिक जीवन की ज्योति जगाने वाले ऋषियों की विचारधारा विघ्नों से टकरा कर रुकती नहीं है और बड़ी-बड़ी चट्टानों को तोड़ती हुई अग्रसर ही होती जाती है। उन्हें अपनी आत्मिक शक्ति पर पूर्ण श्रद्धा होती है। वे अपने भीतर परमात्मिक सामर्थ्य की सत्ता अनुभव करते हैं।

विराजती थीं। महासतियों का यह सम्मिलन अत्यन्त आनन्दमय रहा। महासती श्री ज्ञानकुँवरजी प्रथम बार साध्वी के रूप में उदयपुर आई थीं और माजी मुनि की माता थीं अतएव धर्मप्रिय जनता ने हार्दिक भक्ति और प्रीति से आपका स्वागत किया।

चारितनायक की प्रव्रज्या—

हमारे चरितनायक की उम्र अब दस वर्ष की हो चुकी थी अतएव आप भागवती दीक्षा अंगीकार करने के लिए तैयार हुए। माताजी के दीक्षित हो जाने पर आप न तो अपने निश्चित पथ से चलायमान हुए और न घबराये, प्रत्युत अधिक विरक्त हुए। विनय और सच्चा धर्म आपको अतिशय प्रिय था अतएव सहज ही आप सब मुनियों के प्रीतिभाजन बन गये थे।

सालौर से विहार करके पूज्यश्री समदड़ी पधारे। वहाँ स्थानकवासी जैनों के २५० घर हैं। उस समय भी थे। धार्मिक भावना उत्कट होने के कारण समदड़ी में सन्तों का आवागमन प्रायः होता रहता है। पूज्यश्री के पधारने पर समदड़ी में अपार आनन्द की लहर दौड़ गई। दया पौषध एवं धर्मप्रभावना करने वालों ने धूम मचा दी। वैरागी के गुणगान होने लगे। संघ के आग्रह से यहीं दीक्षा-समारोह होना निश्चित हुआ। यद्यपि पूज्यश्री ज्योतिष शास्त्र के गम्भीर विद्वान् थे फिर भी पण्डितजी को बुलवा कर दीक्षा का मुहूर्त्त निकलवाया गया। ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी का बहुत उत्तम मुहूर्त निकल आया। पण्डितजी ने इस प्रकार दीक्षा कुंडली बना कर दी।

वि० संवत् १९५० विक्रमीय वर्षे १८१५ शाके ज्येष्ठ मासे शुक्ल पक्षे त्रयोदशी बुधवासरे घटि २० स्वातिनक्षत्रे घटि २०/१८ पर विशाखानक्षत्रे परिघ नाम योगे घटि ४८/४० तैतल करणे एवं पंचांगशुद्धदिने श्री सूर्योदयादि इष्ट घटि ११/१५ सूर्य १/१४ लग्न ५/१४ तत्समये हजारिमल्लस्य दीक्षात्रिकेयम्।

दीक्षा लग्नमिदम्
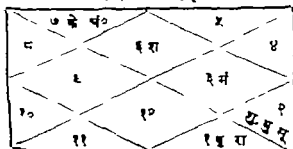
श्रीसंघ ने बड़े समारोह के साथ दीक्षा की तैयारियाँ आरंभ कर दीं। जोधपुर, पाली आदि नगरों के अतिरिक्त आसपास के समस्त ग्रामों में आमंत्रण पत्रिका भेजी गई। बाहर से श्रावकों और श्राविकाओं के दल के दल आने लगे।

स्थान—गढ़ आकोर

स्थानक० जैन श्री संघ, जयजिनेन्द्र !

मेरा पुत्र हजारीमल पूज्य श्री १००८ श्री पूनमचन्द्रजी महाराज के पास राजी-खुशी वैराग्य से दीक्षा ले रहा है। मैं आज्ञा पत्र लिखती हुई पूर्ण आशा करती हूं कि पुत्र जैनधर्म को दीपायगा। इसलिए कोई व्यक्ति बाधक न बने।

सं० १९४९ फाल्गुण सुद ५ द० ज्ञानकुँवर वैरागन

यह आज्ञापत्र पूज्य श्री के चरणों में अर्पित कर दिया गया। पुत्र समर्पण भी हो गया। माता का उत्तरदायित्व सम्पन्न हुआ। उन्होंने अपने पुत्र को संयम के साथ पुत्रसमर्पण की महानिधि पाने के योग्य बनाकर अपने सर्वोत्कृष्ट कर्तव्य का पालन किया। ऐसी सौभाग्यशालिनी माता इस धरणीतल पर विरली ही मिलेगी जो सन्तान के प्रति अपना उच्चकोटि का कर्तव्य पालन कर दिखला सके। धन्य है माता ज्ञानकुँवर।

माता ज्ञानकुँवर अब जगन्माता बन गई। लौकिक रूढ़ियों से उन्होंने छुट्टी पा ली। वैरागी हजारीमलजी पूज्यश्री के श्रीचरणों में रहने लगे और आप महासतीजी की सेवा में समय यापन करने लगीं।

माताजी की दीक्षा—

अवसर पाकर ज्ञानकुँवरजी ने महासती श्री रगन कुँवरजी से संयम प्रदान करने की प्रार्थना की। महासतीजी चिरकालीन सम्पर्क से वैरागिन बाई को परख चुकी थीं अतः स्वीकृति देने में विलम्ब न लगा। दीक्षा का दिन नियत हो गया। आकोर की जैन जनता ने जब दीक्षा का समाचार जाना तो अपूर्व जागृति आ गई। बहिनें बड़े चाव से मंगल गीत गाने लगीं। घर-घर में खुशियां मनाई जाने लगीं। धीरे-धीरे दीक्षा का पावन दिन भी आगया। वह दिन आकोर के इतिहास में एक असाधारण दिन गिना गया। सारा नगर उत्सवमय हो गया। बहुमूल्य वस्त्राभरण धारण कर ज्ञानकुँवर बाई पालकी में आरूढ़ होकर सहस्रों नर-नारियों के साथ दीक्षास्थान पर पहुँची।

सन्तमण्डली के साथ पूज्यश्री पहले ही वहाँ पदार्पण कर चुके थे। वसन्तश्री से सुशोभित रमणीय उद्यान अत्यन्त दिव्य प्रतीत हो रहा था। पूज्यश्री एक विशाल वृक्ष की छाया में विराजमान थे। सहस्रों नर-नारियाँ उल्लास में बहते हुए वहाँ एकत्र हुए। दीक्षा का कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ। श्रावकों की ओर से श्रीफल बतासे, बादाम आदि की प्रभावना की गई। इस प्रकार चैत्र सुदी २ सं १९५० को ज्ञानकुँवर बाई श्री रगनकुँवरजी महासती की शिष्या बनी।

कुछ समय पश्चात् श्री रगनकुँवरजी आदि सतियों ने मेवाड़ की तरफ विहार किया। आकोर, देवगढ़ संविराम होती हुई सादड़ी और सादड़ी से राणकपुर, सायरा सेरा तथा गोगुन्दा होकर उदयपुर पधार गई। उदयपुर में महाभाग्यशालिनी श्री गुलाबकुँवरजी म० स्थविर होने के कारण ठाणापति

प्रथम चातुर्मास

प्रव्रज्या अंगीकार करने के पश्चात् समदड़ी से जोधपुर की ओर विहार हुआ। बड़ी दीक्षा मार्ग में ही हो गई। जोधपुर पहुँचने पर हजारों भावुक नर नारियों ने सामने आकर आपका स्वागत किया। आपके पहुँचने से पूर्व ही जोधपुर के घर-घर में आपकी प्रशस्ति पहुँच चुकी थी। अतएव हर्ष और उल्लास के साथ नगर में आपकी 'पधरामणी' हुई। संघ के विनम्र आग्रह से आपका प्रथम चातुर्मास मरुधरा की राजधानी जोधपुर में ही हुआ।

सन्तमण्डली के सान्निध्य से संघ में धर्मभावना की खासी वृद्धि हुई। श्रावण और भाद्रपद मास में मेघों ने जल वर्षा की झड़ी लगा दी तो श्रावकों ने तपस्या आदि की झड़ी लगा दी। सन्तों के उपदेश की पीयूष वर्षा हो ही रही थी। इस प्रकार दृढ़ प्रकृति और धार्मिकजनों में प्रतिस्पर्द्धा-सी मच गई।

उस समय जोधपुर में विभिन्न सम्प्रदायों-गच्छों के अनुगामी श्रावक थे परन्तु उनमें प्रतिगामी संकीर्ण मनोभावना नहीं थी। स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा अवश्य थी जिससे धर्माराधना विशेष उत्साह के साथ की जाती थी। ईर्षा द्वेष और एक दूसरे को नीचा गिराने या नीचा दिखलाने की क्षुद्र एवं निन्दनीय मनोवृत्ति तब तक पनपी नहीं थी अतएव सबका सब के साथ सहयोग और सौमनस्य रहता था।

इस वर्ष अर्थात् वि० सं० १९५० में पूज्यश्री पूनमचन्दजी महाराज के अतिरिक्त पूज्यश्री रतनचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के प्र० व० श्री रामचन्द्रजी महाराज का भी चौमासा था। सब सन्तों में पारस्परिक धर्मप्रेम था। आना-जाना पढ़ना-पढ़ाना आदि स्नेह सम्बन्ध खूब गहरा था। अतएव श्रावक-समुदाय शांति के साथ धर्म की आराधना कर रहा था।

हमारे चरितनायक उस समय लघुतम मुनि थे। पाँच गुरुभ्राताओं में भी सबसे छोटे थे। अयवन्ता मुनि की तरह आप बड़े मुनिराजों के साथ छोटे-छोटे पात्र लेकर गोचरी के लिए पधारते, छोटी-सी पोथी लेकर व्याख्यान के समय पूज्यश्री के साथ पाट पर आसीन होते तो दर्शकों का मन-मयूर प्रमोद भावना के अतिरेक से नाच उठता था। पूज्यश्री जैसे कृपानिधान सद्गुरु की छत्र-छाया में आपका जीवनस्तर दिनों-दिन ऊँचा उठता जा रहा था। इस चातुर्मास में आपने दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र के कुछ अध्ययन और थोकड़े कंठस्थ कर लिये। अन्य मुनिराजों के अतिरिक्त पूज्यश्री स्वयं भी आपको पढ़ाते थे। आप

समदड़ी एक तीर्थधाम बन गया। नाना प्रकार की प्रभावना होने लगी। मुक्त हस्तों से इतना दान दिया गया कि वहाँ के गरीब एवं भिखारी भी मालामाल हो गये। आगन्तुक भाई-बहिनों के लिए भोजन आदि की बड़ी सुन्दर व्यवस्था की गई।

दीक्षा के दिन का उल्लास अपूर्व था। दीक्षा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व वैरागी के कानों में कुंडल गले में मौक्तिक हार, हाथों में कड़े और अंगुलियों में बहुमूल्य मुद्रिकाएँ सुशोभित थीं। जब वैरागीजी सुसज्जित घोड़े पर आरूढ़ हुए तो जनता का हृदय हर्ष से भर गया। मनमयूर नाच उठा। जयनादों से व्योम मण्डल व्याप्त हो गया। विशाल जनसमूह हृदय में उमंग, उल्लास उत्साह और हर्ष लिये जुलूस के रूप में पीछे पीछे चल पड़ा। बाजार के मध्य में होकर वैरागीजी की सवारी दीक्षास्थल पर आ पहुँची। दीक्षास्थल बाबाजी का झौंपड़ा था। सरिता के तट पर निर्मित सुन्दर वाटिका को लोग बाबाजी का झौंपड़ा कहते हैं। दुनिया का ढंग निराला है।

पूज्यश्री आदि मुनिराज वहाँ पधार चुके थे। कवि श्रीनेमिचन्द्रजी महाराज संगीतकला में निष्णात थे। निसर्ग ने उनके गले में एक विशिष्ट माधुर्य भर दिया था। वे भावपूर्ण मुद्रा में भगवत् भजन आलाप रहे थे। भक्ति और विरक्ति का समा बँध रहा था। पूज्यश्री ध्यानमग्न होकर विराजमान थे। उसी समय जुलूस आ पहुँचा। भजन बंद कर दिये गये।

वैरागीजी ने एक ओर जाकर सदा के लिए आभूषणों का परित्याग किया। स्नान करके मुनिजनोचित वस्त्र धारण किये। मुखवस्त्रिका से सुशोभित हुए। तत्पश्चात् पूज्यश्री के समक्ष उपस्थित हुए। पूज्यश्री तथा अन्य सन्तों एवं सतियों को विधिपूर्वक वन्दन करके, बद्धाञ्जलि, नतमस्तक, एकाग्रचित्त होकर खड़े हो गये।

कितना भावमय था वह वातावरण! सर्वत्र निस्तब्धता व्याप्त थी। सहस्रों नर-नारी उपस्थित थे फिर भी पूर्ण नीरवता थी। सब लोग भावावेग में चित्र-लिखित से बैठे थे। जान पड़ता था आज समदड़ी में चिर-अतीत चतुर्थ काल अवतरित हुआ है। दर्शकों के अन्तःकरण विमल सात्त्विक भावना से आप्लुत हो उठे।

पूज्यश्री ने मंगलपाठ पढ़ा कर ध्यान किया। वैरागी का चतुर्विंशतिस्तव का पाठ सुनाया। तत्पश्चात् यावज्जीवन सामायिक अंगीकार करवा कर दीक्षा-कार्य सानन्द सम्पन्न किया।

दीक्षा के पश्चात् पूज्यश्री ने संक्षिप्त भाषण किया जिसमें दीक्षा का प्रयोजन, स्वरूप और उसकी आवश्यकता पर प्रकाश डाला। मुनिश्री जठमलजी म० ने प्रासंगिक वक्तव्य फरमाया। मुनि हजारीमलजी का नाम हस्तीमल्ल मुनि रक्खा गया। वह पूज्यश्री की नेश्राय में शिष्य हुए। संघ ने उदारतापूर्वक प्रभावना की।

प्रथम चातुर्मास

प्रव्रज्या अंगीकार करने के पश्चात् समदड़ी से जोधपुर की ओर विहार हुआ। बड़ी दीक्षा मार्ग में ही हो गई। जोधपुर पहुँचने पर हजारों भावुक नर नारियों ने सामने आकर भावभरा स्वागत किया। आपके पहुँचने से पूर्व ही जोधपुर के घर-घर में आपकी प्रशस्ति पहुँच चुकी थी। अतएव हर्ष और उल्लास के साथ नगर में आपकी 'पधरावणी' हुई। संघ के विनम्र आग्रह से आपका प्रथम चातुर्मास मरुधरा की राजधानी जोधपुर में ही हुआ।

सन्तमण्डली के सान्निध्य से संघ में धर्मभावना की खासी वृद्धि हुई। श्रावण और भाद्रपद मास में मेघों ने जल वर्षा की झड़ी लगा दी तो श्रावकों ने तपस्या आदि की झड़ी लगा दी। सन्तों के उपदेश की पीयूष वर्षा हो ही रही थी। इस प्रकार एक प्रकृति और धार्मिकजनों में प्रतिस्पर्द्धा-सी मच गई।

उस समय जोधपुर में विभिन्न सम्प्रदायों-गच्छों के अनुगामी श्रावक थे परन्तु उनमें प्रतिगामी संकीर्ण मनोभावना नहीं थी। स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा अवश्य थी जिससे धर्माराधना विशेष उत्साह के साथ की जाती थी। ईर्षा द्वेष और एक दूसरे को नीचा गिराने या नीचा दिखाने की क्षुद्र एवं निन्दनीय मनोवृत्ति तब तक पनपी नहीं थी अतएव सबका सब के साथ सहयोग और सौमनस्य रहता था।

इस वर्ष अर्थात् वि॰ सं॰ १६५० में पूज्यश्री पूनमचन्दजी महाराज के अतिरिक्त पूज्यश्री रतनचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के स्व॰ प॰ भाद्र ऋषि श्री रामचन्द्रजी महाराज का भी चौमासा था। सब सन्तों में पारस्परिक धर्मप्रेम था। आना-जाना पढ़ना-पढ़ाना आदि स्नेह सम्बन्ध खूब गहरा था। अतएव श्रावक समुदाय शांति के साथ धर्म की आराधना कर रहा था।

हमारे चरितनायक उस समय लघुतम मुनि थे। पांच गुरुभ्राताओं में भी सबसे छोटे थे। अवयस्क मुनि की तरह आप बड़े मुनिराजों के साथ छोटे-छोटे पात्र लेकर गोचरी के लिए पधारते, छोटी-सी पोथी लेकर व्याख्यान के समय पूज्यश्री के साथ पाट पर आसीन रहते तो दर्शकों का मन-मयूर प्रसाद भावना के अतिरेक से नाच उठता था। पूज्यश्री जैसे कृपानिधान सद्गुरु की छत्र-छाया में आपका जीवनतरु दिनों-दिन ऊँचा उठता जा रहा था। इस चातुर्मास में आपने दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र के कुछ अध्ययन और थोकड़े कंठस्थ कर लिये। अन्य मुनिराजों के अतिरिक्त पूज्यश्री स्वयं भी आपको पढ़ाते थे। आप

अल्पवयस्क होने पर भी मुनिराजों की यथाशक्ति सेवा करने में कुछ उठा न रखते थे।

आपकी माताजी उदयपुर में विराजमान थीं। समय-समय पर आपके समाचार आते रहते थे। मगर चरितनायक के मन में कभी किसी दिन भी किसी प्रकार का उद्वेग उत्पन्न नहीं हुआ।

इस प्रकार सफलता के साथ चातुर्मास के दिन व्यतीत हो रहे थे। संघ का धर्मोत्साह क्रमशः बढ़ता जाता था। उस समय प्रभावना करने की प्रथा अधिक थी। धनी लोग प्रभावना की बात सुन कर आज की तरह नाक-भौंह नहीं सिकोड़ते थे। नीति से अर्थोपार्जन करते और सुकृत में लगाने में उसकी सार्थकता समझते थे। आज काले बाजार का धन प्रायः सिनेमा और वोटों की प्राप्ति में व्यय होता है।

आचार्यपद-महोत्सव—

पूज्यश्री अमरसिंहजी महाराज विक्रम संवत् १८१२ में अजमेर में स्वर्गवासी हुए। आपके पश्चात् सम्प्रदाय में किसी को आचार्य पदवी प्रदान नहीं की गई थी। १३८ वर्ष तक बिना आचार्य के अक्षुण्ण रूप से आपकी शिष्य परम्परा चालू रही। इस दीर्घकालीन काई को पाटना सरल काम नहीं था। इस समय पूज्यश्री पूनमचन्दजी महाराज यद्यपि सम्प्रदाय के नेता थे और अतीव कौशल के साथ सम्प्रदाय की नौका का संचालन कर रहे थे मगर पूज्य पद उन्हें भी प्रदान नहीं किया गया था। पूज्यश्री की वाणी में ओज था चेहरे पर तेज था। गौर वर्ण था। विद्वत्ता थी। उच्चकोटि की चारित्र-सम्पत्ति थी। अभिप्राय यह कि आचार्य की समग्र विभूतियाँ पूज्यश्री में विद्यमान थीं। यह सब देखकर जोधपुर श्रीसंघ के प्रमुख श्रावकों के मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि आचार्यपद पर आपको ही क्यों न प्रतिष्ठित किया जाय?

प्रश्न हो सकता है कि पूज्यश्री में आचार्य के योग्य विशेषताएँ तो पहले भी थीं वे अचानक ही उत्पन्न नहीं हो गई थीं। फिर यह विचार इससे पहले क्यों नहीं उत्पन्न हुआ? इस प्रश्न का निर्णयात्मक उत्तर देना कठिन है, तथापि अनुमान किया जा सकता है कि जैसे पुत्रसन्तान के भाग्य का प्रभाव उसके माता-पिता पर पड़ता है, उसी प्रकार शिष्यसन्तान का प्रभाव उसके गुरु पर पड़े बिना नहीं रहता। इस प्रकाश में जब देखते हैं तो लगता है कि नवदीक्षित शिष्य मुनि श्री ताराचन्दजी महाराज के सौभाग्य का ही यह सुफल था कि उनके गुरु महाराज को उनके दीक्षित होते ही यह महान् सम्मान प्राप्त हुआ।

जो भी हो तथ्य यह है कि जोधपुर के श्रावकों ने एकत्र होकर पूज्यश्री का आचार्य पदवी प्रदान करने का निश्चय कर लिया। निश्चय की घोषणा होते ही

सम्बन्धित क्षेत्रों में अपार हर्ष छा गया। आकाशमण्डल जय-जयकार के सुमधुर निनादों से व्याप्त हो गया। विराजमान मुनियों और महासतियों में प्रसन्नता का पार न रहा। प्रभावना के लिए बधाइयाँ के थाल द्वार पर आ पहुँचे और सभा विसर्जित हो गई। मार्गशीर्ष कृष्णा पञ्चमी का मंगलमय दिवस आचार्य पदवी प्रदान के लिए निश्चय हो गया।

जोधपुर अमर-सम्प्रदाय की गादी का नगर माना जाता है। अतएव वहाँ के श्रावकों में असाधारण उत्साह होना स्वाभाविक ही था। तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं आमन्त्रण-पत्रिकायें प्रेषित कर दी गईं और अन्तत समारोह दिवस आ पहुँचा।

नियत समय पर समारोह प्रारम्भ हुआ। सम्प्रदाय के वहाँ विराजित समस्त सन्तों एवं सतियों के अतिरिक्त पूज्य रतनचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के श्री चन्दनमलजी म० आदि तथा पूज्य जयमलजी म० के सम्प्रदाय के कविवर श्रीरामचन्द्रजी म० आदि सन्त भी उपस्थित हुए। श्रीनेमिचन्द्रजी महाराज के मंगलपाठ के पश्चात् श्रीजेठमलजी म ने आचार्य पद की चादर ओढ़ाई। इस समारोह के लिए जोधपुर के पटवा और नागौरी परिवार ने विशेष रूप से प्रयत्न किया था। अत लक्ष्मीनाथजी पटवा ने चादर का एक कोना पकड़ा। उस समय चतुर्विध संघ को सम्बोधित करके उन्होंने कहा—

'आज से अमरगच्छ के आचार्य पूज्य श्रीपूनमचन्दजी महाराज हैं। संघ आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करने में ही अपना कल्याण मान। संघ आध्यात्मिक शत्रुओं को पराजित करने वाली सेना है तो आचार्य उसके सेनापति हैं। सेनापति के अनुशासन में रहने वाली सना ही सफलता प्राप्त कर सकती है। आशा है चतुर्विध संघ नवनिर्वाचित आचार्य के आदेशों का पालन करके संघ और धर्म के अभ्युदय में सहयोगी बनेगा।

इसके अनन्तर श्रीचन्दनमलजी म० ने पूज्यश्री की प्रशंसा करते हुए कहा— यह दिन अतीव मंगलमय है कि जिनशासन के सिंहासन पर एक नवीन आचार्य का पदार्पण हुआ है। अमरसम्प्रदाय का भविष्य उज्ज्वल है कि आज यह आचार्यपद-महोत्सव मनाया जा रहा है।

श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने पूज्यश्री को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की—मैं बहुत देर से आचार्यश्री की शरीरसम्पदा की ओर देख रहा हूँ। शास्त्र में आचार्य की आठ सम्पदाओं का वर्णन है और व यहाँ सभी प्रत्यक्ष दिखाई द रही हैं। पूज्यश्री अमरगच्छ के सिरताज हैं। संघ का संचालन करने में पूर्णरूपेण समर्थ हैं। एसे महामुनि का गुणगान करने स तीर्थंकर गोत्र की प्राप्ति होती है।

आचार्यश्री का फरमान—

अन्त में आचार्यश्री ने गंभीर स्वर से कहा—सज्जनो, व्यवहार में आचार्य पद महान् माना गया है। मैं इसे सेवक का पद समझकर स्वीकार करता हूँ। पद के साथ आये हुए उत्तरदायित्व को मैं अनुभव कर रहा हूँ। इस उत्तरदायित्व को निश्चय ही मैं अकेला नहीं संभाल सकता। चतुर्विध संघ का पूरा सहकार चाहिए।

किसी प्रदेश के राजा का स्वर्गवास हो गया। उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था। परम्परा के अनुसार एक पक्षी उड़ाया गया और वह एक घसियारे के सिर पर बैठ गया। घसियारा राजा बन गया। मन्त्री राजा के पास बैठा करता था। राजा जब उठता तो मन्त्री के कंधे का सहारा लेकर उठता था। एक दिन मन्त्री को हँसी आ गई। राजा ने एकान्त में मन्त्री से हँसने का कारण पूछा तो उसने कहा—महाराज किसी समय आप दो मन का घास का गट्ठा बिना किसी की सहायता के उठा लिया करते थे। अब राजा बने तो अपना शरीर भी नहीं उठा सकते। राजा ने कहा—मन्त्रीजी उस समय घास के गट्ठे का ही भार था मगर अब सारे देश का भार मेरे सिर पर आ गया है। यह भार तुम्हारे सहारे के बिना कैसे उठ सकता है ?

इसी प्रकार आज मेरे सिर पर चतुर्विध संघ का भार आ पड़ा है। यह आपके सहारे से ही उठाया जा सकता है। आपने यह गौरवमय पद प्रदान करके मेरे प्रति जो विश्वास प्रकट किया है, उसके लिए मैं आभारी हूँ।

जय-जयकार के साथ समारोह सम्पन्न हुआ। यथा समय आचार्य महाराज ने जोधपुर से विहार किया।

दूसरा चातुर्मास—

हमारे चरित्रनायक दस वर्ष के बालक मुनि थे तथापि 'तुरन्त अरसा मिना' इस कालिदास की उक्ति को चरितार्थ करते थे। उनकी गंभीरता देखने योग्य थी।

आचार्य महाराज के साथ आपका दूसरा चातुर्मास पाली में हुआ। नवीन आचार्य का प्रथम चातुर्मास होने के कारण श्रीसंघ में खूब उत्साह था। चरित्रनायक ज्ञान-ध्यान के अतिरिक्त विनय-वैयावृत्य करते हुए विकास की ओर बढ़ते जा रहे थे। चातुर्मास व्यतीत होने पर पूज्यश्री के साथ जावौर की ओर आपका विहार हुआ। आस-पास के क्षेत्रों में धर्म की जागृति की। जहाँ भी पूज्यश्री का पदार्पण हुआ धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई। आपकी मेघगंभीर गर्जना सुनकर भव्यात्माओं का मन-मयूर नाचने लगा।

तीसरा चातुर्मास—

वि० सं० १६५२ का चौमासा चरितनायक के साथ जालौर में हुआ। उस समय वहां स्थानकवासी जैनों के ५०० घर थे। पूज्यश्री के पधारने से जनता में अतीव हर्ष और उल्लास उत्पन्न हुआ। श्रावण-भाद्रपद मासमें दया पौषध आदि की धूम मच गई। संवत्सरी का पारणा छूटा धानक का पारणा यह बात जालौर में नहीं थी।

चतुर्विध संघ हर्ष के साथ धर्माराधन में लीन था पर किसे ज्ञात था कि हर्ष के यह क्षण परिमित हैं और शीघ्र ही विषाद की विकराल छाया पड़ने वाली है। हमारे चरितनायक पूज्यश्री की छत्रछाया में अपने महान् जीवन का निर्माण करने में संलग्न थे परन्तु यह नहीं जानते थे कि यह सुखद छाया शीघ्र ही अनन्त अंधकार में विलीन होने वाली है।

हृदयविदारक वियोग—

भाद्रपद शुक्ला १४ के दिन आचार्य देव सहसा बीमार हो गये। ज्वर चढ़ आया। दिल घबराने लगा। देह में विशेष प्रकार की शिथिलता एवं दुर्बलता प्रतीत होने लगी। मुनिजन संयम की साधना के लिए ही देह का धारण तथा पालनपोषण करते हैं। जब देखते हैं कि यह संयम में बाधक पड़ रहा है तो उसका त्याग कर देने में भी देर नहीं करते।

आचार्यश्री को आभास हुआ कि मेरा शरीर अब ठहरता नहीं दीखता तो उन्होंने उससे अन्तिम लाभ उठा लेने का विचार कर लिया। संथारा लेने की भावना प्रकट की। शिष्य वर्ग को बुला कर कहा—मेरी जीवनलीला समाप्त होने आ रही है। तुम सब आनन्दपूर्वक संयम की आराधना करके आत्मकल्याण करना।

श्रीजेठमलजी तथा श्रीनेमिचन्द्रजी म० की ओर संकेत करके बोले—शोभाचंद मुनि अल्पवयस्क है। तुम दोनों के सयाने हो। होनहार है। इसकी सेवा और सार-सँभाल करने से तुम्हें बहुत लाभ होगा। सभी मुनि संयमयात्रा में सावधान रहना। वर्ष चले गये महीने चले गये अब घड़ियाँ रह गई हैं। इनके बीतने में क्या देर है?

आचार्य देव का यह सौम्य सन्देश शिष्यसमूह के लिए भयानक वज्रपात के समान था। श्रीजेठमलजी म० ने कहा—गुरुदेव आपका आदेश सदैव शिरोधार्य रहा और अब भी है, मगर आप क्या कह रहे हैं! आपकी कृपा से ही हमारी संयमयात्रा निर्विघ्न चल रही है। संघ का विकास हो रहा है।

पूज्यश्री ने कुछ भी उत्तर न देकर चरितनायकजी की ओर दृष्टि डाली। पास में बुला कर और सिर पर हाथ रखकर फर्माया—लाल, सभी गुरुभाइयों की सेवा करना। उनकी आज्ञा का पालन करने से तुझे आनन्दलाभ होगा।

इतना कह कर आचार्य महाराज ने मौनावलम्बन कर लिया। आत्मध्यान में तल्लीन हो गये। थोड़ी देर बाद सहसा एक वाक्य सुनाई दिया—'यह प्रकाश-पुंज धीरे-धीरे उतरता हुआ मेरी ओर कैसे आ रहा है !'

मध्यरात्रि का समय था। मुनिमंडल और श्रावकसमूह से भवन खचाखच भरा था। उपर्युक्त वाक्य सुनकर सब विस्मित हो गये। पूछने पर कुछ उत्तर न मिला। अधिक पूछताछ करने का अवसर न था।

धड़कते दिलों में जिस अनिष्ट क्षण की कल्पना साकार हो रही थी वह आ पहुँचा। पूज्यश्री की काया शिथिल पड़ने लगी। सिर की गर्मी कुछ देर रही पश्चात् और देखते-देखते शरीर निस्पंद हो गया। उस समय भी पूज्यश्री के चेहरे पर एक अनूठी आभा अठखेलियाँ कर रही थी। जनसमूह निर्निमेष दृष्टि से उस चेहरे को देख रहा था मगर हा हन्त ! किसी का सामर्थ्य न था जो उस अनमोल जीवन की रक्षा कर सके।

काल का अप्रतिहत चक्र चला और विश्व का महान् वरदान इस महीतल से उठ गया। जो जीवन मानवसुलभ और देवदुर्लभ था वह आज देवसुलभ और मानवदुर्लभ बन गया। पूज्यश्री के जीवन के साथ भक्त जनों की आशाओं का भी अन्त हो गया। उनका उत्साह और उल्लास गहन विषाद और वेदना के निबिड अंधकार में विलीन हो गया।

रात्रि में ही विद्युद्वेग से यह दुःखद वृत्तान्त प्रत्येक जैन भाई के घर में पहुँच गया। जिसने सुना वही वज्राहत हो गया। आसोज के कृष्णपक्ष का प्रथम प्रभात अपने साथ शोक की अभेद्य काली घटाएँ लेकर प्रकट हुआ। जनता के दल के दल स्थानक की ओर उमड़ पड़े। बाजार और रास्ते खचाखच हो गये। बाजार खुला नहीं और कचहरियों में जैनों को छुट्टी हो गई।

दर्शनार्थी जनों की सुविधा के लिए पूज्यश्री का मृतक शरीर चौक में पाट पर रख दिया गया। अपार भीड़ पर नियन्त्रण करना कठिन हो गया।

दूसरी ओर सुन्दर बैकुण्ठी तैयार हो गई। उसके चारों ओर और मध्य में सुनहरी तुर्रे चमाकर लगाये गये। मध्याह्न में लगभग एक बजे श्मशान यात्रा आरम्भ हुई। अमरणीय आत्मा तो देह त्यागते ही अपने नियत स्थान पर जा पहुँची थी। अब निर्जीव शरीर भी अपनी अन्तिम यात्रा पर चल पड़ा।

सबसे आगे केसरिया झण्डा था। उसके पीछे नगर के समस्त बाजे वाले जो बिना बुलाये मक्खियाँ आ गये थे चल रहे थे। बाजों के पीछे घुड़सवार था जो रुपये-पैसे उछालता चल रहा था। उसके पीछे मांडी और फिर विशाल जन-समूह था जो आंसूओं की अंजलि अर्पित करता हुए भारी हृदय से चल रहा था। वह दृश्य अतिशय कारुणिक और मर्मवेधी था। जुलूस नियत स्थान पर पहुँचा। चन्दन की चिता बनाई गई और अपनी दीप्ति से देवों की आभा को पराजित करने वाले पूज्यश्री का शरीर अग्नि को अर्पित कर दिया गया।

चमत्कार पर चमत्कार—

ज्वालामुखी ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। देवोपम देह भस्म बन गई। मांडी का भी कोई अंग शेष न बचा। किन्तु लोग यह देखकर चकित रह गये कि मुर्रें जहाँ के तहाँ थे। आग उन्हें भस्म नहीं कर सकी। इस घटना से दर्शकों को सीता की अग्निपरीक्षा की स्मृति हो आई। किन्तु विस्मय की चरम सीमा तो तब हुई जब हाथ लगाते ही पाँचों मुर्रें आकाश में उड़ गये। लोग आँखें फाड़-फाड़ कर ऊपर की तरफ देखने लगे, मगर कुछ दूर जाकर वे अदृश्य हो गये।

श्मशान से लौटकर हजारों श्रावक पानी के कुण्ड पर स्नान करने गये तो वहाँ भी अपूर्व चमत्कार दिखाई दिया। हाथ का स्पर्श होते ही कुण्ड का पानी केसरिया हो गया। यह देखकर विस्मय होना स्वाभाविक था।

तपस्वी महापुरुषों की सेवा में देव दानव मस्तक झुकाते हैं, यह सत्य उस दिन साकार और स्थूल होकर सहस्रों भक्तों ने देखा। आज भी खासतौर में वृद्ध श्रावक इन चमत्कारों का वर्णन करते-करते विभोर और विह्वल हो जाते हैं।

हमारे चरितनायक उस समय दो वर्ष पूर्व बने मुनि थे। पूज्यश्री के प्रगाढ़ स्नेह का रसास्वादन कर चुके थे। अतएव यह आकस्मिक वियोग उनके लिए दुस्सह हो गया। प्रकृति ने महापुरुषों का निर्माण करने की विधि बड़ी कठोर बनाई है। वास्तव में दुस्सह से दुस्सह संकट सहे बिना कोई महापुरुष नहीं बनता। हमारे चरितनायक के समक्ष भी वही विधि थी। बाल्यावस्था में पितृवियोग का दुःख आया तो मुनि बनने पर गुरुविछोह की मीषण व्यथा मांगनी पड़ी। मगर महापुरुष बनने का दूसरा कोई मार्ग नहीं। फूलों की सेज पर सोने वाले कब महापुरुष बने हैं?

गुरुदेव के न रहने पर गुरुभाइयों ने सान्त्वना प्रदान कर आपको संभाला। श्री जेठमलजी तथा नेमिचन्द्रजी महाराज के अपार स्नेह ने गुरुवियोग का शोक कम कर दिया।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् श्रीनेमिचन्द्रजी महाराज के साथ मेवाड़ की ओर आपका विहार हुआ। आपकी सुहावनी सूरत देख दर्शकों का मनमयूर नाच उठता था। आपकी विद्या, वाणी और वपु को देख चतुर्विध संघ को विश्वास हो गया कि आगे चल कर इस काल के यह अतिमुक्तक मुनि श्रम रूपी तारागण में चन्द्र के समान देदीप्यमान होंगे। आपके सन्तजनोचित व्यवहार को देख लोग बड़े-बड़े मधुरतम मनोरथों के स्थान सजाने लगे।

चौथा चातुर्मास—

श्रीनेमिचन्द्रजी म० उस समय एक माने हुए विद्वान और आशुकवि थे। आप गोगुन्दा आदि होते हुए चित्तौड़ पधारे। वहाँ से रेलिदा पधार कर चातुर्मास किया। चरितनायक आपके साथ थे और दिनोंदिन ज्ञान-ध्यान की वृद्धि कर रहे थे। आपके मेवाड़ पधारते ही मातेश्वरी श्री ज्ञानकुँवरजी महाराज का भी दर्शनार्थ आगमन हुआ। चिरकाल के पश्चात् संयमी अवस्था में माता-पुत्र का मिलाप हुआ। वह समय बड़ा ही आनन्दप्रद और भावमय था। श्रीज्ञानकुँवरजी म० आदि सतियाँ शेष काल विराजीं। जैसे अयकुञ्जर संग्राम में शीर्षस्थान पर रहता है और शत्रुओं के भीषण से भीषण प्रहारों की भी परवाह न करता हुआ आगे ही बढ़ता जाता है, उसी प्रकार वीरता और दृढ़ता के साथ संयम पालन की प्रेरणा आपने प्रदान की।

रेलिदा में चातुर्मास के समय आशातीत धर्मजागृति हुई। दया पौषध आदि के अतिरिक्त लम्बी तपस्याएँ भी हुई। चातुर्मास के अनन्तर सिंहर होते हुए बम्बोरा में पदार्पण हुआ। बम्बोरा आपकी जन्मभूमि थी—शैशवकालीन क्रीड़ाओं की केन्द्रस्थली जन्मभूमि का आकर्षण निराला ही होता है, किन्तु सन्तजनों का जीवन सभी प्रकार की क्षुद्र परिधियों से ऊपर उठ जाता है। ममता के स्थान पर समता उनमें जाग उठती है। अतएव वे समग्र वसुधा को अपनी जन्मभूमि और प्राणिमात्र को अपना परिवार मानते हैं।

उस समय बम्बोरा में पूज्य श्रीतेजसिंहजी म० के सम्प्रदाय के बड़े प्यारचन्दजी म० विराजमान थे। मुनिद्वय मुनिसम्पदा का मधुमय मिलन आनन्दप्रद रहा। व्याख्यान साथ ही होता था। धर्मध्यान के लिहाज से बम्बोरा मेवाड़ में प्रसिद्ध क्षेत्र गिना जाता है। खूब धर्मध्यान हुआ। एक मास विराजने के पश्चात् कानोड़ और बड़ी सादड़ी पधारे। तत्पश्चात् निकुम्भ पधारने पर निम्बाहेड़ा का श्रावकसंघ चौमासे का आग्रह लेकर उपस्थित हुआ।

पाँचवाँ चातुर्मास—

वि० सं० १९९४ का चातुर्मास निम्बाहेड़ा में व्यतीत हुआ। उस समय निम्बाहेड़ा में स्थानकवासी और मूर्तिपूजक सम्प्रदायों में तनाव था। पर्वाधी

का बाजार गर्म था। चातुर्मास की प्रार्थना के समय श्रावकों ने इस परिस्थिति को स्पष्ट कर दिया और यह बतला दिया कि शास्त्रार्थ होने की संभावना है। परिस्थिति से परिचित होकर विद्वान् मुनि श्रीनेमिचन्द्रजी म० ने सोत्साह स्वीकृति दी। उस समय आपकी प्रथम कोटि के विद्वानों वक्ताओं और चर्चावादियों में गणना होती थी। आपके चातुर्मास निश्चित होने का पहला परिणाम यह हुआ कि संवेगी साधु चातुर्मासस्थल बदल कर अन्यत्र चले गए।

मुनि नेमिचन्द्रजी म० की शास्त्रार्थ करने की मनोकामना पूरी न हो सकी तथापि बाजार के मध्य आपके ओजस्वी व्याख्यान होने लगे। उस समय निम्बाहेड़ा में स्थानक नहीं था और मुनिश्री जैसे प्रभावशाली वक्ता के व्याख्यान में जनता का जमाव इतना ज्यादा होता था कि छोटे स्थान से काम नहीं चल सकता था। तब सांडों की हवेली खोली गई। वह हवेली वर्षों से बंद थी और जनता का खयाल था कि उसमें भूतों का वास है। भूतों के भय से किसी को उसमें प्रवेश करने का साहस नहीं होता था। मगर—

देवदाणवगंधव्वा, जक्खरक्खसकिन्नरा ।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करेंति तं ॥

ब्रह्मचर्य के पालन में निरत संयमशील, तपस्वी महानुभावों के चरणों में देव दानव गंधर्व यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि देवता नम्र हो जाते हैं। महात्माओं के आध्यात्मिक प्रभाव से आग शीतल हो जाती है। साँप पुष्पमाला बन जाता है। संकट स्वतः टल जाते हैं। सर्वत्र शांति का साम्राज्य प्रसृत हो जाता है। मुनि श्री नेमिचन्द्रजी महाराज तथा हमारे चरितनायक चार मास पर्यन्त भूतों के उस अड्डे में आनन्दपूर्वक रहे।

आपके विराजने से साम्प्रदायिक वैमनस्य शनैः शनैः शांत हो गया। दोनों सम्प्रदाय आपके उपदेश का लाभ उठाने लगे। साम्प्रदायिक उन्माद के कारण जलने वाली कषाय की ज्वालाएँ आपके उपदेश की प्रबल वर्षा से बुझ गईं। आग को पानी बना देना ही सन्त की सर्वोत्तम कसौटी है।

इस चातुर्मास में सेठ चपमलजी और भोगीदासजी प्रधान कार्यकर्त्ता थे। चार बड़े चाव से धर्मक्रियाएँ भी किया करते थे। धर्मप्रेमी जनों के सहयोग से चातुर्मास अत्यन्त सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

छठा चातुर्मास—

निम्बाहेड़ा से विहार करके, चरितनायकजी के साथ निमे, मुनिश्री नीमच मन्दसौर, जावरा और फिर रतलाम पधारे। मालवा धर्मप्रधान क्षेत्र माना जाता

है। सर्वत्र मुनिश्री का भावपूर्ण स्वागत हुआ। वहाँ पहुँचे आपके प्रभावपूर्ण प्रवचनों की धूम मच गई। रतलाम में मारवाड़ी मुनियों के पदार्पण का यही प्रथम अवसर था। उस समय पू० हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के विख्यात आचार्य पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज विराजमान थे। आचार्य महाराज महान् सन्त थे। आपका हृदय विशाल और उदार था। आपने आगन्तुक मुनिराजों का सस्नेह स्वागत किया।

उस समय विभिन्न सम्प्रदायों के सन्त परस्पर मिलने में हिचक-सी अनुभव करते थे तथापि आचार्यवर्य श्री उदयसागरजी महाराज तथा मुनिवर्य श्री नेमिचन्द्रजी महाराज के मध्य कोई हिचकिचाहट न थी। दोनों महामुनि बड़े भाग्यवान् थे। दोनों का व्याख्यान साथ-साथ होता था। यथासमय प्रेमपूर्वक तत्त्वचर्चा भी होती थी।

रतलाम के आंगण में पृथक-पृथक् सम्प्रदायों का यह स्नेहसम्मिलन बहुत वर्षों में हुआ था। अतएव श्रीसंघ में एक नूतन स्फूर्ति जागृत हुई। धर्म की पावन लहर उठी।

मुनि श्रीनेमिचन्द्रजी महाराज २० दिन रतलाम में विराजे। तत्पश्चात् आपने पुनः मेवाड़ की ओर विहार कर दिया और जावरा मन्दसौर होते हुए सनवाड़ में पदार्पण किया। उस समय प्रायः मुनिराजों का विहारक्षेत्र इतना विस्तृत नहीं था। मारवाड़ी मुनियों का मालवा तक पधारना भी लम्बा विहार माना जाता था। किन्तु अपने मर्यादित क्षेत्र में रह कर भी वे आज की अपेक्षा अधिक धर्मप्रचार करते थे। वे आत्मार्थी मुनि अपने उत्कृष्ट चरित्र एवं ज्ञान के द्वारा जनता पर गहरी धर्म की छाप अंकित कर देते थे।

वि सं० १९५५ का चौमासा सनवाड़ में हुआ। ज्ञान-ध्यान तप आदि की खूब वृद्धि हुई।

सातवाँ चातुर्मास—

सनवाड़ चातुर्मास के अनन्तर हमारे चरितनायक मुनि श्री नेमिचन्द्रजी महाराज के साथ मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते हुए उदयपुर पधारे। उदयपुर में धर्मामृत की वर्षा करके ग्रामानुग्राम विचरते हुए भिंडर पधारे। श्रीसंघ की चौमासे की आग्रहपूर्ण प्रार्थना स्वीकार करके आस पास के ग्रामों में विचरण करते हुए पुनः यथासमय भिंडर पधार गये। आपके पधारने से श्रीसंघ को इतनी प्रसन्नता हुई, मानों एक महान् दैवी वरदान मिल गया हो।

किन्तु प्रकृति के प्रबल प्रकोप के प्रभाव से यह चौमासा नीरस रहा। इस प्रान्त में भयंकर दुष्काल पड़ गया। श्रावण और भाद्रपद में जरा भी वर्षा नहीं

हुई। आश्विन ने भी निराशा उत्पन्न की। जनता त्राहि त्राहि करने लगी। इधर उधर से लूटपाट के समाचार आने लगे। जब अन्न और पानी का संकट सिर पर सवार हो और ऊपर से लूटमार की आशंका प्रतिक्षण हृदय को आकुल-व्याकुल बनाये रहती हो तब धर्मध्यान में चित्त एकाग्र नहीं रह सकता। ऐसे विकट समय में न तो लौकिक कार्य होते हैं, न धार्मिक ही। लाख बार धैर्य धारण करने पर भी शरीर अन्न-पानी के बिना नहीं रह सकता। 'अन्नं वै प्राणाः' जिसने कहा ठीक ही कहा है। 'बुभुक्षितः किम् करोति पापम्' अर्थात् भूख की तीव्र ज्वालाओं से दग्ध होता हुआ मनुष्य सभी पाप करने को उद्यत हो जाता है। वह देह को क्षणभंगुर जानता हुआ भी उसकी रक्षा के लिए शाश्वत धर्म से विमुख हो जाता है। लोकमर्यादा और राजकीय विधिविधान भी उसे नियन्त्रण में नहीं रख सकते। ऐसे अवसर पर उदारहृदय व्यापारीवर्ग को सामने आने की आवश्यकता होती है। उसके संचित धान्यागार खुल जाएँ और तिजारियों में बन्द द्रव्य जनकल्याण के लिए बाहर आ जाय तो परिस्थिति की भीषणता बहुत कुछ कम हो जाती है। ऐसा करके व्यापारीवर्ग अपनी प्रतिष्ठा की वृद्धि करता है और अपने सार्वजनिक उत्तरदायित्व का पालन करता है। मगर यह तभी संभव है जब उसके भीतर का देवता जागृत हो। अन्यथा बहुतसे व्यापारी तो लोगों की लाचारी से और अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।

अन्तर के देवता को—दैवी भावना को जगाने का सामर्थ्य त्यागमूर्ति सन्तों में है। जो स्वयं निस्पृह है वही त्याग का उपदेश देने का अधिकारी है।

इस दुष्काल के विकट संकट का टालने के लिए मुनि श्रीनेमिचन्द्रजी म० ने भरसक प्रयास किया। आपने अपने प्रभावशाली वक्तृत्व स जनता में उदार भावना और त्यागशीलता जगाई। उन्होंने काठियावाड़ के दानवीर खेमा शाह और चम्पा शाह का आदर्श व्यापारियों के समक्ष रक्खा जिन्होंने मुगलसम्राट के रूठ जाने पर एक वर्ष पर्यन्त दुष्काल में प्रजा को अन्न दान दे दिया था। मुनिश्री के उपदेश से अनेक दातार दुष्कालपीड़ितों की सहायता के लिए सन्नद्ध हो गये। परिणामस्वरूप भिंडर में जैन-जैनेतर जनता में पूर्ण शान्ति रही।

हमारे चरित्रनायक उस समय भी बाल्यावस्था में ही थे मगर गरीबों की दुर्दशा देखकर आपका दयालु हृदय द्रवित हो जाता था। सन्तों के हृदय में दया की मन्दाकिनी सतत प्रवाहित होती रहती है।

'चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि सुखानि च' अर्थात् सुख और दुःख गाड़ी के पहिये की भाँति पलटते रहते हैं। इस कथन के अनुसार दुष्काल का दावानल शांत हो गया और सुभिक्ष हो गया।

आठवाँ चातुर्मास—

वि० सं० १६८७ का चौमासा गोगुंदा में व्यतीत हुआ। भिंडर चातुर्मास के पश्चात् कानोड़ की ओर आपका विहार हुआ। इस समय तक श्रीनेमिचन्द्रजी महाराज के व्याख्यानों की मेवाड़ में पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी। कानोड़ में धर्मप्रभावना करके मुनिश्री डूँगला, भींडाला कन्यापुर होते हुए बम्बोरा पधारे। बम्बोरा के श्रावकों में गहरी धर्मप्रीति है। समग्र ग्रामवासी जनता आपको अपना गुरु मानती थी। अतः वहीं शेष काल विराजे। उस समय भी भयंकर दुष्काल चल रहा था। आपके मर्यादानुकूल उपदेशों से स्वधर्मी भाइयों तथा असहाय जनों को सहायता मिली। धनिकों ने अपने धन की ममता का त्याग किया।

तदनन्तर मुनिश्री नेमिचन्द्रजी म० के साथ चरितनायक का उदयपुर में पदार्पण हुआ। उस समय आपकी मातेश्वरी श्री ज्ञानकुँवरजी महासती उदयपुर में ही विराजमान थीं। यद्यपि पुत्र साधु और माता साध्वी बन चुके थे तथापि हृदय में निसर्गसुलभ स्नेह की बहती हुई धारा सूखी नहीं थी। हाँ, गृहस्थावस्था में जो राजस स्नेह होता है, उसका स्थान अब विशुद्ध सात्त्विक स्नेह ने ग्रहण कर लिया। अतएव चरितनायक का शुभागमन सुन महासतीजी का हृदय निर्मल प्रमोद से परिपूर्ण हो गया। दोनों के मिलन का दृश्य देवदुर्लभ था। वातावरण में अनूठी पावनता और स्निग्धता थी।

श्रीज्ञानकुँवरजी म० प्रतिदिन अन्य आर्यिकाओं एवं बहिनों के साथ पधारती थीं। इन दिनों आपने चरितनायकजी को ऐसी प्रेरणा दी जो जीवनपर्यन्त आपकी रग-रग में रमी रही। उन्होंने कहा—'असीम पुण्य के उदय से संयम का महा निधान आपको प्राप्त हुआ है। सदा अप्रमत्त सतर्क और जागृत रह कर इस निधान की रक्षा करना। प्रमादी जीव अहिंसा आदि महाव्रतों की यथोचित रक्षा नहीं कर सकता। प्रमाद का परित्याग कर निरन्तर नूतन ज्ञानोपार्जन करना और रत्नाधिकों की सेवा करना मुनि का आवश्यक कर्त्तव्य है।'

फिर कहा—बालक मुनि संघ की आशाओं के केन्द्र हैं। संघ की आशाओं को सफल करना और अपनी आत्मा को अधिकाधिक विशुद्ध और उन्नत बनाना। निर्मल ज्ञान दर्शन और चारित्र की आराधना करके वीतरागदशा की ओर अग्रसर होना साधुजीवन का लक्ष्य है। मान-सम्मान प्रतिष्ठा प्रसिद्धि प्राप्त होगी किन्तु इन्हें उपसर्ग समझना। मान-प्रतिष्ठा का मोह संयम को कलुषित करके आत्मा को अधःपतन की ओर ले जाता है। इससे बच कर रहना।

चरितनायकजी के सफल और श्लाघनीय दीर्घ संयमजीवन में इन प्रेरणाओं का गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

उदयपुर से विहार करके चरितनायकजी मुनिश्री के साथ गोगुन्दा पधारे। उस समय वहाँ श्रीजड़ावकुँवरजी म० विराजमान थीं उनकी प्रशिष्या अमय कुँवरजी म० हैं। श्रीसंघ की धर्मभावना देख कर तथा आग्रहपूर्ण प्रार्थना को स्वीकार कर मुनि श्रीनेमिचन्द्रजी म० ने गोगुन्दा का चौमासा मान लिया। चौमासे में धर्मध्यान अच्छा हुआ। वहाँ संघ व्यवस्था बहुत सुन्दर रही।

नौवाँ चातुर्मास—

वि० सं० १६६८ का चौमासा सादड़ी (मारवाड़) में व्यतीत हुआ। मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा का विभाजन अरावली पर्वत ने किया है। यह पुरातन पर्वत भारतीय प्रवृत्तियों का युग-युग का साक्षी है। इसकी पूर्वी गोद में गोगुन्दा और पश्चिमी गोद में सादड़ी है। दोनों ओर जैनों की बस्ती पुष्कल है। छोटे-बड़े ग्रामों में करीब पाँच-छह हजार घर जैनों के होंगे।

गोगुन्दा चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् श्रीनेमिचन्द्रजी महाराज झाड़ोल की ओर पधारे। आप इन पहाड़ी क्षेत्रों में धर्मजागृति करने के लिए प्रायः पधारते रहते थे। वहाँ की जनता की आपके प्रति प्रबल आस्था थी। आज भी आपके भजन जनता में प्रचलित हैं। झाड़ोल के बाद आप पानरवा पधारे जो लेखक की जन्मभूमि है। फिर सेरा प्रांत को अपने उपदेशों का लाभ दिया। सेरा प्रांत में भी जैनों की अच्छी आबादी है। एक-एक गाँव में सौ-डेढ़ सौ घर हैं। जैन जनता भी श्रद्धा के साथ आपके उपदेशों का लाभ उठाती थी। कुव्यसनों के त्याग पर आप विशेष बल देते थे।

इस प्रकार ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए और भगवान् महावीर के पावनतम उपदेशों का गंभीर घोष करते हुए मुनि श्रीनेमिचन्द्रजी महाराज चौमासे के लिए सादड़ी पधारे। वहाँ श्री छगनकुँवरजी म० ठा० ८ विराजमान थीं। मुनिराजों के दर्शनार्थ आने वाले भावुक भक्तों की संख्या काफी बड़ी थी मगर श्रीसंघ ने प्रेम के साथ बहुत अच्छी व्यवस्था की।

उस प्रदेश में सादड़ी स्थानकवासी समाज का केन्द्र रहा है। अब भी वहाँ का संघ धार्मिक कार्यों में अग्रगण्य रहता है। चौमासा सफलतापूर्वक समाप्त हुआ।

चौमासे के पश्चात् श्रीनेमिचन्द्रजी महाराज तखतगढ़ आहोर होते हुए जालौर पधारे। उस समय योगनिष्ठ श्री जेठमलजी म० ठा० २ बांदनवाड़ी में विराजमान थे। हमारे चरितनायकजी की प्रबल उत्कंठा आपके दर्शनों की हुई। आपने मुनिश्री नेमिचन्द्रजी महाराज के समक्ष बांदनवाड़ी जाने की इच्छा प्रकट की। मुनिश्री स्वयं चरितनायकजी को साथ लेकर वहाँ पधारे। चार दिन तक साथ रहे। चरितनायकजी वहीं रह गये और मुनिश्री जालौर लौट आये।

श्रीनेमिचन्द्रजी म० जालौर लौट कर और कुछ दिन विराज कर सेरा प्रान्त में पधारे। तिरपार ग्राम में ओसवाल-जातीय श्रीप्यारचन्दजी तथा मैलचन्दजी दो सहचर भ्राताओं ने भागवती दीक्षा अंगीकार की। उनकी भाग्यशालिनी भगिनी श्रीसोहनकुँवरजी तथा माता तीज बाई ने भी वैराग्य से प्रेरित होकर संयममय जीवन अंगीकार किया। दोनों नवदीक्षित सतियाँ श्रीरामकुँवरजी म० की शिष्या बनीं। श्रीसोहनकुँवरजी महासतीजी संघ के सौभाग्य से आज पू० पू० श्रीअमरसिंहजी म० के सम्प्रदाय की ७० सतियों में अग्रणी हैं। आपकी उच्चकोटि की संयमनिष्ठा विद्वत्ता उपस्थिता और संघानुकूलता आदर्श है। आपका हृदय आकाश की तरह विशाल और निर्मल है, सुधा के समान मधुर और नवनीत की भाँति कोमल है। वाणी में आकर्षक मिठास और चेहरे पर स्मित सरलता और भव्यता है। सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनकी दिव्यता के सम्मुख नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सकता।

श्रीजेठमलजी म० पंचम आरे के केवली कहलाते थे। बड़े भजनानन्दी और ध्यानी थे। कहा है—

या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी।

साधारण जनों के लिए जो रात्रि है, उसमें संयमी मुनि जागृत रहता है। आचारांग में भी कहा है—

मुणिणो सया जागरंति।

अर्थात्—मुनिजन सतत जाग्रत दशा में ही होते हैं।

यह आगमवाक्य योगनिष्ठ श्रीजेठमलजी म० पर पूरी तरह चरितार्थ होते थे। जनसमूह जब निद्रादेवी की गोद में चला जाता और रात्रि की निस्तब्धता व्याप्त हो जाती तो आप ध्यान और जाप किया करते थे। इस साधना के फलस्वरूप आपका आत्मिक बल निरन्तर बढ़ता चला जाता था।

चरितनायकजी भी जेठमलजी महाराज की सेवा में रह कर आत्मविकास करने लगे।

दसवाँ चातुर्मास—

चरितनायकजी का वि० सं० १९५९ का चौमासा योगनिष्ठ श्रीजेठमलजी म० के साथ गढ़ सिवाना में व्यतीत हुआ। चातुर्मास के लिए पदार्पण करने पर हजारों नर-नारी आपके स्वागत के लिए सामने आये। उस प्रान्त की जनता की योगनिष्ठ महाराज के प्रति असाधारण भक्ति थी। लोग आपको ही अपना गुरु मानते थे। धूमधाम के साथ चौमासा हुआ। दर्शनार्थी भक्त बहुत बड़ी संख्या में

आये और सब ने उन सब का मोखनादि से समुचित स्वागत किया। उस समय दशनार्थियों की ओर से स्थानीय श्रावकों के घर-घर में सेर-सेर मिश्री वितरण करने की प्रथा थी और आपके चौमासे में खास तौर से इस प्रथा का प्राय पालन होता था। यह प्रथा स्वधर्मीवात्सल्य का एक प्रतीक थी और इससे विभिन्न क्षेत्रवर्ती साधर्मिकों में घनिष्ठता स्थापित होती थी।

वृद्ध तपस्वी हिन्दूमलजी महाराज—

योगनिष्ठ महात्मा की कल्याणी वाणी श्रवण कर सिवाना के एक बूढ़े श्रावक हिन्दूमलजी रांका के चित्त में वैराग्य उत्पन्न हुआ। उन्होंने मुनिपद अंगीकार करने की भावना व्यक्त की। तब योगी महाराज ने फर्माया—तुम भी बूढ़े और मैं भी बूढ़ा। अगर सेवा करने वाले सेवा का भार वहन करने को उद्यत हों तो मैं आपको संसार-सागर से तिरने का यह अवसर देना चाहता हूँ।

चरितनायकजी से इस सिलसिले में बात हुई तो आपने प्रसन्नतापूर्वक कहा—मेरा जीवन सन्तों की सेवा के लिए ही है। आजीवन सन्तसेवा करने में मैं अपना कल्याण समझूँगा।

रांकाजी बड़े परिवार के सदस्य थे। चाचा थे भाई थे पुत्र थे पौत्र थे। सब की अनुमति मिलना सरल नहीं था। परिवार वालों ने आपके वैराग्य की खूब परीक्षा की और फिर सहर्ष आज्ञा दे दी। तब किसी भी प्रकार का आडम्बर न होने देकर सिवाने में ही दीक्षा अंगीकार करली।

हिन्दूमलजी महाराज दीक्षित होने के साथ ही सच्चे मल्ल की तरह इन्द्रियों और आन्तरिक विकारों पर विजय प्राप्त करने में संलग्न हो गये। दीक्षा के दिन से ही आपने दूध दही घृत तेल और मिठाई का जीवन भर के लिए त्याग कर दिया। उपवास बेला तेला अठाई तपस्या भी करने लगे। रूखी रोटी और छाछ ही आपकी प्रधान खुराक रह गई। वृद्धावस्था में आपका यह त्याग आदर्श था। इस तीव्र तपश्चरण के कारण आपकी काया काफी कृश हो गई।

इसी बीच एक घटना और घटित हो गई। वृद्ध तपस्वीजी एक बार सिवाने के समीपवर्ती कर्मिवाण पधारे। वहाँ दौड़ते हुए कुत्ते के झपाटे में आकर गिर पड़े। चलना-फिरना बन्द हो गया। योगनिष्ठ महाराज स्वयं वृद्ध थे अतः सेवा का सम्पूर्ण भार हमारे चरितनायक पर आ पड़ा। चरितनायक ने तपस्वीजी को अपने कंधे पर बिठलाया और छह मील चलकर सिवाना लाये। आपकी इस कष्ट साध्य सेवा ने प्राचीनकालीन सेवामूर्ति मुनि नन्दिषेण का स्मरण करा दिया।

वृद्ध तपस्वी हिन्दूमलजी महाराज कुछ दिनों तक सिवाने में विराजमान रहे और चरितनायकजी उनकी सेवा में रहे। आपने आन्तरिक सद्भाव उत्साह

और प्रेम से सेवा की। तपस्वीजी ने चौदह वर्ष तक संयम का पालन किया। अन्तिम चार वर्ष आप समदड़ी में स्थिर वास करके रहे। नेत्रों की ज्योति चली गई थी और विहार होना संभव न था। उस समय भी चरितनायक गुरुदेव ही आपका वैयावृत्य करते थे। तपस्वीजी को अन्तिम समय में विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। रुग्णावस्था में आप लेटे हुए थे। एक श्रावक दूर पर्दे की आड़ में चुपचाप खड़ा था। आपने उसे पहिचान कर कहा—वह भाई पर्दे की आड़ में क्यों खड़ा है ?

लोग चौंक उठे। इधर-उधर देखा तो कोई दिखाई न दिया। तपस्वीजी से पूछा तो उन्होंने कहा—बाहर के पर्दे के पास जाकर देखो। देखने पर मालूम हुआ कि एक युवक खंभा पकड़े चुपचाप तपस्वीजी की ओर देख रहा है। उपस्थित भाइयों ने आश्चर्यान्वित होकर प्रश्न किया—तपस्वीजी क्या आपको विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति हुई है ? तपस्वीजी ने 'हाँ' के सिवाय विस्तृत उत्तर नहीं दिया। कुछ ही घण्टों के बाद संथारे के साथ आपका स्वर्गवास हो गया। सं० १९७४ की आश्विन कृष्णा १३ के दिन एक महान् तपस्वी के जीवन का अन्त हो गया।

सिवाने का चातुर्मास समाप्त कर श्री जेठमलजी महाराज ने मालावरा की ओर विहार किया। प्रायः मारवाड़ के सिवानची प्रांत में आप धर्मप्रचार किया करते थे। उधर के प्रायः सभी संत्र पूज्य अमरसिंहजी महाराज के सम्प्रदाय के कहे जाते हैं।

योगनिष्ठ महाराज जब बालोतरा पधारे तो समदड़ी के श्रावकसंघ का एक प्रतिनिधि मण्डल वहाँ पहुँचा। चौमासे के लिए अनुनय विनयपूर्वक प्रार्थना की। स्वामीजी ने फर्माया—संघ को धर्म-ध्यान के लिए उद्यत होना चाहिए। सन्तों का वही भक्त है जो अन्तरात्मा का मिमल बनावे और इह-परलोक में कल्याणकर हो।

प्रतिनिधिमण्डल ने आपकी शिक्षा सहर्ष स्वीकार की और चौमासा निश्चित हो गया। इस प्रकार सं० १९६० का आपका चातुर्मास समदड़ी में हुआ।

श्री जेठमलजी महाराज के विषय में कहा जा चुका है कि आप बड़े मंत्रवादी थे। आपके प्रति जनता की अगाध श्रद्धा थी। सभी वर्गों की जनता आपकी भक्त थी।

एक घटना ने उस श्रद्धा को और अधिक बढ़ा दिया। किसी श्रावक की आँखों में बड़ी वेदना थी। अनेक औषधों और यन्त्र-मन्त्रों का प्रयोग करने पर भी वेदना शांत नहीं हुई। तब उसने सोचा—योगी महाराज का अनुग्रह हो तो आराम हो सकता है। वह प्रभात में स्थानक पहुँचा। महाराज बाहर जाने की तैयारी में द्वार पर खड़े थे। उसने कहा—गुरुदेव नेत्र वेदना से आकुल-व्याकुल

हो रहा हूँ। शांति का कोई उपाय फरमाइए। महाराज बोले—भाई, भूल लगाओ तो है; सन्तों के पास और क्या रक्खा है ? श्रावक ने आपके पैर तले की धूल उठाकर आँखों में लगा ली। परिणाम-स्वरूप आँखें ठीक हो गईं।

इस घटना से जैन-जैनेतर में आपके प्रति श्रद्धा की और अधिक वृद्धि हो गई। चौमासा सानन्द सम्पन्न हुआ। हमारे चरित्रनायक प्राय: पठन-पाठन में लगे रहते और शेष समय सेवा में व्यतीत करते थे।

बारहवाँ चातुर्मास—

चौमासा पूर्ण होने पर योगी महाराज ने कल्याणपुरा की ओर विहार किया। यह प्रदेश जोधपुर से वायव्य कोण में स्थित है। रेगिस्तान होने के कारण पानी का प्राय: कष्ट बना रहता है। छह-छह मील की दूरी से पानी लाना पड़ता है। ऐसे स्थानों में परिभ्रमण करना बड़ा कष्टसाध्य होता है। वहाँ जैनों की बस्ती भी विरल है। फिर भी परोपकारपरायण सन्त वहाँ भी जा पहुँचे।

मुनिराजों के पधारने से हजारों प्राणियों को अभय की प्राप्ति हुई। जनता में धर्मजागृति हुई। तत्पश्चात् आप जोधपुर पधारे और वि० सं० १६६१ का चातुर्मास वहीं हुआ। इस चातुर्मास में सम्प्रदाय के संगठन की योजना की गई। चातुर्मास के पश्चात् भी कुछ दिन नगर में कारणवश विराजे थे। जोधपुर में आपके विराजने से आशातीत धर्मप्रभावना हुई।

तेरहवाँ चातुर्मास—

हमारे चरित्रनायक इन दिनों विद्याध्ययन में संलग्न रहते थे। शास्त्रों का अध्ययन और वृद्ध मुनिराजों की सेवा यही दो कार्य आपके प्रधान थे। आपकी सेवनेच्छा अत्यन्त विकसित हो गई थी। अपने जीवन में निरीहभाव की वृद्धि के लिए आपने तीन नियम बना लिये थे—

(१) पात्र में जो एषणीय भोज्य पदार्थ आ जाय वही लेकर सन्तोष धारण करना।

(२) जो वस्त्र मिल जाय वही लेना याचना न करना।

(३) पठन-पाठन करना और बड़ों के आदेश को मानकर कोई भी कार्य करना।

जोधपुर में आपको ज्ञानाभ्यास करने का अच्छा अवसर मिला। पण्डितों से पढ़ने का रिवाज उस समय नहीं था तथापि मुनियों का स्नेहसम्मेलन होता था और उसमें ज्ञान का आदान-प्रदान किया जाता था। चरित्रनायक इतने जिज्ञासु थे कि ऐसे किसी भी अवसर को चूकते नहीं थे। उससे पूरा लाभ उठाते थे।

जोधपुर से विहार करके आप खूली पधारे। यहाँ २५ घर जैनों के हैं। उस समय अच्छी संख्या में धर्म श्रावक थे। खूली से रोहित और फिर पाली पधारे। पाली-संघ में आपके पधारने से अपूर्व आह्लाद उत्पन्न हुआ। संघ के आग्रह से सं० १९९२ का चातुर्मास पाली में ही हुआ। यहाँ पाँच सौ घर स्था० जैनों के हैं। पाली अनेक धार्मिक और सामाजिक प्रवृत्तियों का केन्द्र है। चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ।

चौदहवाँ चातुर्मास—

पाली-चातुर्मास के पश्चात् योगी श्री जेठमलजी म० ने जब विहार किया तो सहस्रों नर-नारियों ने गीली आँखों से गद्‌गद् कंठ से और विषादमय हृदय से दूर तक साथ आकर विदाई दी। त्याग और तपश्चरण के प्रतीक मुनिराजों को भावुक जनता अपना सर्वस्व मान लेती है, किन्तु निवृत्तिपथ के पथिक मुनिराज अपनी वैराग्यवृत्ति में स्थिर रहते हैं। भक्तों के स्नेहजाल में वे नहीं फँसते। यों वे समग्र जगत् के हैं पर इसी कारण किसी के भी नहीं होते। संयमी जीवन के अटल सिद्धान्त के अनुसार वे पंकज की तरह संसार से सदैव अलिप्त रहते हैं। खास तौर से श्रीजेठमलजी म० में तो यह निरीहवृत्ति बहुत गहरी पहुँच गई थी।

पाली से विहार करके आप आसपास के अनेक क्षेत्रों में विचरण करते रहे। चरित्रनायक गुरुदेव आपके साथ ही थे। आप अल्पवयस्क होते हुए भी जनता को धर्मध्यान की खूब प्रेरणा देते थे जिससे व्रतप्रत्याख्यान आदि बहुत होते थे।

यथासमय सालावास के श्रावकों के आग्रह से सं० १९९३ का चौमासा वहीं हुआ। यह स्थान जोधपुर से दस मील की दूरी पर है और यहाँ ६० घर जैनों के हैं। सालावास में चौमासा होने से उसके आसपास में बसे अनेक छोटे छोटे ग्रामों के भाइयों को भी संतसमागम और धर्माराधन का लाभ मिला। चरित्रनायकजी ने भी धर्मप्रभावना में अच्छा योग दिया। चौमासा सफलता के साथ समाप्त हुआ।

पन्द्रहवाँ चातुर्मास—

सालावास—चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् योगनिष्ठ तपस्वीजी चरित्रनायक के साथ बालोतरा पधारे। यहाँ जैनों के करीब ७५० घर हैं। धर्मभावना में यह क्षेत्र सदा अग्रसर रहा है फिर भी योगनिष्ठजी जैसे महात्मा के पदार्पण होने पर तो कहना ही क्या! आपका जीवन परमार्थपरायण था। जहाँ कहीं भी आप पधारते अपूर्व वातावरण का निर्माण हो जाता। न जानेगा भी अपना तपश्चर्या अधिक करते थे। यही कारण था कि इन महर्षि के इशारे पर ही तपश्चर्या

का ठाठ लग जाता था। हजारों का दान-पुण्य होता था। हजारों श्रोता आपका प्रवचन सुनने को उपस्थित होते थे।

बालोतरा से विहार कर ग्रामानुग्राम विचरते हुए आप समदड़ी पधारे और सं० १९९४ का चौमासा वहीं किया। चौमासे में चरितनायकजी अपनी साधना के साथ तपस्वीजी महाराज की भावमय सेवा करते रहे।

सोलहवाँ चातुर्मास—

विस्तृत रेगिस्तान के टीलों में पानी का ही नहीं जिनवानी का भी दुष्काल रहता है। इस शुष्क प्रांत में वही मुनिराज पधारते जो उग्रपरीषह सहन करने में समर्थ हों। यहाँ की जनता सरल है, किन्तु सन्तसमागम विरल होने से धार्मिक संस्कारों की कमी रहती है। जहाँ व्यावहारिक विद्या की भी कमी हो वहाँ धर्मविद्या की कमी का क्या कहना? योगनिष्ठ महाराज इस तथ्य का अनुभव करके उधर पधारे। छोटे-छोटे क्षेत्रों में धर्मप्रचार करते हुए आप पुनः बालोतरा पहुँचे।

वृद्धावस्था के कारण आप लम्बा विहार नहीं करते थे। जहाँ धर्म का विशेष उद्योत होता दिखाई देता वहीं कल्प के अनुसार ठहर जाते और जनता को जगाने का प्रयत्न करते थे। विहार करते-करते आप सिवाना पधारे और संवत् १९९५ के चौमासे में वहीं विराजे। चौमासे में खूब धर्मध्यान हुआ।

सत्रहवाँ चातुर्मास—

चातुर्मास सम्पन्न होने पर आप समदड़ी पधारे थे। उसी समय समाचार मिले कि माताजी को दर्शन देने के लिए चरितनायक आदि मुनिवरों का मेवाड़ की ओर पधारना आवश्यक है। अतएव आप पाली होकर सिरियारी होते हुए देवगढ़ पधारे। आपके पदार्पण से जनता में धर्म का नया रंग आ गया। दया-पौषध आदि की धूम मच गई। व्याख्यान में भीड़ होने लगी। आस-पास के भावुक भक्त दर्शनार्थ आने लगे।

देवगढ़ से विहार कर मुनित्रयजी कांकरोली पधारीं। गुरुदेव श्री ताराचंदजी की माता महासती श्री ज्ञानकुँवरजी भी अन्य सतियों के साथ वहीं पधारीं और आपके दर्शन करके कुछ दिन ठहर कर, पुनः गुरुणीजी की सेवा में उदयपुर लौट आईं।

योगनिष्ठ तपस्वीजी आदि सन्त बहुत वर्षों बाद मेवाड़ में पधारे थे। अतएव जहाँ कहीं आपका पदार्पण होता मेला-सा लग जाता था। सनवाड़ के

श्रीसंघ के आग्रह को स्वीकार कर आपने सं० १६६६ का चातुर्मास समदड़ी में व्यतीत किया। चातुर्मास में खूब धर्मध्यान हुआ।

अठारहवाँ चातुर्मास—

मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपत् को विहार करके मार्ग में आने वाले बहुसंख्यक क्षेत्रों की जनता को प्रतिबोध देते हुए आप उदयपुर पधारे। उदयपुर में श्री ज्ञानकुँवरजी आदि सतियाँ विराजमान थीं। मुनिमण्डल के उदयपुर में पधारने पर अपूर्व हर्ष छा गया। योगनिष्ठ तपस्वी श्री जेठमलजी महाराज के प्रति जनता में असाधारण श्रद्धा थी। आपके दर्शनमात्र को लोग अहोभाग्य मानते थे। व्याख्यान श्रवण करने के लिए भीड़ उमड़ती थी। कल्प के अनुसार उदयपुर में विराजकर आपने विहार किया। महासती श्री ज्ञानकुँवर महाराज मन्दार पर्यन्त सेवार्थ पधारीं। मन्दार से सादड़ी गाढ़े पधारे। वहाँ किसानों को धर्मोपदेश दिया। लोगों ने बड़ी संख्या में मांस-मदिरा के सेवन का त्याग किया।

गोगूँदा पधारने पर जैन जनता ने बड़े हर्ष के साथ हार्दिक स्वागत किया जैन-जैनेतर जनता ने उपदेश से लाभ उठाया। कुव्यसनों का त्याग किया। तत्पश्चात् आप सेरा प्रांत में पधारे। ग्राम ग्राम में वीतरागवाणी का अमृत पिलाते हुए और ज्ञान का आलोक विकीर्ण करते हुए मायपुरा पधारे और फिर सादड़ी पधारे। सादड़ी में जालौर-श्रीसंघ के प्रमुख श्रावकों ने उपस्थित होकर चातुर्मास के लिए प्रार्थना की। अत्यन्त आग्रह देख तपस्वीजी ने स्वीकृति प्रदान कर दी। यथासमय आप जालौर पहुँचे और सं० १६६७ का चौमासा जालौर में व्यतीत किया।

चरितनायक गुरुदेव वैयावृत्य के साथ अध्ययन करते रहते थे और आपका शास्त्रीय बोध काफी विकसित हो चुका था। जालौर में एक भाई ने अहिंसा के विषय में प्रश्न किया तो आपने उत्तर में फर्माया—अहिंसा का पालन करने के लिए दिल में दया का दरिया बहना चाहिए। हृदय विशाल होना चाहिए। और यह समझ आ जानी चाहिए कि प्रत्येक प्राणी की प्रकृति एक-सी है। जिस प्रकार हम सुख पाना और दुःख से बचना चाहते हैं, उसी प्रकार अन्य समस्त प्राणी भी चाहते हैं। इस प्रकार जो अन्य प्राणियों को आत्मवत् समझता है, वही अहिंसा का पालन कर सकता है। अहिंसा का पुजारी ही भगवान् का सच्चा पुजारी है। जीव अजीव का ज्ञान नहीं है, पाप-पुण्य की पहिचान नहीं है और मनोमन्दिर में दया-देवी की प्रतिष्ठा नहीं की है तो कितना भी जन्तर मिले जाओ, जीवन का उत्थान संभव नहीं है।

'अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्' अर्थात् अहिंसा ही परम ब्रह्म है। अहिंसा की उपासना इहलोक और परलोक दोनों दृष्टियों से कल्याणकारी

है। अतएव क्या साधु और क्या गृहस्थ सभी के सभी जीवनव्यवहारों में अहिंसा की दृष्टि व्याप्त होनी चाहिये। अहिंसा की नींव पर ही हमारे जीवन की अट्टालिका निर्मित होनी चाहिए। इसी आशय से समग्र जीवनदर्शन में अहिंसा की प्रधानता पर अत्यधिक बल दिया गया है।

मुनिश्री के वचनामृत का पान करके वह भाई गद्गद् हो गया और अपने मित्रों के साथ प्रतिदिन उपाश्रय में आने लगा।

इस प्रकार आखीर चातुर्मास सफलतापूर्वक समाप्त हुआ। मुनिमण्डल ने चांदनबाड़ी की तरफ विहार किया तो मीलों तक नर-नारियों ने साथ न छोड़ा।

उन्नीसवाँ चातुर्मास

मुनिमण्डल जब राखी ग्राम में पहुँचा तो वहाँ आनन्दकुँवरजी आदि सतियाँ विराजती थीं। इनके गुरु श्रीरामकिसनजी म० थे जिनका कोई शिष्य नहीं था। श्रीआनन्दकुँवरजी म० ने इस विषय का उल्लेख करते हुए विषाद प्रकट किया तो तपस्वीजी म० ने सतीजी की गुरुभक्ति से सन्तुष्ट होकर फर्माया—आप कोई वैरागी ले आइए, मैं उसे दीक्षा देकर श्रीरामकिसनजी म० का शिष्य बना दूँगा। इस प्रकार उनकी परम्परा चलती रहेगी।

सतीजी सफदरी से राम बाई नामक एक श्राविका और उनके नारायणचन्द्र नामक नववर्षीय पुत्र को लेकर पुनः तपस्वीजी म० की सेवा में पधारी। वैरागिन बाई सतीजी की सेवा में रहने लगी और नारायणचन्द्र स्वामीजी की सेवा में। संयममार्ग का समुचित बोध देकर तथा वैराग्य की परीक्षा करके सं० १६६८ की माघ की पूर्णिमा के दिन श्रीनारायणचन्द्र को दीक्षित किया गया और श्रीराम किसनजी म० के नाम पर शिष्य बना दिया गया। तत्पश्चात् श्रीराजकुँवर बाई भी दीक्षित हो गईं।

नवदीक्षित मुनि की सार-सँभाल और शिक्षा आदि का भार तपस्वीजी तथा चरितनायकजी पर रहा। श्रीनारायणचन्द्रजी आगे चल कर प्रियवक्ता बने। यह तपस्वीजी तथा चरितनायकजी की महानुभावता तथा उदारता का ज्वलंत प्रमाण है।

तपस्वीजी तथा चरितनायक गुरु-शिष्य विहार करते हुए पालोतरा पधारे। सं० १६६८ का चौमासा वहीं किया।

बीसवाँ चातुर्मास—

साधना के पथ में पाँव रखना शूली पर आरोहण करने के समान है। साधना फूलों की सेज नहीं, तलवार की धार पर चलना है। मीराँ ने सही कहा है—

हे री मैं तो दर्द दिवानी, मेरा दर्द न जाने कोय।
शूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोना होय॥

किन्तु आत्मबली महापुरुष उत्साह और उमंग के साथ साधना के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और एक बार प्रवेश करके बढ़ कर आगे ही बढ़ते जाते हैं। हमारे चरितनायक इसी कोटि के महापुरुष थे। अपनी साधना में सदा जागृत रहते और निरन्तर प्रगति करते जाते थे।

सन्तों में कई श्रेणियाँ होती हैं। कोई तपश्चरण द्वारा कोई स्वाध्याय द्वारा तो कोई ध्यान द्वारा आत्मशोधन करते हैं। कोई वैयावृत्य के प्रधान माध्यम से आगे बढ़ते हैं। जिनशासन में वैयावृत्य को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसे स्वाध्याय और ध्यान के समान आन्तरिक तपों में स्थान दिया गया है। हमारे चरितनायक प्रकृतित सेवाभावी थे, अतएव वैयावृत्य तप का उनके जीवन में प्रमुख स्थान है।

चरितनायकजी नवदीक्षित मुनि की भी सेवा-शुश्रूषा बड़े भाव से किया करते थे, परन्तु स्वाध्याय और ध्यान की ओर भी बराबर आपका लक्ष्य रहता था। उनकी शारीरिक प्रतिभा बड़ी प्रशस्त मानी जाती थी। सहायक-साथी भी आपको अच्छे ही मिलते थे। अतएव आपने अपने जीवन का आन्तरिक रूप से सजाने-संवारने में कोई कसर नहीं रहने दी।

चरितनायक, तपस्वी मुनिराज के साथ विहार करते हुए और स्व-पर का हित-साधन करते हुए समदड़ी पधारे। वि सं १९६६ का चातुर्मास वहीं व्यतीत किया।

इक्कीसवाँ चातुर्मास—

जीवन की पवित्रता की राह पर चलने वाले महानुभाव ही आत्मकल्याण के अधिकारी होते हैं। जीवन की पवित्रता के अभाव में निर्मलता नहीं आती। उस पवित्रता को प्राप्त करने के लिए क्षण भर भी प्रमाद किये बिना सदा सतर्क एवं सावधान रहने की आवश्यकता होती है।

चरितनायक गुरुदेव शोभाचन्द्रजी म० तपस्वीराज की सेवा में सदा तत्पर रहते थे। इतने दीर्घकाल में भी कभी असावधानी नहीं की।

जैन सिद्धान्त के अनुसार तीर्थंकर भगवान् चार ज्ञानों के स्वामी हो कर भी परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व उपदेश नहीं देते थे। आज परिपूर्ण-केवल-ज्ञान प्राप्त होना संभव नहीं, तथापि विशिष्ट श्रुत का अभ्यास तो हो ही सकता है।

उसे प्राप्त करने से पूर्व उपदेश देना चरितनायकजी को रुचिकर नहीं था। यही कारण था कि इक्कीस वर्ष की दीक्षा हो चुकने पर भी आपने व्याख्यान देना आरम्भ नहीं किया था। आप अपनी योग्यतावृद्धि के लिए ही प्रयत्नशील रहते थे। अध्ययनकाल में आपने लम्बा विहार नहीं किया था। फलस्वरूप आप अपने समय के उच्च कोटि के सिद्धान्तवेत्ता बन गये।

समदड़ी से विहार करके आप जोधपुर पधारे। श्रावकों में आमति आई। कल्प के अनुसार पूरे समय तक विराजने की प्रार्थना करने पर तपस्वी महाराज ने फर्माया—'लाभ होना दीखेगा तो ठहर सकते हैं।' तपस्वीजी का इतना कहना ही पर्याप्त था। श्रावकों ने एक योजना बनाई और हजारों की संख्या में पौषध दया आदि व्रत हुए। यथासमय जोधपुर से विहार कर मुनिमण्डली पाली पधारी और वि० सं० १९७० का चातुर्मास वहीं किया। यह चातुर्मास भी सफलता और शान्ति के साथ व्यतीत हुआ।

२२ २३ २४ २५वाँ चातुर्मास—

वृद्ध तपस्वी श्री हिन्दूमलजी महाराज की नेत्रज्योति सर्वथा क्षीण हो चुकी थी अतएव समदड़ी-श्रीसंघ के आग्रह पर तपस्वीजी चार वर्ष तक समदड़ी में ही विराजे। गुरुदेव भी तपस्वीजी की सेवा में रहे। तपस्वीजी की सेवा, नूतन ज्ञान का अभ्यास, शास्त्र लेखन और व्याख्यान, यह चार काम उस समय आपके जिम्मे थे। गुरुदेव ने सेवा करने के साथ-साथ व्याख्यानकला में भी निपुणता प्राप्त कर ली थी। बाईस वर्ष की दीक्षा हो जाने पर ज्ञान का जब परिपाक हो गया तब आपने व्याख्यान फरमाना आरम्भ किया।

बहुत-से लोगों को अपनी विद्या का इतना अजीर्ण हो जाता है कि वे उसे उगल देने के लिए बेताब हो उठते हैं। ऐसे लोगों के लिए चरितनायकजी का यह आदर्श अतीव उपयोगी है।

प्रथम प्रवचन—

चरितनायकजी ने प्रथम बार प्रवचन प्रारम्भ करने से पूर्व विचार किया कि समस्त ज्ञान का सार सदाचार है। सदाचार में ही ज्ञान की सार्थकता है। परन्तु सदाचार का मूलाधार अहिंसा है। अहिंसा की भूमिका पर ही सदाचार का भवन निर्मित होता है। इसी कारण व्रतों में भी पहला स्थान अहिंसा को ही प्रदान किया गया है। अतएव मुझे सर्वप्रथम अहिंसा पर ही प्रवचन करना चाहिए। इस प्रकार की विचारधारा से प्रेरित हो कर आपने अहिंसा के सम्बन्ध में जो प्रवचन किया उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार था—अहिंसा जीवन का

प्रसूत है, उसके पीछे विराट् तत्त्वचिन्तन और उदात्त भावना है। जीवसृष्टि की सत्ता का आधार अहिंसा ही है। अहिंसा की ही यह महिमा है कि इस भूतल पर किंचित् शांति दृष्टिगोचर होती है। जहाँ अहिंसा को कतई स्थान न हो और हिंसा ही हिंसा का बोलबाला हो उस समाज की कल्पना कीजिए। वह समाज जीवित नहीं रह सकता और कदाचित् रहा तो उसकी दशा नारकों से अच्छी कदापि नहीं हो सकती।

बहुत लोग समझते हैं कि जगत हिंसा के सहारे जीवित है। हमारे प्रत्येक कार्य से हिंसा होती है और हिंसा के बिना जीवन नहीं निभ सकता। थोड़ी देर के लिए उनका कथन सच मान लिया तो भी इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि हिंसा कर्त्तव्य है। कोई बुराई अनिवार्य हो सकती है, परन्तु अनिवार्य होने से ही उसे अच्छाई नहीं माना जा सकता। मगर वास्तविकता यह है इस विचार धारा के मूल में अहिंसा सम्बन्धी अज्ञान भरा है।

महर्षियों ने हिंसा का स्वरूप बतलाया है—'प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।' क्रोध मान, माया या लोभ आदि के वश होकर जीव के प्राणों का विनाश करना हिंसा है।

स्पष्ट है कि हिंसा का मूलाधार कषाय है। जहाँ कषाय है वहाँ हिंसा है, बल्कि कषाय हिंसा ही है। जहाँ प्रमाद नहीं कषाय का अभाव है, वहाँ हिंसा नहीं। इसी कारण शास्त्रकारों ने हिंसा के दो भाग कर दिये हैं—भावहिंसा और द्रव्यहिंसा। कषाय का कालुष्य होना जीव को मारने का संकल्प होना भावहिंसा है और सिर्फ प्राणव्यपरोपण होना द्रव्यहिंसा है। भावहिंसा एकान्ततः हिंसा है किन्तु द्रव्यहिंसा भावहिंसा के साथ ही हिंसा होती है, अन्यथा नहीं।

दयालु वैद्य या डाक्टर रोगी के प्राणों की रक्षा के लिए सावधानीपूर्वक चीरफाड़ करता है, परन्तु रोगी मर जाता है तो डाक्टर हिंसा का भागी नहीं होता। इसके विपरीत कोई किसी जीव को मारने का प्रयत्न करता है और संयोगवश वह जीव मरता नहीं तो भी मारने का प्रयत्न करने वाला हिंसा का भागी होता है। आचार्य कहते हैं—

> उच्चालियम्मि पाए, इरियासमियस्स संकमट्ठाए ।
> वावज्जेज्ज कुलिंगी, मरिज्ज तं जोगमासज्ज ॥

दयालु मुनि यतना के साथ, अपनी आत्मा के प्रति इमानदारी रखता हुआ गमन करता है, उसके गमन से प्राणव्यपरोपण होना संभव है तथापि मुनि अपनी दया भावना के कारण नवीन कर्मों का बंध नहीं करता बल्कि पुरातन कर्मों की निर्जरा करता है।

इसके विपरीत तन्दुलमत्स्य द्रव्यहिंसा न करता हुआ भी तीव्र भावहिंसा के फलस्वरूप घोर पाप का भागी होता है।

इस प्रकार हिंसा से बचने का उपाय है—हृदय में करुणा की मन्दाकिनी प्रवाहित करना यतना-विवेक को जीवन का साथी बनाना। जहाँ विवेक है वहीं हिंसा से बचाव है। अतएव हिंसा के पाप से जो बचना चाहता है उसे कषाय की कलुषता से बचना होगा और यतनाचार को प्रश्रय देना होगा।

हमारे चरितनायक का इस प्रकार का प्रथम प्रवचन हुआ। विस्तारभय से इसका संक्षिप्त सार ही दिया गया है। आशय यह है कि समदड़ी में चार वर्ष तक तपस्वीजी की सेवा में रह कर चरितनायकजी ने गंभीर तत्त्वचिन्तन के साथ व्याख्यान शैली का भी अच्छा विकास किया। लम्बे समय तक विराजने पर भी जनता की श्रद्धाभक्ति में कमी नहीं आई, बल्कि समय के साथ बढ़ती ही चली गई। आपके विराजने से नगर में सुख-शांति बनी रहती थी।

जोधपुर, पाली आदि क्षेत्रों के दर्शनार्थी भाई समदड़ी पहुँचते थे। गुरुदेव स्वयं जंगमतीर्थ थे तो आपके कारण समदड़ी तीर्थधाम बन जाय, यह स्वाभाविक ही था।

गुरुभ्राता का वियोग—

चरितनायक समदड़ी में विराजमान थे। सं० १९७४ के वैशाख मास में आपके पदप्रदर्शक एवं बड़े गुरुभ्राता योगनिष्ठ आत्मार्थी मुनि श्री सेठमलजी म० ठा० ३ से पधार गये। सब जगह सूचना दे कर अन्य सन्तों और सतियों को वहीं बुला लिया। सब के आ जाने पर योगीजी ने फर्माया—मेरे आयुष्य का अन्त सन्निकट है। वैशाख शुक्ला ४ को तीसरे प्रहर में तीन दिन के संथारे के पश्चात् मेरा यह शरीर छूट जायगा।

योगीजी की भविष्यवाणी से सन्नाटा छा गया। आपने सबको धैर्य बंधाया। शीघ्र ही नियत दिन और समय आ गया। योगनिष्ठ महाराज ने जराजीर्ण शरीर का परित्याग किया और आप स्वर्गवासी हो गए।

योगनिष्ठ महाराज का जन्म सं० १९१४ की पौष कृष्णा ३ को समदड़ी में ही हुआ था। आपके पिता का नाम हमीरजी लूंकड़ और माताजी का नाम लछमी बाई—लिछमा बाई था। पूज्य श्रीपूनमचन्दजी म० के निकट समदड़ी में ही आप दीक्षित हुए थे। समदड़ी में ही आपका स्वर्गवास हुआ। वास्तव में आप अपने युग के एक अनुपम सन्त थे।

इसके विपरीत तन्दुलमत्स्य द्रव्यहिंसा न करता हुआ भी तीव्र भावहिंसा के फलस्वरूप घोर पाप का भागी होता है।

इस प्रकार हिंसा से बचने का उपाय है—हृदय में करुणा की मन्दाकिनी प्रवाहित करना यतना-विवेक को जीवन का साथी बनाना। जहाँ विवेक है वहीं हिंसा से बचाव है। अतएव हिंसा के पाप से जो बचना चाहता है उसे कषाय की कलुषता से बचना होगा और यतनाचार को प्रश्रय देना होगा।

हमारे चरित्रनायक का इस प्रकार का प्रथम प्रवचन हुआ। विस्तारभय से इसका संक्षिप्त सार ही दिया गया है। आशय यह है कि समदड़ी में चार वर्ष तक तपस्वीजी की सेवा में रह कर चरित्रनायकजी ने गंभीर तत्त्वचिन्तन के साथ व्याख्यान शैली का भी अच्छा विकास किया। लम्बे समय तक विराजने पर भी जनता की श्रद्धाभक्ति में कमी नहीं आई, बल्कि समय के साथ बढ़ती ही चली गई। आपके विराजने से नगर में सुख-शांति बनी रहती थी।

जामपुर, पाली आदि क्षेत्रों के दर्शनार्थी भाई समदड़ी पहुँचते थे। गुरुदेव स्वयं जंगमतीर्थ थे तो आपके कारण समदड़ी तीर्थधाम बन जाय यह स्वाभाविक ही था।

गुरुभ्राता का वियोग—

चरित्रनायक समदड़ी में विराजमान थे। सं० १९७४ के वैशाख मास में आपके पथप्रदर्शक एवं बड़े गुरुभ्राता योगनिष्ठ आत्मार्थी मुनि श्री जेठमलजी म० ठा० ३ से पधार गये। सब जगह सूचना दे कर अन्य सन्तों और सतियों को वहीं बुला लिया। सब के आ जाने पर योगीजी ने फर्माया—मेरे आयुष्य का अन्त सन्निकट है। वैशाख शुक्ला ४ को तीसरे प्रहर में, तीन दिन के संथारे के पश्चात् मेरा यह शरीर छूट जायगा।

योगीजी की भविष्यवाणी से सन्नाटा छा गया। आपने सबको धैर्य बंधाया। शीघ्र ही नियत दिन और समय आ गया। योगनिष्ठ महाराज ने जराजीर्ण शरीर का परित्याग किया और आप स्वर्गवासी हो गये।

योगनिष्ठ महाराज का जन्म सं० १९१४ की पौष कृष्णा ३ को समदड़ी में ही हुआ था। आपके पिता का नाम हाथीजी सूकड़ और माताजी का नाम लक्ष्मी बाई—खिवणा बाई था। पूज्य श्रीपूनमचन्दजी म० के निकट समदड़ी में ही आप दीक्षित हुए थे। समदड़ी में ही आपका स्वर्गवास हुआ। वास्तव में आप चरम युग के एक अनुपम सन्त थे।

अद्भुत है, उसके पीछे विराट् तत्त्वचिन्तन और उदात्त भावना है। जीवसृष्टि की सत्ता का आधार अहिंसा ही है। अहिंसा की ही यह महिमा है कि इस भूतल पर किंचित् शांति दृष्टिगोचर होती है। जहाँ अहिंसा को कहीं स्थान न हो और हिंसा ही हिंसा का बोलबाला हो, उस समाज की कल्पना कीजिए। वह समाज जीवित नहीं रह सकता और कदाचित् रहा तो उसकी दशा नारकों से अच्छी कदापि नहीं हो सकती।

बहुत लोग समझते हैं कि जगत हिंसा के सहारे जीवित है। हमारे प्रत्येक कार्य से हिंसा होती है और हिंसा के बिना जीवन नहीं निभ सकता। थोड़ी देर के लिए उनका कथन सच मान लिया तो भी इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि हिंसा कर्तव्य है। कोई बुराई अनिवार्य हो सकती है, परन्तु अनिवार्य होने से ही उसे अच्छाई नहीं माना जा सकता। मगर वास्तविकता यह है इस विचार धारा के मूल में अहिंसा सम्बन्धी अज्ञान भरा है।

महर्षियों ने हिंसा का स्वरूप बतलाया है—'प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।' क्रोध मान माया या लोभ आदि के वश होकर जीव के प्राणों का विनाश करना हिंसा है।

स्पष्ट है कि हिंसा का मूलाधार कषाय है। जहाँ कषाय है, वहाँ हिंसा है, बल्कि कषाय हिंसा ही है। जहाँ प्रमाद नहीं कषाय का अभाव है, वहाँ हिंसा नहीं। इसी कारण शास्त्रकारों ने हिंसा के दो भाग कर दिये हैं—भावहिंसा और द्रव्यहिंसा। कषाय का कालुष्य होना जीव को मारने का संकल्प होना भावहिंसा है और सिर्फ प्राणव्यपरोपण होना द्रव्यहिंसा है। भावहिंसा एकान्ततः हिंसा है किन्तु द्रव्यहिंसा भावहिंसा के साथ ही हिंसा होती है, अन्यथा नहीं।

दयालु वैद्य या डाक्टर रोगी के प्राणों की रक्षा के लिए सावधानीपूर्वक चीरफाड़ करता है, परन्तु रोगी मर जाता है तो डाक्टर हिंसा का भागी नहीं होता। इसके विपरीत, कोई किसी जीव को मारने का प्रयत्न करता है और संयोगवश वह जीव मरता नहीं तो भी मारने का प्रयत्न करने वाला हिंसा का भागी होता है। आचार्य कहते हैं—

> चर्दे खु चरमाणस्स, दयापेहिस्स भिक्खुणो।
> चवे स वम्मबद्धे कम्मं, पोराणं च विधूयदि ॥

दयालु मुनि यतना के साथ प्राणी मात्र के प्रति दयाभावना रखता हुआ गमन करता है, उसके गमन से प्राणव्यपरोपण होना संभव है, तथापि मुनि अपनी दया भावना के कारण नवीन कर्मों का बंध नहीं करता बल्कि पुरातन कर्मों की निर्जरा करता है।

पन्नालालजी महाराज से मिलाप हुआ। स्वामीजी बड़े प्रभावशाली सन्त थे। समाज में चमकते हुए नक्षत्र थे। सर्वप्रथम बम्बई पधारने वाले सन्त आप ही थे। स्थानकवासी जैन साधुओं के लिए आपने ही बम्बई क्षेत्र खोला था। यह सन्तसमागम अतीव आनन्दप्रद रहा।

खेरवाड़ा से सादड़ी होकर आप मेवाड़ में पधारे। आकोला (मेवाड़) में मुनि श्री नेमीचन्द्रजी महाराज का स्वर्गवास हो जाने से वृद्ध सन्त दौलतरामजी महाराज अकेले रह गये थे। वे आकोला से देलवाड़ा चले आये। चरितनायकजी उन्हें लाने के लिए देलवाड़ा पधारे। उस समय वहाँ शेष काल में ४२ सतियाँ विराजमान थीं जिनमें चरितनायक की मातेश्वरी श्री ज्ञानकुँवरजी महासती भी थीं।

एक दिन चरितनायक अपने समुचित उच्च आसन पर आसीन थे। सतीसमुदाय दर्शनार्थ उपस्थित था। श्रीज्ञानकुँवरजी म० ने कुशल प्रश्न किया— मुनिवर, सुखसाता है ?

चरितनायकजी की दृष्टि मातेश्वरी महासतीजी के चेहरे पर पड़ी। देखा नेत्रों से मुनि के मन के समान निर्मल अश्रुबिन्दु झर पड़े हैं। उस समय आपको शास्त्र का पाठ स्मरण हो आया—

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निन्दापसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥

लाभ और अलाभ में सुख में और दुःख में, जीवन में और मरण में निन्दा और प्रशंसा में तथा सन्मान और अपमान में साधु को समभावी होना चाहिए। इन प्रसंगों पर जिसके चित्त में लेश मात्र भी हर्ष या विषाद उत्पन्न नहीं होता और समता के परम रमणीक सरोवर में ही निमग्न रहता है, वही आदर्श सत्पुरुष है।

तत्पश्चात् मातेश्वरी की ओर देखकर आपने फर्माया—"महासतीजी मानव जीवन उच्च है और संयमजीवन का स्तर तो और भी उच्च माना गया है। अनेक अतीत जन्मों में संचित की हुई पुण्य-पूंजी से इसकी प्राप्ति हुई है। इस जीवन में निराकुलता निर्द्वन्द्वता और शुचितामय दिव्य भावनाओं को ही स्थान मिलना चाहिए। ठीक है कि मोह के सूक्ष्म अंश बड़ी कठिनाई से दूर होते हैं, तथापि उसे अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चाहिए और अशुभ ध्यान को क्षण भर के लिए भी अवकाश नहीं मिलना चाहिए। आपको स्वर्गीय सन्तोष होना चाहिए कि आपने अपनी सन्तति को संयम के सन्मार्ग पर लगा कर अपनी कृपा सम्पन्न की है।"

हमारे चरितनायकजी पर आपकी असाधारण कृपा रही। चरितनायक के गुरुश्री का उसी समय स्वर्गवास हो गया था जब आप दो वर्ष के दीक्षित थे। चरितनायकजी आपको ही अपना गुरु मानते थे। आपने ही चरितनायक गुरुदेव को ज्ञानाभ्यास कराया था और साधनापथ पर अग्रसर किया था। अतएव आपके वियोग से गुरुदेव एक बार तो व्यग्र हो उठे, परन्तु संसार की अनित्यता का विचार करके संयम में तल्लीन हो गये।

जिन उत्तखोराज श्रीहिन्दूमलजी म० की सेवा के हेतु समदड़ी में विराजे थे उनका भी कुछ मास पश्चात् आश्विन कृष्णा १२ सं० १९७४ में देहान्त हो गया।

छब्बीसवाँ चातुर्मास—

वि० सं० १९७४ का चातुर्मास समाप्त होने पर आप पं० मुनि श्रीनेमिचन्द्रजी म० के साथ विहार करके करमावास पधारे। वहाँ आपको समाचार मिले कि पूज्य रघुनाथजी म० के सम्प्रदाय के सन्त श्रीकालूरामजी म० रुग्णावस्था में है और कोई दूसरा सन्त उनकी सेवा के लिए नहीं है। यह समाचार सुनकर सेवाव्रती चरितनायक उनकी सेवा के लिए पुनः समदड़ी पधार गये।

इस घटना से गुरुदेव के हृदय की विशालता और उदारता का आकलन किया जा सकता है। दूसरे गच्छ के मुनि की सेवा के लिए इस प्रकार तत्परता होना एक असाधारण बात है जो असाधारण महापुरुष में ही पाई जा सकती है। अपनी आयु का अन्त आसन्न जान मुनि श्री कालूरामजी म० ने संथारा किया। बीस दिन पश्चात् उनका समाधिमरणपूर्वक स्वर्गवास हो गया।

तत्पश्चात् समदड़ी से विहार करके आप पं० मुनि श्री नेमचन्द्रजी महाराज के साथ चातुर्मास के लिए जालौर पधारे। सं १९७५ का चौमासा जालौर में हुआ किन्तु आश्विन मास में पण्डित मुनि नेमचन्द्रजी का भी स्वर्गवास हो गया। कुछ ही समय व्यतीत हुआ था कि श्री मुलतानमलजी महाराज भी स्वर्गवासी हो गये। इस प्रकार एक के बाद दूसरे वियोग के प्रसंगों का आपने धैर्य के साथ सहन किया। इन घटनाओं ने आपकी विरक्तिभावना का और अधिक पोषण किया।

चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् विहार करके आप समदड़ी पधारे। वहाँ सम्प्रदाय के सन्तों और सतियों का सम्मेलन हुआ। उसमें सम्प्रदाय की पुनर्व्यवस्था पर विचार किया गया।

सत्ताईसवाँ चातुर्मास—

समदड़ी से पाली होते हुए आप ठा० ३ से सोजेराव पधारे। वहाँ श्री स्वामीदासजी महाराज के सम्प्रदाय के विद्वान् और पुरुषार्थी स्वामी श्री

१ हमारे चरितनायकजी पर आपकी असाधारण कृपा रही। चरितनायक के गुरुजी का उसी समय स्वर्गवास हो गया था जब आप दो वर्ष के दीक्षित थे। चरितनायकजी आपको ही अपना गुरु मानते थे। आपने ही चरितनायक गुरुदेव को ज्ञानाभ्यास कराया था और साधनापथ पर अग्रसर किया था। अतएव आपके वियोग से गुरुदेव एक बार तो व्यग्र हो उठे, परन्तु संसार की अनित्यता का विचार करके *संयम में तल्लीन हो गये।*

जिन तपस्वीराज श्रीहिन्दूमलजी म० की सेवा के हेतु समदड़ी में विराजे थे, उनका भी कुछ मास पश्चात् आश्विन कृष्णा १३ सं० १९७४ में देहान्त हो गया।

छव्वीसवाँ चातुर्मास—

वि० सं० १९७४ का चातुर्मास समाप्त होने पर आप पं० मुनि श्रीनेमिचन्द्रजी म० के साथ विहार करके फरमाबास पधारे। वहाँ आपको समाचार मिले कि पूज्य रघुनाथजी म० के सम्प्रदाय के सन्त श्रीकालूरामजी म० रुग्णावस्था में हैं और कोई दूसरा सन्त उनकी सेवा के लिए नहीं है। यह समाचार सुनकर सेवाव्रती चरितनायक उनकी सेवा के लिए पुनः समदड़ी पधार गये।

इस घटना से गुरुदेव के हृदय की विशालता और उदारता का आकलन किया जा सकता है। दूसरे गच्छ के मुनि की सेवा के लिए इस प्रकार तत्परता होना एक असाधारण बात है जो असाधारण महापुरुष में ही पाई जा सकती है। अपनी आयु का अन्त आसन्न जान मुनि श्री कालूरामजी म० ने संथारा किया। बीस दिन पश्चात् उनका समाधिमरणपूर्वक स्वर्गवास हो गया।

तत्पश्चात् समदड़ी से विहार करके आप पं० मुनि श्री नेमचन्द्रजी महाराज के साथ चातुर्मास के लिए जालौर पधारे। सं० १९७५ का चौमासा जालौर में हुआ किन्तु *आश्विन मास में पण्डित मुनि नेमचन्द्रजी का भी स्वर्गवास* हो गया। कुछ ही समय व्यतीत हुआ था कि श्री सुजानमलजी महाराज भी स्वर्गवासी हो गये। इस प्रकार एक के बाद दूसरे वियोग के प्रसंगों को आपने धैर्य के साथ सहन किया। इन घटनाओं ने आपकी विरक्तिभावना को और अधिक पोषण किया।

चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् विहार करके आप समदड़ी पधारे। वहाँ सम्प्रदाय के सन्तों और सतियों का सम्मेलन हुआ। उसमें सम्प्रदाय की पुनर्व्यवस्था पर विचार किया गया।

सत्ताईसवाँ चातुर्मास—

समदड़ी से पाली होते हुए आप ठा० ३ से सोजत पधारे। वहाँ श्री स्वामीदासजी महाराज के सम्प्रदाय के विद्वान् और पुरुषार्थी स्वामी श्री

दत्तावरमलजी महाराज से मिलाप हुआ। स्वामीजी बड़े प्रभावशाली सन्त थे। समाज में चमकते हुए नक्षत्र थे। सर्वप्रथम बम्बई पधारने वाले सन्त आप ही थे। स्थानकवासी जैन साधुओं के लिए आपने ही बम्बई क्षेत्र खोला था। यह सन्तसमागम अतीव आनन्दमय रहा।

सांबिराव से सादड़ी होकर आप मेवाड़ में पधारे। आकोला (मेवाड़) में मुनि श्री नेमीचन्द्रजी महाराज का स्वर्गवास हो जाने से वृद्ध सन्त शोभावरामजी महाराज अकेले रह गये थे। वे आकोला से देलवाड़ा चले आये। चरितनायकजी उन्हें लाने के लिए देलवाड़ा पधारे। उस समय वहाँ शेष काल में ४२ सतियाँ विराजमान थीं जिनमें चरितनायक की मातेश्वरी श्री ज्ञानकुँवरजी महासती भी थीं।

एक दिन चरितनायक अपने सन्तसमुचित उच्च आसन पर आसीन थे। सतीसमुदाय दर्शनार्थ उपस्थित था। श्रीज्ञानकुँवरजी म० ने कुशल प्रश्न किया— मुनिवर, सुखसाता है?

चरितनायकजी की दृष्टि मातेश्वरी महासतीजी के चेहरे पर पड़ी। देखा नेत्रों से मुनि के मन के समान निर्मल अश्रुबिन्दु झर पड़े हैं। उस समय आपको शास्त्र का पाठ स्मरण हो आया—

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निन्दापसंसासु, तहा माणावमाणओ॥

लाभ और अलाभ में, सुख में और दुःख में जीवन में और मरण में निन्दा और प्रशंसा में तथा सन्मान और अपमान में साधु को समभावी होना चाहिए। इन प्रसंगों पर जिसके चित्त में लेश मात्र भी हर्ष या विषाद उत्पन्न नहीं होता और समता के परम रमणीक सरोवर में ही निमग्न रहता है वही आदर्श सन्तपुरुष है।

तत्पश्चात् मातेश्वरी की ओर देखकर आपने फर्माया—"महासतीजी मानव जीवन उच्च है और संयमजीवन का स्तर तो और भी उच्च माना गया है। अनेक अतीत जन्मों में संचित की हुई पुण्यराशि से इसकी प्राप्ति हुई है। इस जीवन में निराकुलता निर्द्वन्द्वता और शुचितामय दिव्य भावनाओं को ही स्थान मिलना चाहिए। ठीक है कि मोह का सूक्ष्म अंश बड़ी कठिनाई से दूर होते हैं तथापि उसे अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चाहिए और अशुभ ध्यान को क्षण भर के लिए भी अवकाश नहीं मिलना चाहिए। आपको स्वर्गीय सन्तोष होना चाहिए कि आपने अपनी सन्तति को संयम के सन्मार्ग पर लगा कर अपनी कूख उज्ज्वल की है।"

गुरुदेव ने पुनः कहा—'जगत की माताएँ सन्तान के वर्तमान जीवन का निर्माण करती हैं और इतने मात्र से अपने को कृतार्थ समझ लेती हैं, परन्तु आपने अपनी सन्तान के इसी जीवन को नहीं भविष्यत् के जीवन को भी मंगलमय बना दिया है। आपने मेरे सौभाग्य का मंगलद्वार खोल दिया है। यह तपोधन और संयम-सम्पत्ति पाकर मैं निहाल होगया हूँ। फिर विषाद को स्थान कहाँ है ?

मानेश्वरी—मुनीश्वर, आप चिरायु हों चतुर्विध श्रीसंघ की नौका के कर्णधार हों। आपकी सदा जय-विजय हो। मैं अपना कर्त्तव्य पालन करके अतीव सन्तुष्ट हूँ। जिनधर्म की प्राप्ति बड़े भाग्य से होती है। इसकी अधिक से अधिक आराधना में ही जीवन की धन्यता है। अचानक ही एक विचार-तरंग चित्त में उत्पन्न हुई और आँखों के रास्ते बाहर आ गई थी। वह अतीत की स्मृति का फल थी। मन ने सोचा—पूज्यश्री जल्दी ही स्वर्गधाम सिधार गये थे। योगनिष्ठ महाराज का आधार था परन्तु वे भी आपको त्याग गये। उस समय मैं मेवाड़ में और आप मारवाड़ में थे। उस दारुण प्रसंग पर सान्त्वना के दो बोल भी मैं न सुना सकी। इसी स्मृति ने हृदय को व्यथित कर दिया था।

चरितनायक—'आचारांग को स्मरण कीजिए। जगत के साधारण जीव जिस घटना या परिस्थिति में विह्वल हो कर नूतन कर्मों का बंध करते हैं वही घटना या परिस्थिति ज्ञानी जनों के पुरातन कर्म काटने का कारण बन सकती है। 'जे आसवा ते परिस्सवा जे परिस्सवा ते आसवा।

'मनुष्य को परिस्थिति का दास नहीं स्वामी होना चाहिए। स्वामी बनकर वह प्रत्येक परिस्थिति से अभीष्ट लाभ उठा सकता है। पूज्यश्री और योगीजी महाराज के वियोग से चित्त को आघात तो लगा क्योंकि मैं आन्तरिक दुर्बलता को पूरी तरह जीत नहीं सका तथापि उनके वियोग ने मेरे वैराग्य में वृद्धि ही की। जीवन की नश्वरता नग्न रूप में मेरे सामने आ गई।

मानेश्वरी—'गुरुदेव और ज्येष्ठ गुरुभ्राता के वियोग के समय आपको जो व्यथा हुई, किस प्रकार उससे छुटकारा पाया आपने ?

चरितनायक—'मैंने विचार किया—गुरुजी और गुरुभ्राता के प्रति मेरे मन में जो अनुराग का भाव है वह भी एक प्रकार की विकृति है। उस विकृति को दूर करने के लिए प्रकृति ने मेरी सहायता की है। प्रकृति राग के बन्धन तोड़ने में मेरी सहायिका हो रही है। मुझे स्वावलम्बी बनने को विवश कर रही है।' मैंने यह भी विचार किया कि वियोगजन्य वेदना संयोग में सुख मानने का अनिवार्य फल है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक आने वाला संकट तेजस्वी पुरुष की

क्षमता को बढ़ाता ही है घटाता नहीं। संकट के समय मनुष्य पथविचलित न हो तो अवश्य उसे सफलता प्राप्त होती है।

मातेश्वरी—तो आपका मन अब शान्त और स्वस्थ है?

चरितनायक—जैसे परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थी को आनन्द और सन्तोष प्राप्त होता है, उसी प्रकार मुनिजीवन मेरे लिए आनन्ददायक है। लौकिक प्रपंचों से विरत और आत्मनिरत होने के कारण मेरे चित्त में निराकुलता है।

मातेश्वरी—आपका समाधिभाव सराहनीय है, उत्साह और पराक्रम प्रशस्त है; किन्तु संयम साधना में कोई सहायक भी तो चाहिए। आज आप दो ठाणा हैं। दूसरे सन्त वृद्ध हैं। सेवा करना व्याख्यान देना आदि सभी कार्य आपको अकेले ही करने पड़ते हैं। एक छोटे मुनि साथ में हों तो आपको थोड़ा आराम मिल जाय।

चरितनायक—तो आपका आशय यह है कि मैं कोई चेला बना लूँ?

मातेश्वरी—हाँ सुपात्र मिल जाय तो क्या हानि है?

चरितनायक—महासतीजी हानि हो भी सकती है और नहीं भी। अपने आराम के विचार से चेला बनाना हानिकर है। इससे जीवन में प्रमाद को प्रश्रय मिलता है। इसके अतिरिक्त, इससे रागभाव की वृद्धि भी हो सकती है। हाँ कोई भव्य जीव संसार-सागर से तरना चाहता हो और हमारे पथप्रदर्शन एवं सहयोग से उसका कल्याण हो सकता हो तो उस सहायता देने के विचार से शिष्य बनाना उचित ही है। ऐसा कोई मुमुक्षु आएगा तो देखा जायगा। फिर भी कौन जानता है कि भविष्य में कौन कैसा निकलेगा?

मातेश्वरी—ऐसे अल्पवयस्क को शिष्य बनाइए जिसमें आप इच्छानुसार संस्कारों का आरोपण कर सकें। परिपक्व संस्कार वालों के जीवन को पलटना कठिन होता है। नीतिकार भी कहते हैं—

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।

अर्थात्—नये पात्र में किया हुआ संस्कार स्थायी होता है।

चरितनायक—गुरुजनों के आशीर्वाद से मैं आज तक जैनधर्म की यथा शक्ति सेवा करता आ रहा हूँ और भविष्य में भी सेवा करने की भावना रखता हूँ। संयोग अनुकूल होंगे तो सहायक स्वतः मिल जायगा। इस विषय में अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। आपका यह कहना यथार्थ ही है कि परिपक्व एवं विकृत संस्कार वाले की अपेक्षा अपरिपक्व संस्कार वाले अल्पवय साधक को संयम के साँचे में ढालना सरल है। उसे यथेष्ट अध्ययन के द्वारा विद्वान् भी

बनाया जा सकता है। जैन एवं जैनेतर सन्तों के इतिहास पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि महान् विभूतियों ने कोमल वय में ही त्यागमय जीवन अंगीकार कर लिया था। असल बात यह है कि जो मनुष्य पूर्वजन्म के तप-त्याग के संस्कारों को साथ लेकर जन्म लेता है, वह बाल्यकाल में ही त्याग के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है। उसका जीवन ज्ञान और क्रिया दोनों दृष्टियों से अपेक्षाकृत अधिक उज्ज्वल बनता है। फिर भी पात्रता की परीक्षा तो करनी ही चाहिए, अन्यथा शासन की अवहेलना भी हो सकती है।

माता-पुत्र के इस संवाद को सुनकर उपस्थित सतीसमुदाय तथा अन्य श्रोताओं का मन-मयूर नाच उठा। श्रीहगनकुँवरजी म० तथा श्रीआनन्दकुँवरजी म० उस समय की मानी हुई विदुषी सतियाँ थीं। उन्होंने चरितनायकजी की सहनशीलता धैर्य गम्भीर विचारशक्ति, सन्तोष और सद्भाव की भूरि भूरि प्रशंसा की। सतीसमुदाय ने माता महासती श्रीज्ञानकुँवरजी का हार्दिक धन्यवाद दिया और अपनी हार्दिक प्रमोद भावना प्रकट की।

देलवाड़ा श्रीसंघ के अत्याग्रह से चरितनायकजी ने वहीं चौमासा व्यतीत करने की मर्यादानुसार स्वीकृति दी। श्रीज्ञानकुँवरजी आदि सतियों ने उदयपुर की ओर विहार किया और श्रीआनन्दकुँवरजी अभयकुँवरजी आदि ठाणा ४ का चौमासा देलवाड़े में ही हुआ।

अट्ठाईसवाँ चातुर्मास—

जैन मुनि जहाँ अपना सुआसन लगाते हैं वहाँ सुचारु रूप से धर्मकथा चलती ही है। विशेष रूप से चातुर्मासकाल में तो धर्मोपदेश एवं धर्माचरण की प्रधानता रहती है। श्रावण और भाद्रपद मास में उधर मूसलधार वर्षा होती है तो यहाँ भी सन्तों के मुख से प्रवचनपीयूष की धाराएँ प्रवाहित होने लगती हैं। उधर भूमि पर सर्वत्र हरीतिमा व्याप्त होती है तो यहाँ भी भावुक भक्तों के चित्त धर्मप्रेम से हरे-भरे हो जाते हैं। उधर आकाश में विद्युत् चमकती है तो इधर भी तपस्या की बिजली का चमत्कार दिखलाई पड़ता है। उधर मयूरों की ध्वनि प्रस्फुटित होती है तो इधर भी स्वाध्याय का मन्द्रघोष चित्त को आह्लादित कर देता है। उधर सरोवर और सरिताएँ सलिल से परिपूर्ण हो जाते हैं तो इधर धर्म भावनाओं से धार्मिकों के हृदय परिपूर्ण हो जाते हैं।

चरितनायकजी के विराजने से देलवाड़ा क्षेत्र में खूब धर्मजागृति हुई। वि० सं० १९७६ का यह चातुर्मास समाप्त हुआ तो आप उदयपुर की ओर पधारे। मार्ग में गोगुन्दा-चातुर्मास के लिए भेजे हुए मुनि नारायणदासजी म० भी मिल

गये। मेवाड़ को पावन करते हुए, आप राणकपुर, सादड़ी आदि क्षेत्रों में पधारे और फिर पाली में पदार्पण किया।

उस समय पाली में पूज्य श्रीलालजी महाराज विराजमान थे। दोनों ओर से मुनि परस्पर मिलने के लिए पधारे। अनेक परम्परागत धारणाओं के सम्बन्ध में प्रेमपूर्ण चर्चा हुई। पूज्य श्रीलालजी म० श्रीहुक्मीचन्द्रजी म० के सम्प्रदाय के बड़े प्रभावशाली आचार्य थे। आपकी आगम सम्बन्धी विद्वता अद्भुत थी। जहाँ कहीं पूज्यश्री का पदार्पण होता, अपूर्व धर्मभावना उत्पन्न हो जाती थी। आपका हृदय उदार था और प्रकृति सौम्य थी। सभी मुनिराजों के साथ प्रेम से मिलते थे। चरित्रनायकजी भी आपसे मिले और तत्त्वचर्चा का खूब आनन्द रहा।

पाली से विहार करके चरित्रनायकजी जोधपुर पधारे। उन्हीं दिनों मारवाड़ी श्री चौथमलजी महाराज के गुरु श्री नथमलजी महाराज का स्वर्गवास हुआ था। आपने भी चौथमलजी महाराज के पास पधार कर यथोचित सहानुभूति प्रकट की। मारवाड़ी मुनियों का स्नेहसम्मेलन हुआ।

संघ की आग्रहपूर्ण भावना स्वीकार कर आपने जोधपुर का चौमासा स्वीकार कर लिया। श्री नारायणदासजी महाराज का शिष्य भव रहा था और साथ में दो वृद्ध सन्त थे। सन्तसेवा और व्याख्यान का भार आप पर ही था। चातुर्मासकाल में व्रत-प्रत्याख्यान हुए और शिक्षा का प्रचार भी अच्छा हुआ। उस समय धार्मिक ज्ञान का प्रसार मुनियों द्वारा ही होता था। शिक्षाशालाएँ नहीं थीं। चरित्रनायकजी से अनेक श्रावकों ने प्रतिक्रमण आदि सीखा। इस प्रकार चातुर्मास सफलता के साथ व्यतीत हुआ।

उनतीसवाँ चातुर्मास—

जैन मुनि विचरणशील सन्त हैं। किसी एक स्थान पर टिके रहना उनकी मर्यादा के विरुद्ध है। चातुर्मास में चार मास के सिवाय शेष काल में वे मर्यादित समय से अधिक नहीं ठहरते। अपवाद रुग्णता या अतिशय वृद्धता आदि विशेष कारण से ही होता है। वे पक्षी के समान अनियत वासी होते हैं अतएव निर्द्वन्द्व और स्वतन्त्र होते हैं। इसी कारण चौमासा व्यतीत होते ही वे प्रस्थान कर देते हैं।

जोधपुर के चौमासे के पश्चात् चरित्रनायकजी ने थली की ओर विहार किया। छोटे-बड़े ग्रामों की जनता को वीतराग वाणी श्रवण कराते हुए बालोतरा पधारे और फिर सिवाना। सं० १६७८ का चातुर्मास सिवाने में ही व्यतीत हुआ। इस क्षेत्र में उस समय स्थानकवासियों का बड़ा प्रभाव था किन्तु सन्तों का पदार्पण कम होने से उस प्रभाव में भी अब कमी हो गई है। फिर भी वहाँ धर्म के वास्तविक स्वरूप के ज्ञाता अनेक श्रावक हैं।

सिवाना—चातुर्मास बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। चातुर्मास के अनन्तर चरित्रनायकजी ने विहार कर दिया।

तीसरा चातुर्मास—

धर्मप्रचार भी आत्मकल्याण का एक श्रेष्ठ उपाय है। जिनमार्ग की प्रभावना करने से उत्कृष्ट रसायन आने पर, तीर्थंकर गोत्र बंधता है। जैनधर्म का प्रचार न तलवार के बल से और न आडम्बर से हुआ। सन्तों के उत्कृष्टकोटि के तप त्याग संयम और इन्द्रियदमन से ही जैनधर्म का प्रसार हुआ और हो रहा है। प्रचारक जितना सदाचारी इन्द्रियविजेता और धर्मनिष्ठ होगा उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त कर सकेगा। उसमें निर्भीकता सत्यनिष्ठा जनता के मानस को परखने की कुशलता निर्लोभिता और प्रतिभा का होना आवश्यक है। किन्तु इन सब गुणों से आवश्यक है उपदेश के अनुकूल आचरण। यह विशेषता विरले साधुओं में ही पाई जाती है।

हमारे चरित्रनायक उन्हीं विरल विभूतियों में अन्यतम थे अतएव धर्मप्रचार में उन्हें असाधारण सफलता प्राप्त होती थी। आप में उपर्युक्त सभी गुण विद्यमान थे। अतएव आपका जनता पर गहरा प्रभाव पड़ता था।

सिवाने से विहार करके आप जालौर के आसपास घूमकर धर्म की अलख जगाते हुए जालौर पधारे। वि. सं० १६७५ का चातुर्मास जालौर में हुआ। यहाँ की जैन-जैनेतर जनता के लिए आप चिरपरिचित थे। सभी वर्ग के लोग आपके उच्च-आचार विचार से प्रभावित और मुग्ध थे। चौमासे में जाट जाति के एक भाई रामलालजी विरक्त होकर आये। उनकी उम्र ११ वर्ष की थी। आपने विद्याध्ययन कराने के लिए उन्हें श्री नारायणचन्द्रजी महाराज को सौंप दिया।

शिष्य बनाने के विषय में गुरुदेव के विचार पाठक जान चुके हैं। तीस वर्ष की संयमसाधना हो चुकने पर भी आपने शिष्य बनाने की अभिलाषा नहीं की थी। परन्तु जालौर में मेवाड़ की ओर पधारने का अनुरोधपूर्ण पत्र मिला। उसमें यह भी उल्लेख था कि—पालीवाल जातीय एक ब्राह्मण कुमार को जिसकी आयु ११ वर्ष की है, महासती श्री फूलकुँवरजी महाराज के उपदेश से संसार से विरक्ति हुई है। वह सुशील और सुयोग्य है। वह आपकी सेवा में रहना चाहता है। अतएव गुरुदेव चातुर्मास व्यतीत होते ही मेवाड़ की ओर पधारने की कृपा करें। मातेश्वरी महासतीजी तथा अन्य स्थविर महासतियों को दर्शनलाभ भी हो सकेगा।

समाचार मिलने पर आपने विचार किया—मेरे निमित्त से किसी भव्य जीव का कल्याण हो सकता हो तो मुझे अवश्य सहायक बनना चाहिए।

श्री दौलतरामजी महाराज तथा पं० श्री नारायणचन्द्रजी म० ठा० २ को मारवाड़ में रख कर आपश्री ने श्री हंसराजजी महाराज के साथ मेवाड़ की ओर विहार किया। देसूरी नायद्वारा तथा देलवाड़ा होते हुए आप उदयपुर पधार गये। वहाँ आपके व्याख्यानों से काफी जागृति आई। तदनन्तर गोगुंदा होकर मादड़ा पधारे। श्री भूलकुँवरजी महाराज आदि सतियाँ विराजमान थीं। महासतीजी के सदुपदेश से प्रभावित वैरागी अम्बालालजी आपके साथ हो लिये।

मोमट और भ्हालावाड़ मेवाड़ के ही अंग हैं परन्तु इन प्रदेशों में दीर्घकाल से किसी सन्त का पदार्पण नहीं हुआ था। बीस-बीस वर्ष तक के नौजवानों तक को जैन मुनियों का परिचय नहीं था। हमारे चरितनायकजी ने इन चिर उपेक्षित क्षेत्रों में विचरण किया और जनता को जिनशासन का संदेश सुनाया।

उन दिनों श्री मोतीलालजी तेजावत ने आदिवासियों—भीलों में जागीरदारों की शोषणवृत्ति के विरुद्ध एक जबरदस्त आन्दोलन छेड़ रखा था। तेजावतजी स्थानकवासी जैन थे और असहाय आदिवासियों की सेवा के लिए ही उन्होंने जीवन अर्पित कर रक्खा था। इस प्रचण्ड आन्दोलन से सत्ताशाली जागीरदार भी परेशान हो गये थे। जब गुरुदेव भ्हाडौल पहुँचे तो वहाँ के रावजी आपके श्रीचरणों में उपस्थित हुए और बोले—'आपके शिष्य तेजावत ने बहुत तूफान मचा रखा है और हमें परेशान कर रहा है। आप उसे समझायेंगे नहीं ? गुरुदेव ने उत्तर दिया—'जब तक शासक शोषण का परित्याग न करें प्रजा में शांति होना कठिन है। जमाना करवट बदल रहा है। आप लोग इस परिवर्तन की उपेक्षा करना चाहते हैं। यह कैसे चलेगा ? आप शोषण का त्याग कर दें तो आपको कोई परेशान नहीं कर सकता।'

इस उत्तर से रावजी को निराशा तो हुई होगी परन्तु एक निस्पृह सन्त इसके अतिरिक्त और क्या कहता ?

तत्पश्चात् आप मान्देशा पधारे। यह वैरागी अम्बालालजी की जन्मभूमि थी। श्रीसंघ की प्रेरणा से वैरागीजी के अभिभावकों ने दीक्षा के लिए अनुमतिपत्र लिख दिया।

इक्तीसवाँ चातुर्मास—

मेवाड़ में पधारने से पूर्व ही पाली-संघ के आग्रह से आपने यहाँ चौमासे की स्वीकृति दे दी थी। अतएव ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आप पाली पधार गये। सं० १९७० का चौमासा पाली में व्यतीत हुआ। इस वर्ष पाली में पूज्य स्वामीदासजी म० के सम्प्रदाय के पं० र० श्रीवक्तावरमलजी म० का तथा पूज्य जयमलजी म० के सम्प्रदाय के पं० र० श्रीजोरावरमलजी म० तथा श्रीहजारीमलजी

म० का भी चौमासा था। तीन जगह व्याख्यान होता था और तीनों जगह दया पौषध आदि का ठाठ लगा रहता था।

कार्तिक मास में श्रीनारायणचन्द्रजी म० ज्वरग्रस्त हो गये अतः मार्गशीर्ष मास तक आपको वहीं रुकना पड़ा। पौष मास में पाली से विहार करके समदड़ी आदि अनेक क्षेत्रों को पावन करते हुए आप सिवाना पधारे। दानों वैरागियों का विद्याभ्यास चल रहा था। सिवाना-श्रीसंघ ने वैरागियों को दीक्षा देने का आग्रह और अनुरोध किया मगर आपने फर्माया—इन साधकों को अभी और अध्ययन करने दो और संयमजीवन की कठिनाइयों को समझने दो। अभी जल्दी क्या है?

जालोर में दीक्षा—

कुछ दिन सिवाना में विराजने के पश्चात् गुरुदेव जालौर पधारे। दो वैरागियों को साथ में देख कर तीन जनता का मनमयूर नाच उठा। उत्साहशील कार्यकर्त्ताओं का उत्साह बढ़ गया। जब उन्हें विदित हुआ कि दोनों को आज्ञापत्र प्राप्त हो चुके हैं और दीक्षा के योग्य प्रतिक्रमण तथा अन्य विषयों की जानकारी की जा चुकी है तब उनके चित्त में आया कि इनकी दीक्षा का सौभाग्य जालौर नगर को ही मिलना चाहिए। उनके प्रयत्न सफल हुए और गुरुदेव को उनके वात्सल्यमय आग्रह और अनुरोध के आगे झुकना पड़ा।

दीक्षा की तैयारियाँ आरम्भ हो गईं। पुरुष दूसरे प्रकार की व्यवस्था में जुटे तो महिलाएँ भी पीछे न थीं। उनके मंगलगीतों ने अतिशय पावन वातावरण का निर्माण कर दिया। किसी भी मांगलिक प्रसंग को महिलाओं के मंगलगीत सजीव बना देते हैं।

वैरागियों का बहुमूल्य वस्त्राभरणों से अलंकृत करने की तैयारियाँ होने लगीं। नगर के अग्रगण्य श्रावक श्रीमान् जोगाजालजी बस्तीमलजी वर्धीचन्दजी पूनमचन्दजी नेमसलजी चांदमलजी पनेचन्दजी ताराचन्दजी सेंवरामजी तथा चुन्नीलालजी आदिने दीक्षा सम्बन्धी शुभ कार्य में हाथ बँटाया। वि० सं० १९८१ की ज्येष्ठ शुक्ला दशमी के दिन शुभ मुहूर्त में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न किया गया और रामलालजी को श्री प्रतापमलजी और अम्बालालजी को श्रीपुष्कर मुनिजी नाम प्रदान किया। श्रीप्रतापमलजी मुनि श्रीनारायणचन्द्रजी के शिष्य हुए और श्रीपुष्कर मुनिजी चरितनायक गुरुदेव के अन्तेवासी बने जो वर्त्तमान में वर्द्धमान श्रमणसंघ के मन्त्री पद पर सुशोभित हैं।

दीक्षा के अवसर पर महासती श्रीनेनूजी म० ठाणा ८, श्रीहरकूजी म० (बड़े) ठा० ५ तथा श्रीपानाजी बुलाजी म० ठाणा ४ पधारे थे। अत्यन्त हर्ष और

अपूर्व उल्लास के साथ दीक्षा विधान हुआ। तत्पश्चात् गुरुदेव ने समयोचित संक्षिप्त प्रवचन करते हुए फर्माया—

जीवन में दीक्षा का स्थान—

नाना प्रकार के संस्कारों में दीक्षा एक श्रेष्ठ संस्कार है। जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए दीक्षा मुख्य साधन है। भारतीय धर्मों में दीक्षा की महिमा का मुक्त कंठ से गान किया गया है। साधकजीवन व्यतीत करने के संकल्प को अंगीकार करने और उसे सबल बनाने के लिए दीक्षा अनिवार्य है। मुमुक्षु पुरुष, जिसे दीक्षा होने का अवसर नहीं मिला है, निरन्तर दीक्षित होने की भावना रखता है। श्रीमद् रामचन्द्रजी ने उस भावना का सुन्दर चित्र खींचा है—

> अहवो अपूरव अवसर क्यारे आवशे,
> क्यारे थइशु बाह्याभ्यन्तर निर्ग्रन्थ जो।
> सर्व संबंधनु बन्धन तीक्ष्ण छेदीने,
> विचरशु क्यार महत पुरुषना पंथ जो॥

इन मनोभावों को लेकर जो साधक साधना के क्षेत्र में अवतीर्ण होता है, निश्चय ही उस महात्मा का कल्याण होता है।

दीक्षा मानव के जन्मजात संस्कारों में आमूल चूल परिवर्तन कर देती है। दीक्षा लेते ही दीक्षित को ऐसा आभास होता है, मानों उसने नूतन जन्म ग्रहण किया है। उसकी भावनाओं में एक अनूठी दिव्यता और भव्यता आजाती है। उसका चित्त परमात्मा की ओर आकर्षित होने लगता है। वह जगत् में रह कर भी मानों जगत् से परे पहुँच जाता है। नये साहस नय संकल्प नये उत्साह, नयी स्फूर्ति और नयी शक्ति की उसे प्राप्ति होती है।

कई लोग सोचते हैं—दीक्षा अंगीकार किये बिना ही साधना हो सकती है अतएव दीक्षा लेना अनावश्यक है। मैं कहता हूँ—जिसने साधना करने का सुदृढ़ संकल्प कर लिया है, उसे अपनी साधना के अनुरूप दीक्षा अंगीकार करने में हिचक क्यों होनी चाहिए? हिचक होना हृदय की दुर्बलता का ही द्योतक है। दीक्षा वह स्पृहणीय बन्धन है जो स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है और संकल्प की ऊँचाई से नीचे गिरते समय सहारा देकर ऊँचाई पर स्थिर रखता है।

परमात्मा तक पहुँचने का जो लम्बा मार्ग है, दीक्षा उसके लिए रथ के समान है। सांसारिक मायाजाल को तोड़ने के लिए दीक्षा को तीक्ष्ण शस्त्र कहा जा सकता है। वह कल्याण का मार्ग है।

म० का भी चौमासा था। तीन जगह व्याख्यान होता था और तीनों जगह दया-पौषध आदि का ठाठ लगा रहता था।

कार्तिक मास में श्रीनारायणचन्द्रजी म० अस्वस्थ हो गये, अतः मार्गशीर्ष मास तक आपको वहीं रुकना पड़ा। पौष मास में पाली से विहार करके समदड़ी आदि अनेक क्षेत्रों को पावन करते हुए आप सिवाना पधारे। दोनों वैरागियों का विद्याभ्यास चल रहा था। सिवाना-श्रीसंघ ने वैरागियों को दीक्षा देने का आग्रह और अनुरोध किया मगर आपने फर्माया—इन साधकों को अभी और अध्ययन करने दो और संयमजीवन की कठिनाइयों को समझने दो। अभी जल्दी क्या है ?

जालोर में दीक्षा—

कुछ दिन सिवाना में विराजने के पश्चात् गुरुदेव जालोर पधारे। दो वैरागियों को साथ में देख कर जैन जनता का मनमयूर नाच उठा। उत्साहशील कार्यकर्त्ताओं का उत्साह बढ़ गया। जब उन्हें विदित हुआ कि दोनों को आज्ञापत्र प्राप्त हो चुके हैं और दीक्षा के योग्य प्रतिक्रमण तथा अन्य विषयों की जानकारी की जा चुकी है, तब उनके चित्त में आया कि इनकी दीक्षा का सौभाग्य जालौर नगर को ही मिलना चाहिए। उनके प्रयत्न सफल हुए और गुरुदेव को उनके धर्मस्नेहमय आग्रह और अनुरोध के आगे झुकना पड़ा।

दीक्षा की तैयारियाँ आरम्भ हो गईं। पुरुष दूसरे प्रकार की व्यवस्था में जुटे तो महिलाएँ भी पीछे न थीं। उनके मंगलगीतों ने अतिशय पावन वातावरण का निर्माण कर दिया। किसी भी मांगलिक प्रसंग को महिलाओं के मंगलगीत सजीव बना देते हैं।

वैरागियों को बहुमूल्य वस्त्राभरणों से अलंकृत करने की तैयारियां होने लगीं। नगर के अग्रगण्य श्रावक श्रीमान् छगनलालजी पत्तीमलजी वर्द्धीचन्दजी पूनमचन्दजी, ...मलजी चांदमलजी पनेचन्दजी ताराचन्दजी केशराजजी तथा चुन्नीलालजी आदि ने दीक्षा सम्बन्धी शुभ कार्य में हाथ बँटाया। वि० सं० १६८१ की ज्येष्ठ शुक्ला दशमी के दिन शुभ मुहूर्त्त में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न किया गया और रामलालजी को भी प्रतापमलजी और अम्बालालजी को श्रीपुष्कर मुनिजी नाम प्रदान किया। श्रीप्रतापमलजी मुनि श्रीनारायणचन्द्रजी के शिष्य हुए और श्रीपुष्कर मुनिजी चरितनायक गुरुदेव के अन्तेवासी बने जो वर्त्तमान में वर्द्धमान श्रमणसंघ के मन्त्री पद पर सुशोभित हैं।

दीक्षा के अवसर पर महासती श्रीनेनूजी म० ठाणा ८, श्रीहरकूजी म० (बड़े) ठा० ५ तथा श्रीपानाजी मुमाजी म० ठाणा ४ पधारे थे। अत्यन्त हर्ष और

आपकी शिष्याओं का बहुत बड़ा परिवार था, जिसमें अनेक तपस्विनी अनेक वैयावृत्त्यपरायण और अनेक विदुषी थीं। आप स्वभाव से शांतिप्रिय कोमलहृदय और सरल थीं। भाषा में इतना प्रभाव था कि पत्थर-सा हृदय भी पसीज कर पानी-पानी हो जाता था। सहनशीलता अद्भुत थी। वृद्धावस्था और रुग्णता के कारण आप कई वर्षों तक गोगुंदा में बिराजीं। वहाँ की जनता के लिए आप देवतास्वरूप थीं। खेद है कि ऐसी भाग्यशालिनी महासती ई० सन ५६ में ७४ पहर का संथारा करके समाधिपूर्वक स्वर्ग सिधार गईं।

बत्तीसवाँ चातुर्मास—

गुरुदेव ने जब जालौर से विहार किया तो भक्त श्रावकों और श्राविकाओं के हृदय गद्गद हो गये। उस समय का दृश्य बड़ा ही भावमय था। परन्तु जैन मुनि की मर्यादायें बड़ी कठोर हैं। गुरुदेव समदड़ी-संघ को वचन दे चुके थे और वहाँ पहुँचना आवश्यक था। अतः शीघ्र विहार करके आप जाँबलवाड़ी पधारे। जालौर से तथा आसपास के ग्रामों से भावुक जन दर्शनार्थ आने लगे। आपके ओजपूर्ण प्रवचन सुन कर कितने ही भाई सन्मार्ग पर आये और जैनधर्म के दृढ़ श्रद्धालु बने।

तत्पश्चात् ग्रामानुग्राम विचरते हुए आप खंडप पधारे। खंडप में सभी स्थानकवासी जैनों के ही घर हैं। वहाँ की जनता में उत्तम धर्मभावना है। श्रावकों ने आपका हार्दिक स्वागत किया। प्रतिदिन प्रवचन होते और जनता बड़े चाव से श्रवण कर लाभ उठाती। दया पौषध आदि धर्मक्रियायें खूब हुईं।

खंडप से विहार कर गुरुदेव समदड़ी पधारे और वि० संवत् १६८१ का चौमासा समदड़ी में ही व्यतीत हुआ। इस चौमासे में दर्शनार्थियों की अत्यधिक भीड़ रही। आपकी प्रवचनशैली पर्याप्त परिमार्जित और विकसित हो चुकी थी। शास्त्रीय सिद्धान्तों की आप सरल और सुबोध भाषा में सुन्दर व्याख्या किया करते थे। खूब प्रत्याख्यान हुए, खूब धर्मध्यान हुआ। खूब धर्मप्रभावना हुई। सकुशल और सानन्द चातुर्माससमाप्ति के पश्चात् श्रीताराचन्द्रजी म० ने ठा० ९ से जोधपुर की ओर और आपने ठाणा ३ से मारवाड़ सादड़ी की ओर विहार किया।

तेतीसवाँ चातुर्मास—

मेवाड़ की श्रद्धाशील जनता आपके दर्शन के लिए उत्कंठित थी। प्रवचन पीयूष का पान करने के लिए चातक के समान पिपासु हो रही थी। बार-बार प्रार्थनायें आ रही थीं। अतएव गुरुदेव ने सादड़ी से मेवाड़ की ओर विहार

जन्म-जन्मान्तर की महत्त्व साधना के सुन्दरतर संस्कारों को साथ लेकर अवतरित होने वाले और असाधारण क्षमता के धनी तीर्थंकर भगवन्त भी दीक्षा धारण करते हैं तो उनकी तुलना में सामान्य मानव का क्या सामर्थ्य है ? वास्तव में दीक्षा के बिना आत्मकल्याण नहीं होता।

आज दो भव्य मुमुक्षुओं ने दीक्षा अंगीकार करके अपने जीवन को नये साँचे में ढाला है। मेरी हार्दिक कामना है कि वे अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करें और स्व-परहितसाधन करते हुए जगत में जिनशासन का उद्योत करें।

प्रवचन के पश्चात् मंगलपाठ हुआ। फिर जय-जयकार के तुमुल घोष के साथ समारोह समाप्त किया गया।

समदड़ी—श्रीसंघ के अत्याग्रह को मान देकर गुरुदेव ने वहीं चौमासा करने की स्वीकृति दी।

महासती श्रीफूलकुंवरजी महाराज—

आचार्य हरिभद्र ब्राह्मण कुल में जन्मे थे। अकस्मात् वे एक जैन साध्वी याकिनी महत्तरा के सम्पर्क में आये और प्रतिबोध पाकर जैन मुनि बने। उन्होंने जिनशासन की अपूर्व प्रभावना की और साहित्यिक समृद्धि की वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

कहते हैं, इतिहास अपने आपको दोहराता है, यह उक्ति यहाँ सौ फीसदी सत्य साबित हुई। श्री अम्बालालजी भी एक ब्राह्मण कुमार थे। वे जैन साध्वी श्रीफूलकुंवरजी महाराज के सम्पर्क में आकर प्रतिबुद्ध हुए और दीक्षित होकर श्रीपुष्करमुनि के रूप में आज जैन जगत् में विख्यात हैं।

महासती फूलकुंवरजी महाराज का जन्म वीरभूमि मेवाड़ के अन्तर्गत मादड़ा ग्राम में हुआ था। आपके पिताजी का नाम पन्नालालजी तथा माता का नाम मानीबाई था। लघुवय में पति का वियोग होने पर आपने अशरणशरण परमात्मा का आश्रय लिया और २२ वर्ष की उम्र में तपोमूर्ति श्री फूलकुंवरजी महासती के निकट, फाल्गुन कृष्णा ११ वि० सं० १६४६ में भागवती दीक्षा अंगीकार की। आपका जीवन तप त्याग और वैराग्य के रंग में रंग गया। संयम और तपश्चरण को आपने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया।

आप महासती श्री ज्ञानकुंवरजी महाराज की गुरुभगिनी थीं। गुरुभगिनियों में परस्पर प्रगाढ़ धर्मानुराग था। आपने श्री ज्ञानकुंवरजी महाराज को हर तरह से सहायता प्रदान की। मारवाड़ और मेवाड़ आपकी प्रधान विहारभूमि रही और आपके उपदेश से जैनधर्म का अच्छा प्रचार हुआ।

ज्ञानकुँवरजी म० के चित्त की उत्कंठा थी। मरुदेवी माता की साधना पूरी न हो सकी परन्तु श्री ज्ञानकुँवर माता की साध पूरी हो गई।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् गुरुदेव ने डोल ग्राम की ओर तथा सतीसमुदाय ने जयपुर की ओर विहार किया।

तत्पश्चात् गुरुदेव गोगुंदा होते हुए बगड़न्दा पधारे। आगे मोमठ प्रदेश में विहार करना चाहते थे परन्तु श्री दौलतरामजी म० की अस्वस्थता के कारण वहीं रुकना पड़ा। होली चातुर्मास वहीं हुआ। शांतिमूर्ति महासती श्री धूलकुँवरजी म० ठा० ५ जयपुर से पधारीं। आपके साथ दो वैरागिन बाइयां थीं। जो दीक्षा अंगीकार करने के लिए उत्सुक थीं।

विरक्त बाइयां माता-पुत्री थीं। इनमें एक माधोपाड़ तहसील के अन्तर्गत चाकट ग्राम निवासी माम्बाटज्ञातीय दिवंगत श्रीमान् धनराजजी की धर्मपत्नी सेंडीबाई थीं और दूसरी उनकी सुकन्या श्री अमरकुँवरबाई। अमरकुँवरबाई की सगाई जयपुर में हो चुकी थी। वह जयपुर की जैन शिक्षणसंस्था में अध्ययन करती थीं। बहुत शांत नम्र और कुशाग्रबुद्धि थीं। परीक्षाओं में पहले नम्बर आती थीं। महासती श्री धूलकुँवरजी महाराज से प्रतिबोध पाकर संसार से विरक्त हो गई थीं। दीक्षित होने के लिए उत्कंठित थीं परन्तु अनुमति नहीं मिल रही थी। बहुत प्रयत्न किये गये किन्तु सफलता नहीं मिली।

श्रेयस्कर काय विघ्नबाधाओं से परिपूर्ण होते हैं, किन्तु जहाँ गहरी लगन और संकल्प की सुदृढ़ता होती है, वहाँ विघ्न टिक नहीं सकते। अमरकुँवरबाई का संकल्प हिमालय की तरह अटल था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित कर दिया—"संसार के सभी पुरुष मेरे भाई हैं। मैं विवाह नहीं करूँगी। मैं मोहनलालजी सिंघटवाड़िया* को अपना भाई समझती हूँ और बहिन के नाते उनसे धर्मपालन में सहायक होने की अपेक्षा करती हूँ।"

सुकुमारवय बालिका का कैसा सराहनीय साहस! इस संकल्प में संयम की तीव्रतर साध झलक रही है। ऐसी शील की साकार मतिमायें कदाचित् ही धराधाम पर अवतरित होती हैं और वासना के विष से दूषित विश्व में संयम और सदाचार का सौरभ प्रसृत करती हैं।

छह महीने तक झमेला चलता रहा। आखिर धर्म की विजय हुई। दीक्षा की अनुमति प्राप्त हुई। माता-पुत्री ने चरितनायक गुरुदेव की सेवा में, बगड़न्दा में उपस्थित होकर दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। चाकट ग्राम में ही दीक्षा

---

*जिनके साथ वाग्दान हो चुका था।

किया। देलवाड़ा और कवोक आदि क्षेत्रों में विचरण करते हुए उदयपुर में पदार्पण किया। बड़े समारोह के साथ स्वागत हुआ। प्रवचनों में श्रोताओं की संख्या प्रतिदिन बढ़ने लगी।

स्थानकवासी समाज में सम्प्रदायभेद तो था परन्तु साम्प्रदायिक संकीर्णता भी धीरे धीरे बढ़ती जारही थी। उदयपुर में उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिला। श्रीपुष्कर मुनिश्री महाराज को निकाला हो गया और वे एक मास तक बीमार रहे। उन दिनों वहाँ इतर सम्प्रदाय के मुनि भी थे। किन्तु उन्होंने एक बार भी मिलना अच्छा न समझा साता पूछने की तो बात ही दूरी।

एक दिन गुरुदेव व्याख्यानगाट पर विराजमान थे। उदयपुर के श्रावक श्राविकाएँ तथा महासतियाँ ज्ञानलाभ के हेतु उपस्थित थे। शास्त्रीय चर्चा चल रही थी। तत्त्वजिज्ञासु आध्यात्मिक रस का आस्वादन कर रहे थे। उस समय मातेश्वरी श्री ज्ञानकुँवरजी म० के मन में एक नूतन विचार उत्पन्न हुआ। उसे व्यक्त करते हुए आपने फर्माया— मुनिवर, हमें दीक्षित हुए ३२ वर्ष हो गये, परन्तु चौमासे में रह कर सेवा करने का एक बार भी सुअवसर नहीं मिला। इस वृद्धावस्था में एक बार यह दुर्लभ लाभ मिल जाय यह मेरी अभिलाषा है। नान्देशमा-श्रीसंघ चातुर्मास के लिए प्रार्थना करने आया है। वहाँ सौ घर ओसवालों के और ८० घर स्थानकवासियों के हैं। आपके सुशिष्य और भविष्य में जैन समाज में निर्मल चन्द्र की भाँति चमकने वाले श्रीपुष्कर मुनिजी म० की यह जन्मभूमि है। कृपा कर यह चातुर्मास स्वीकार कर लें और हमें भी वहीं चातुर्मास करने की अनुमति दें।

मातेश्वरी का अनुरोध स्वीकृत हुआ। मातेश्वरीजी महाराज, श्रीगेंदकुँवरजी म० श्रीकासमकुँवरजी म० श्रीलेरकुँवरजी म० आदि सतियों को भी वहीं चौमासा करने की अनुमति मिल गई।

नान्देशमा पहाड़ी इलाके में है। सन्त-सतियों का कदाचित् ही पदार्पण होता है। वहाँ के भाई प्रायः खेती का धंधा करते हैं अतएव चौमासे में अवकाश नहीं पाते तथापि चरित्रनायक गुरुदेव के प्रभाव से इतने आकृष्ट हुए कि प्रातःकाल और मध्याह्न में भी व्याख्यान सुनते और धर्मध्यान करते थे। आसपास के गाँवों से आकर बहुत-से भाइयों ने भी धर्म का ज्ञान प्राप्त किया। कितनेक भाई मुहपत्ती बांधना नहीं जानते थे वे भी सामायिक करने लगे। खूब धर्मध्यान हुआ और चौमासा बड़ा ही शानदार रहा।

मातेश्वरी महासतीजी की चिर-अभिलाषा पूर्ण हो गई। मरुदेवी माता को जैसे भगवान् आदिनाथ की सेवा करने की उत्कंठा रहती थी वैसी ही श्री

के व्याख्यान की विशेषता भाषा के लालित्य में नहीं होती, वरन् त्याग-वैराग्य की लहरें श्रोताओं के हृदय-सरोवर में उत्पन्न कर देने में भी होती है। शान्त रस का प्रवाह प्रवाहित कर देने वाला वक्तृत्व ही सफल समझा जा सकता है। अध्यात्म और समभाव की भावनाएँ जगाने में गुरुदेव की वाणी समर्थ थी। अतएव ब्यावरवासियों ने बड़े चाव और प्रेम से आपके उपदेशामृत का पान किया।

यथासमय ब्यावर से विहार करके नीमाज जयतारण होते हुए बिलाड़ा पधारे। वहाँ मूर्त्तिपूजक मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी मौजूद थे। वे पहले स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। उस समय व गेवर मुनि के नाम से प्रसिद्ध थे। कुछ समय में उनकी श्रद्धा बदली और संयम का भी ठिकाना न रहा तो गच्छ से बहिष्कृत कर दिये गये। तब वे स्वयं ही मूर्त्तिपूजक सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये और स्थानकवासियों से चिढ़कर उनके विरुद्ध निन्दात्मक साहित्य लिखने लगे। गंभीरमल नामक एक भूतपूर्व मुनि उनके चक्कर में आ गया। उसकी दीक्षा का आडम्बर हो रहा था। वह स्थानकवासी मुनियों को शास्त्रार्थ की चुनौती दे रहा था। ऐसे अवसर पर गुरुदेव बिलाड़ा पहुँचे।

गुरुदेव के पधारने से साम्प्रदायिक अभिनिवेश के ज्वर का पारा और ऊँचा चढ़ गया मगर वह जल्दी ही एकदम नीचे भी उतर गया। एक दिन जंगल से लौटते हुए उसका गुरुदेव से मिलाप हो गया। परिचय पाकर उसने कहा— आप आत्मार्थी सन्त श्री जेठमलजी म० के चेले हैं। जब मैं जोधपुर के पास सालावास में था तब उन महापुरुष के दर्शन हुए थे। वह पंचम आरे के केवली कहलाते थे। उन्हें वचनसिद्धि प्राप्त थी। उन्होंने जो कुछ कहा था सच निकला।

बिलाड़ा के शास्त्रार्थ की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई थी। पीपाड़ में जब यह संवाद पहुँचा तो वहाँ के श्रीसंघ की ओर से शास्त्री पूलचन्द्रजी प्राचीन हस्तलिखित शास्त्र लेकर आये। मगर शास्त्राथ की नौबत ही न आ पाई। जब श्री गेवर मुनि को पता चला कि उनका प्रतिवादी कोई सामान्य साधु नहीं योगनिष्ठ आ ज्येष्ठमलजी म० के अन्तेवासी श्री ताराचन्द्रजी म० हैं, तो उनकी जीभ की खुजली स्वतः शान्त हो गई। अचानक एक दिन गाँव के बाहर मिलाप होने पर उन्होंने खेद प्रकाशित करते हुए कहा—मुझे पता नहीं था कि आप कौन हैं। श्री ज्येष्ठमलजी म० के तपोबल से मैं परिचित हूँ। आपसे शास्त्रार्थ मैं नहीं करना चाहता हूँ।

श्री गेवर मुनि चुपचाप बिलाड़े से विहार कर गये। केसरी सिंह के सामने जैसे हिरन नहीं ठहरता गुरुदेव के समक्ष प्रतिवादी नहीं ठहर सकते थे।

देना निश्चित हुआ। श्री दौलतरामजी म० की रुग्णता के कारण गुरुदेव स्वयं इस अवसर पर न पधार सके, तथापि आपके शुभाशीर्वाद से बड़े समारोह के साथ फाल्गुन शु० २ सं० १९८० को दीक्षामहोत्सव सम्पन्न हुआ। माता का नाम श्री शम्भूकुँवरजी और पुत्री का नाम श्री शीलकुँवरजी रक्खा गया। बाद में आप दोनों का मजावद ग्राम में गुरुदेव ने बड़ी दीक्षा प्रदान की।†

चौतीसवाँ चातुर्मास—

तदनन्तर अनेक क्षेत्रों में विचरण करते हुए गुरुदेव नाम्बेदामा पधारे। वहाँ समदड़ीसंघ की प्रार्थना स्वीकार की। वि० सं० १९८३ का चौमासा समदड़ी में हुआ। महासती श्री फूलकुँवरजी म० तथा लघुसाध्वी श्री शीलकुँवरजी म० का चातुर्मास भी वहीं हुआ। उस वर्ष वर्षा अधिक हुई। लगातार तीन दिन तक वर्षा होने से अनेक मकान गिर गये और सभी सन्तों एवं सतियों का तेला हुआ। पं० श्री पुष्करमुनिजी म० एवं श्री शीलकुँवरजी म० उस समय नवदीक्षित थे। पर उनका भी तेला हुआ। जैन साधुओं की यह कठिन चर्या देखकर जैनेतर जनता के हृदय में अपार श्रद्धा उत्पन्न हुई।

सफलतापूर्वक चातुर्मास समाप्त होने पर गुरुदेव ने ब्यावर की ओर विहार किया।

पैंतीसवाँ चातुर्मास—

गुरुदेव समदड़ी से विहार कर बगड़ी आदि क्षेत्रों का स्पर्श करते ब्यावर पधारे। वहाँ दूसरे सम्प्रदाय के सन्त भी विराजित थे। आप प्रथम बार ही वहाँ पधारे थे किन्तु आपकी कीर्ति तो पहले से ही पहुँची हुई थी अतएव आपका व्याख्यान श्रवण करने के लिए बड़ी संख्या में श्रोता एकत्र होते थे। रायजी कम्पाउण्ड नामक विशाल जगह आपके व्याख्यानों के लिए चुनी गई थी। सन्तों

---

†महासती श्री शम्भूकुँवरजी म० शान्त दान्त और अतीव मधुरभाषिणी हैं। आपका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल है। अन्य सतियों की देखरेख और सार-सम्भाल अच्छी रखती हैं।

महासती श्री शीलकुँवरजी शील और सौजन्य की साक्षात् मूर्ति हैं। संस्कृत प्राकृत हिन्दी और उर्दू आदि भाषाओं का आपने अच्छा अभ्यास किया है। आपके प्रवचनों में अध्यात्म की सरिता प्रवाहित होती है। एक बार दर्शन करने और प्रवचन सुन लेने वाला आपको कभी भूल नहीं सकता। आपके उच्चकोटि के त्याग वैराग्य का जनता पर गहरा असर पड़ता है। आपके ही उपदेश का प्रभाव है कि मैं जैनदीक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त कर सका।

विहार व्यवस्था का प्रधान हेतु यह है कि साधु को अनियतवासी पक्षी के समान होना चाहिए। एकत्र वास करने से मोह के उद्भव की और वीतरागभाव के ह्रास की वा संभावनाएँ रहती हैं, साधु उनसे बचता रहे और साथ ही प्रमाद-शत्रु के चंगुल में भी न फँसे।

मोटर सदा चलती ही रहे तो निरुपयोगी है और एक स्थान पर ही पड़ी रहे तो भी निरुपयोगी है। आवश्यकतानुसार चलने और ठहरने में ही उसकी उपयोगिता है। साधु के लिए भी यही बात है। अहिंसा और संयम के पालन के लिए ही साधु विहार और विश्राम करते हैं। कहा भी है—

> बहता पानी निर्मला, पड़ा गन्देला होय।
> साधु तो रमता भला, दोष न लागे कोय॥
> पड़ा पानी निर्मला, अति चकेरा होय।
> साधु तो बैठा भला, कोई आत्मज्ञानी होय॥

आप जानते हैं कि वर्षाकाल में अनन्त अनन्त जीवों की उत्पत्ति होती है। पृथ्वीतल पर वनस्पतियों का साम्राज्य छा जाता है। नदियों में बाढ़ और पथ पंकमय अलग। किसान बहुत-सी पगडंडियों को बन्द कर देते हैं। इन सब असुविधाओं के कारण एक स्थान पर रहना उचित है। आध्यात्मिक शांति प्राप्त करने के लिए भी एकत्र वास की आवश्यकता है। चौमासे में महात्मा-जन विशेष रूप से तपस्या आदि करते हैं। महापर्व भी इसी अन्तराल में आता है। इस कारण भी सन्त चातुर्मास में एक स्थान पर निवास करते हैं।

सभी धर्मप्रेमी चाहते हैं कि हमारे क्षेत्र में सन्तों का चातुर्मास हो किन्तु उनकी चाह पूरी नहीं हो सकती। उन्हें निराश न होकर उत्साह के साथ यथाशक्ति धर्मध्यान करते रहना चाहिए।

इस प्रकार सान्त्वना देकर तथा कुछ दिन सभरवी विराजकर गुरुदेव सिवाना पधारे। चौमासे में अपूर्व आनन्द रहा।

छत्तीसवाँ चातुर्मास—

अनेकविध दुःखों पीड़ाओं और कष्टों से भरे इस संसार में भी साधु सदानन्दी है, क्योंकि उसके विशाल हृदय में निरन्तर निर्मल ज्ञान का प्रदीप प्रज्वलित रहता है। आध्यात्मिक सुख में रमण करने वाले सन्त को दुःख कहाँ? जो सब प्रकार के संग से विमुक्त है उसे वियोग की वेदना स्पर्श ही नहीं कर सकती। परन्तु भावनाशील भक्तों की बात अलग है। सन्तों के पदार्पण के

सन्तसमागम—

परिलनायकजी का यह अप्रतिम अमित प्रभाव देखकर लोग दंग रह गये। जनता में आपके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गई। धर्मप्रेमी नहीं चाहते थे कि गुरुदेव बिलाड़ा से विहार करें मगर आगम-मर्यादा का पालन करने में ही मुनि की महिमा निहित है। अतएव यथासमय विहार करके आप पीपाड़ पधारे। उस समय वहाँ पं० र० श्री हस्तीमलजी म० तथा पूज्य जयमलजी म० के सम्प्रदाय के कविवर श्री चौथमलजी म० विराजमान थे। आपके पदार्पण के संवाद से श्रीसंघ में आनन्द की ऊर्मियाँ उत्पन्न कर दीं। बड़े समारोह के साथ स्वागत पूर्वक श्रीसंघ ने अगवानी की। पूर्व विराजित मुनिराज स्नेहसम्मेलनाथ पधारे।

मुनिराजों में सुलभ शास्त्रीय चर्चा होती थी। कभी-कभी भविष्य पर लक्ष्य रख कर समाज के आवश्यक प्रश्नों पर गम्भीर विचारविनिमय होता था। श्रावकसंघ आपके भावपूर्ण प्रवचन सुनकर प्रशम-रस में डूब जाता था। अच्छा धर्मध्यान हुआ। पीपाड़ में उस समय चौथे काल का सा वातावरण बन गया।

पीपाड़ से प्रस्थान करके गुरुदेव जोधपुर पधारे। सिंहपोल में ठहरे। शेष काल का समय कम रह जाने के कारण आपने शीघ्र ही वहाँ से विहार किया। समदड़ी पधारने पर जालौर, मोकलसर सिवाना आदि क्षेत्रों के प्रतिनिधिमंडल चातुर्मास की प्रार्थना के लिए आ पहुँचे। आपश्री ने द्रव्य क्षेत्र काल भाव देख कर गढ़सिवाना में चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान की।

जब अनेक क्षेत्रों के भावुक भक्त आकर मुनिराजों से अपने-अपने क्षेत्र में चातुर्मास करने का आग्रहपूर्ण अनुरोध करते हैं और मुनिराजों को उनमें से किसी एक ही क्षेत्र का चुनाव कर शेष को निराश करना पड़ता है, तब दयामूर्ति सन्तों के सामने बड़ी विकट समस्या उत्पन्न हो जाती है। गुरुदेव स्वभाव से ही अत्यन्त परदुःखकातर थे। लोकोत्तर पुरुष अपने प्रति वज्र से भी कठोर और पर के प्रति कुसुम से भी अधिक कोमल होते हैं। अनेक स्थानों के भाइयों को निराश और दुखित देख आपका हृदय गद्‌गद हो गया। उन्हें आश्वासन देते हुए एक प्रवचन में आपने फर्माया—

"जैन मुनि का मार्ग बड़ा कठिन है। वह चातुर्मास में किसी एक ही स्थान पर रह सकता है-विहार नहीं कर सकता। अनेक क्षेत्रों की प्रार्थना होने पर भी वह किसी एक ही स्थान पर चौमासा करने की स्वीकृति दे सकता है। अतः जिन भाइयों के मन में निराशा उत्पन्न हुई है, वे आगम की मर्यादा का विचार करके उसे दूर कर दें। वर्ष के आठ मास साधु को विहार करने के लिए ही हैं। भगवान ने विश्राम और परिश्रम दोनों की व्यवस्था की है।

बड़ा ही कारुणिक दृश्य था ! गुरुदेव का साथ छोड़ कर किसी का घर लौटने का मन नहीं होता था।

रामचन्द्रजी ने जब अयोध्या का परित्याग किया और वन की ओर जाने लगे तो वहाँ के आबाल-वृद्ध उनके पीछे हो लिये। उन्होंने निश्चय कर लिया था—जहाँ राम वहीं अयोध्या। यहाँ शिवपथ के राही यही सिवाना ऐसा कुछ निर्णय सिवाना के भक्तों ने भी कर लिया था।

राम को पल्ला छुड़ाना कठिन हो गया। वह सोचने लगे—मुझे स्वतन्त्र होकर वनवास करना है। यह जमघट मेरे साथ कैसे निभ सकता है ? गुरुदेव भी ऐसा ही सोचने लगे। अब गुरुदेव ने प्रसंगोचित प्रवचन करके मंगल पाठ किया और तुरन्त ही आगे बढ़ गये। विदाई के लिए आये हुए नर-नारियों ने अनमने भाव से अपने-अपने घर की राह पकड़ी।

विहार करते हुए गुरुदेव मोकलसर पधारे। वहाँ पं० श्रीउदयचन्द्रजी म० श्रीआगमलजी म० तथा श्रीसुन्दरमलजी म० शारीरिक कारण से बारह वर्ष से विराजमान थे। यह मुनिराज पण्डित मुनि श्रीमगनचन्दजी म० के शिष्य थे और चरितनायकजी के गुरुभ्राताओं के परिवार के थे। इनसे अर्से से मिलाप हुआ था अतः गुरुदेव कल्पमर्यादा के अनुसार यहाँ विराजे। पारस्परिक स्नेह की अधिकता के कारण व्याख्यान आदि का ठाठ रहा। तथा पौषध आदि धर्मक्रियाएँ भी खूब हुईं।

मोकलसर से विहार करके आप अनेकानेक क्षेत्रों को पावन करते हुए और मरुभूमि में धर्मामृत की सरिताएँ प्रवाहित करते हुए लांबन पधारे। वहाँ जालौर श्रीसंघ चातुर्मास की विनति करने आया। अन्य स्थानों के संघ भी आये। गुरुदेव ने जालौर में चातुर्मास करने की स्वीकृति दी। तत्पश्चात् उसी ओर विहार हुआ।

कहते हैं जालौर में प्राचीन काल में जैनों का बाहुल्य था। यहाँ आज भी जैनों के एक हजार घर हैं, जिनमें लगभग ७५० स्थानकवासी परम्परा के अनुयायी हैं।

चातुर्मास में अच्छी धर्मजागृति हुई। गुरुदेव के भावपूर्ण प्रवचन सुन कर जनता ने अपने आपको कृतार्थ माना।

सैंतीसवाँ चातुर्मास—

चातुर्मास समाप्त कर गुरुदेव पादरली होकर मोकलसर होते हुए सिवाना पधारे। यहाँ इसी चातुर्मास करके 'कुसीप' पहुँचने पर आपके सुशिष्य पं० श्रीपुष्करमुनिजी म० मियादी बुखार से ग्रस्त हो गये, अतएव एक मास तक रुकना पड़ा। इसके अतिरिक्त स्थविर मुनि श्रीदीपचन्दजी म० भी अस्वस्थ हो गये।

अवसर पर उन्हें असीम हर्ष का तो विहार के प्रसंग पर घोर विषाद का अनुभव हुए बिना नहीं रहता। कबीरजी ने कहा—

साधु आया नहीं हर्षाया, गया न दीना रोष।
कबीरा ऐसे नुगरे की, कबहुँ न मुक्ति होय॥

सिवाना—चातुर्मास समाप्त होने पर गुरुदेव ने जब विहार किया तो स्थानक के द्वार से लेकर एक मील तक नर-नारियों की भीड़ के कारण चलना कठिन हो गया। भक्तों की भावनाएँ अश्रुओं के रूप में उमड़ रही थीं। मगर गुरुदेव उन सब पर अपार करुणा की वर्षा करते हुए गंभीर एवं तटस्थ भाव से शनै शनै आगे बढ़ते जा रहे थे।

सिवाना से प्रस्थान कर आप मठड़ी ग्राम में पधारे। ग्राम आगन्तुक जनता से खचाखच भर गया। हरे भरे नीम की शीतल छाया में कच्ची मिट्टी की चबूतरी पर मुनिमंडल ने सुखासन जमाया। सामने पंचरंगी सभा सुशोभित थी। ऊँचे स्वर से स्तुतिपाठ होने लगा—

ये गुरु मेरे उर बसो, जो भवजलधि जहाज।
आप तिरें पर तारहीं, ऐसे श्रीमुनिराज॥

मोह-महारिपु जीत के, छोड़ सकल परिवार।
होय वैरागी दिगंबर, रखता शुद्ध विचार॥

पाँच महाव्रत आदरै, पाँचों समिति समेत।
तीन गुपति पालै सदा, अजर अमर पद हेत॥

धर्म दश विध उर धरे, भावे भावना सार।
परिसह सहे बावीस, वा चारित्र रत्न भंडार॥

रत्नत्रय अंगीकार कर, रहें निर्ग्रन्थ त्रिकाल।
जीते काम पिशाच को, स्वामी परम दयाल॥

पूरब भोग न चिन्तवे, आगम वांछा नाहिं।
चहुँ गति के दुख से डरे, सुरति लगी शिवमाहिं॥

ये गुरु परख जहाँ धरें, जग में तीरथ तेह।
सो रज मम मस्तक चढ़ो, 'भूधर' मांगे एह॥

अर्वाचीन साहित्य का संचय किया। धीरे-धीरे इस भण्डार में हस्तलिखित और मुद्रित ग्रंथों का खासा अच्छा संग्रह हो गया।

चातुर्मास में गुरुदेव ने श्रीमद्भगवतीसूत्र और रामायण के आधार पर महत्त्वपूर्ण प्रवचन किये।

उनचालीसवाँ चातुर्मास—

चातुर्मास समाप्त होने पर गुरुदेव समदड़ी पधारे। पं० श्री नारायणदासजी महाराज ठाणा २ भी वहीं पधार गये। सन्त मिलन के फलस्वरूप ज्ञान, दर्शन और चारित्र की अभिवृद्धिक अभिवृद्धि के सम्बन्ध में विचारविमर्श हुआ।

जैसा कि पाठकों को विदित है, आपके साथ श्री दौलतरामजी म० वृद्ध सन्त तो थे ही वह रुग्ण भी हो रहे थे। बवासीर की बीमारी थी और दस्त के साथ खून आता था। वह अधिक विहार करने में असमर्थ थे।

इसी अवसर पर केसरियानाथ-ऋषभदेव के दर्शनार्थ निकले एक गृहस्थ उदयपुर पहुँचे। वह गुरुदेव के दर्शन कर चुके थे और जान पड़ता है, गुरुदेव का काफी परिचय उन्हें प्राप्त था। वह मालवेश्वरी महासती श्री ज्ञानकुँवरजी म० की सेवा में पहुँचे। उन्होंने ज्ञान दर्शन और चारित्र की जैसी निर्मल ज्योति चरितनायक की अन्तरात्मा में जगमगाती देखी थी, वही काव्यमय भाषा में महासतीजी के समक्ष निवेदन कर दी। उस कविता की शब्दावली एवं छन्द-रचना चाहे पिंगल के नियमों से मेल न खाती हो, मगर उससे उनके अन्तस् की श्रद्धामयी गहरी भावना अवश्य प्रकट होती है। पाठकगण भी उसकी चासनी चख लें—

> विश्वहित का तेल जिसमें है यही दीपक जलेगा।
> वर्णमाला आपकी है मोतियों-सी खिल रही,
> महाभारत रामायण अपने हाथों लिख दिये सही।
> आजकल तो लेखनी चलती पुराने रासों पर,
> हैं सनातन लिख रहे प्रेम से काश्मीरी पत्रों पर॥
> तपस्वीजी हिन्दु मुनि तप किया है बड़ा,
> दौलत मुनि की सेवा का कौन उठायेगा बीड़ा।
> मुनि सेवा का मेवा मिल कर ही रहेगा,
> विश्वहित का तेल जिसमें है यही दीपक जलेगा॥

लम्बा विहार करने की स्थिति न रही। इसी अवसर पर सिवाना-श्रीसंघ का शिष्टमण्डल आ पहुँचा। शिष्टमंडल ने निवेदन किया—दोनों मुनि वृद्ध और अस्वस्थ हैं। आप आगे का विहार स्थगित कर कृपया सिवाना पधारिये। गुरुदेव ने सभी सन्तों की अवस्था पर विचार कर अनुरोध स्वीकार कर लिया और वि० सं० १६८६ का चौमासा गढ़ सिवाना में हुआ। गुरुदेव जहाँ विराजते वहाँ धर्मध्यान का ठाठ लगे बिना रहता ही न था। तदनुसार इस चातुर्मास में भी हुआ। आचारांग और रामचरित पर व्याख्यान फर्माये।

अट्ठतीसवाँ चातुर्मास—

चातुर्मास के अनन्तर अनेक ग्रामों में भगवान् महावीर का परमपावन संदेश सुनाते और धर्मोद्योत करते हुए गुरुदेव समदड़ी पधारे। समदड़ी में एक रामसनेही साधु से आपका मिलाप हुआ। वह तत्त्वजिज्ञासु थे। एक दिन उन्होंने जैनधर्म की अहिंसा के सम्बन्ध में प्रश्न किया। गुरुदेव ने विस्तारपूर्वक अहिंसा धर्म का विवेचन किया। उससे प्रभावित होकर साधुजी बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् वे स्थानक में दर्शनार्थ आने लगे और समय-समय पर अब भी आते रहते हैं।

समदड़ी से विहार होने वाला ही था कि इसी अर्से में पं० श्री नारायणचन्द्रजी म० के पधारने के समाचार आ गये। अतएव रुकना पड़ा। उनके पधारने के पश्चात् विहार करके आपने जोधपुर को पावन किया। शेष काल विराजने के पश्चात् विहार कर सालावास पधारे। मगर वहाँ पधारते ही संवाद मिला कि श्री नारायणचन्द्रजी म० की गृहस्थावस्था की मातेश्वरी महासती श्री राजाजी म० स्वर्ग सिधार गई हैं। इस दुःसंवाद को सुनते ही गुरुदेव दो ठाणा से पुनः जोधपुर पधारे। अन्य सतियों को आश्वासन दिया। तदनन्तर पुनः सालावास पधार कर दुन्दाड़ा होते हुए श्री नारायणचन्द्रजी म० समदड़ी (बाड़मेर) चौमासे के लिए पधारे और चरित्रनायकजी लूंडर पधारे। लूंडर-संघ की प्रार्थना आपने जोधपुर में ही स्वीकार कर ली थी।

वि० सं० १६८७ का चौमासा लूंडर में हुआ। इस चातुर्मास में खूब धर्म जागृति हुई। सेठ सीतारामजी, रघुनाथमलजी, धनराजजी लूंकड़ और छोगालालजी आदि सज्जन बड़े धर्मानुरागी और सन्तसेवक हैं। गुरुदेव ने एक दिन साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए साहित्यसंरक्षण की उपयोगिता और आवश्यकता बतलाई। स्थानकवासी समाज में साहित्यानुराग की जो कमी है उस पर भी प्रकाश डाला। उससे प्रभावित होकर सेठ धनराजजी ने अपनी ही उदारता से श्री अमर जैन ज्ञान भण्डार' की स्थापना की। प्राचीन और

इतना कहने के बाद महासतीजी ने मूल विषय पर आकर कहा—'मुनिराजों के दर्शन हुए बहुत समय हो चुका है। दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं। परिस्थितियों के कारण न मुनिराज इधर पधार सकते हैं, न हमारा विहार उधर हो सकता है। आप समदड़ी जायें तो हमारी ओर से गुरु महाराज आदि संतों की सेवा में विधिवत् वन्दना निवेदन करना। सुखसाता पूछना। और अत्यन्त अनुनय-विनय के साथ मेवाड़ की ओर पधारने की प्रार्थना करना।' श्रावक ने यह समाचार कह देने की स्वीकृति दी।

मेवाड़ की ओर—

शास्त्रकार कहते हैं—'कुशला धर्मशास्त्रेषु पर्युपास्या मुहुर्मुहुः'। धर्मशास्त्रों में पारंगत संयमशील तपस्वी त्यागी साधक, वृद्ध और रोगी मुनि की सेवा से धर्मलाभ होता है। संघ सुव्यवस्था की दृष्टि से भी मुनि का आवश्यक कर्तव्य है ऐसे मुनि की सेवा करना। जैन शास्त्र के अनुसार सेवा महान् तप है। फिर पर हमारे चरितनायकजी प्रकृति से ही सेवाप्रिय थे। सेवा का अवसर मिलने पर वे कभी चूकते नहीं थे। उनके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग सेवा करना था।

उस समय चरितनायकजी ठा० ४ से समदड़ी में विराजमान थे। उदयपुर की ओर से बार-बार विनतिपत्र आने लगे और उधर जाना आवश्यक प्रतीत होने लगा। मगर श्री दीक्षित मुनि विहार करने में समर्थ नहीं थे और उन्हें यों ही छोड़ कर गुरुदेव मेवाड़ की ओर पधार नहीं सकते थे।

मुनि श्रीनारायणदासजी म० को गुरुदेव की यह दुविधा मालूम हुई कि उदयपुर में विराजित मालवकेसरी महासती श्रीमानकुँवरजी म० आदि सतियों को दर्शन देने के लिए जाना आवश्यक है, किन्तु चरितनायकजी सिर्फ वृद्ध मुनिजी के कारण ही रुक रहे हैं। तब उन्होंने निवेदन किया—मैं वृद्ध मुनि की सेवा करूँगा। आप सुखपूर्वक, निश्चिन्त होकर मेवाड़ पधार सकते हैं। सेवाकार्य मुझे अत्यन्त प्रिय है। मैं सदैव सेवा के लाभ का अवसर खोजता रहता हूँ और अनायास ही यह अवसर मिल रहा है। इससे लाभ उठा कर मैं प्रसन्न होऊँगा।

परम सेवाव्रती चरितनायकजी की छत्रछाया में रह कर मुनिश्री के अन्तःकरण में इस प्रकार का सेवाप्रेम उत्पन्न न होता तो आश्चर्य की बात थी। नीतिकार ठीक ही कहते हैं—'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति'। दोषों और गुणों की उत्पत्ति संसर्ग पर निर्भर है। जो जैसी सोहबत में रहता है, वैसा ही बन जाता है। गुरुदेव के सम्पर्क में रहकर मुनि श्रीनारायणदासजी भी सेवाप्रिय बन गये, यह स्वाभाविक ही था।

अये माता ! उन क्षमावीर की क्या महिमा कहूँ ?
मन होता है दिन भर ही श्रीचरणों में रहूँ।
प्रातःकाले चार थावसा आगते हैं ये भाव से,
सज्झाय करते ध्यान फिर एकाग्र होते चाव से ॥

भगवान से भी स्नेह गुरु का खूब ही लग जायगा,
विश्वहित का तेल जिसमें है वही दीपक जलेगा।
भगवान की ये भावपूजा ही करते नित्य सही,
अहंवाद या अज्ञान को स्थान देते ही नहीं ॥

आज मुनिवर के स्वरों में गूँजती युग की गिरायें,
कर रही उनका समर्थन मानवों की जागृति दिशायें।
हुक्म हमको दीजिए संवाद आ करके कहूँ,
विश्वहित का तेल जिसमें है वही दीपक जलेगा ॥

एक गृहस्थ के मुख से यह भक्तिमय उद्गार सुने तो सतीसमुदाय का मन गद्गद हो उठा। एक सतीजी ने उससे पूछा—आप कौन हैं? कहाँ रहते हैं?

गृहस्थ भाई बड़ा बुद्धिशाली था। उसने ईषद्स्मित के साथ उत्तर दिया—मैं त्रसकाय का एक सदस्य हूँ। पंचेन्द्रिय जाति में मेरा जन्म हुआ है। अभी हाल मनुष्यगति में रहता हूँ।

उसके इस उत्तर में मौलिकता की सचाई थी और साथ ही प्रशस्त विनोद का पुट भी था।

सतियों ने पुनः प्रश्न किया—आप कहाँ से आये हैं और कहाँ जा रहे हैं? कुछ समय तक यहीं क्या चाहिये। हमें कुछ समाचार कहलाने भी हैं और जानने भी हैं। गुरुमहाराज के दर्शन की बड़ी अभिलाषा लगी है।

गृहस्थ ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—महाराज मेरी सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि मैं कहाँ से आया हूँ और कहाँ जारहा हूँ इस विषय से बिलकुल ही अनभिज्ञ हूँ। पागल की भाँति इधर-उधर भटक रहा हूँ।

सतीजी ने फर्माया—भावकजी आपका कहना यथार्थ है। यह आपकी ही नहीं प्राणीमात्र की कहानी है। भटने को पागल तो नहीं अवश्य कहना चाहिए।

अजस्र प्रवाह चल रहा है। मानव के सम्बन्ध में भी यही बात है। जो आया है, जाने वाला है। आज तक कोई स्थायी नहीं रहा। मगर उनका अल्पकालीन और अशाश्वत जीवन धन्य हो गया जिन्होंने इस जीवन में अनन्त और शाश्वत कल्याण को प्राप्त किया।

एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न दृष्टियाओं को भिन्न-भिन्न रूप में नजर आती है। जिस वस्तु को देखकर विलासी मनुष्य अपने अन्तःकरण में विकार और वासना की ज्वालाएँ भभका लेता है, उसी को देखकर विरक्त योगी के चित्त में वैराग्य की उत्ताल तरंगें तरंगित होने लगती हैं और वह प्रशम-रस में निमग्न हो जाता है। गुरुदेव ने संस्कारों के अनुरूप दृष्टि से प्रकृति के रूप का दर्शन किया और उसे अपनी साधना का उपाय बना लिया। ज्ञानीजन जगत् के प्रत्येक पदार्थ से प्रशस्त पाठ सीख लेते हैं। उनके लिए समग्र विश्व विद्यालय है। क्या ही उत्तम हो अगर आज के शिक्षाशास्त्री इस विश्व विद्यालय के साथ सम्पर्क स्थापित करें।

हाँ तो गुरुदेव के वैराग्यमय प्रवचन को सुनकर श्रोताजन मुग्ध हो गये। जब तक आप सादड़ी विराजे विविध विषयों पर प्रभावशाली प्रवचन करते रहे। वहाँ से प्रस्थान करके आप राणकपुर होते हुए सेरा प्रांत में पधारे। सायरा पहुँचते ही उदयपुर पर्यन्त आपके पदार्पण करने का शुभ संवाद सर्वत्र फैल गया। दर्शनार्थियों का तांता लग गया। दर्शनार्थियों की अधिकता के कारण विहार का वेग भी कम हो गया। गोगुंदा पधारने पर नाथद्वारा और मावली के श्रावक अपने-अपने क्षेत्रों में चौमासा करने की प्रार्थना लेकर उपस्थित हुए। उन्हें यथोचित उत्तर देकर आप उदयपुर की ओर पधारे।

उदयपुर श्रीसंघ उस समय संकीर्ण साम्प्रदायिकता की बीमारी से ग्रस्त था। मगर गुरुदेव के चित्त पर उसका कुछ प्रभाव नहीं था। साम्प्रदायिक कट्टरता उनके निकट भी नहीं फटकती थी। जिस हृदय में वैराग्य का अमृत लबालब भरा हो, उसमें कट्टरता का गरल प्रवेश नहीं कर सकता। कट्टरता एवं संकीर्णता आध्यात्मिकता के अभाव का चिह्न है। जिसकी अन्तरात्मा में धर्म का वास्तविक विकास हो जाता है और समभाव का दरिया बहने लगता है, उसमें किसी प्रकार की मलीन संकीर्णता उत्पन्न नहीं होती और पहले रही हो तो वह भी धुल जाती है। गुरुदेव ने सम्प्रदायवाद के जो अनर्थ देखे आगे चलकर वे भी बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। सम्प्रदायभेद की दीवारों को गिरा देने की उनसे प्रेरणा मिली।

गुरुदेव कल्पमर्यादा के अनुसार उदयपुर में विराजे। इसी बीच पूज्य एकलिंगदासजी म० के सम्प्रदाय के पण्डित श्रीजवाहरलालजी म० आदि पधारे। दोनों ओर से अच्छा प्रेमव्यवहार रहा। व्याख्यान भी साथ ही हुए। महासती

मुनिश्री ने जब सेवा के लिए तत्परता प्रकट की तो श्रीदौलतरामजी म० से भी पूछा गया और उन्होंने इस व्यवस्था के प्रति अपना सन्तोष प्रकट किया।

इस प्रकार समुचित व्यवस्था करके गुरुदेव ने समदड़ी से विहार किया। ठाणा २ से करमावस तथा बंडप होते हुए सण्ठिराव पधारे। फिर मार्गवर्ती क्षेत्रों में वीरधर्म का उद्घोष करते हुए घाणेराव सादड़ी में पदार्पण हुआ।

वह पतझड़ का मौसिम था। प्रथम तो मरुभूमि में हरियाली कदाचित् ही दृष्टिगोचर होती है, फिर पतझड़ के मौसिम में तो कहना ही क्या है। कहीं-कहीं खड़े हुए वृक्ष ऐसे मलीन होते जैसे प्रबल शत्रुओं द्वारा लुटा हुआ श्रीविहीन घर हो। वास्तव में वह दृश्य बड़ा वैराग्योत्पादक था। गुरुदेव जब स्थानक में पधारे और प्रारम्भिक प्रवचन करने लगे तो वही मार्ग के दृश्य आपके नेत्रों के आगे आ गये। आपने फर्माया—

> दुमपत्तए पंडुरए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
> एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

पेड़ के पत्ते पकने पर पीले पड़ जाते हैं, जैसे पीलिया से पूरी तरह पीड़ित हों और फिर पवन का हल्का-सा झौंका आया कि नीचे आ गिरते हैं। जिसके हृदय में दया और कोमलता है, वही उन पत्तों की दशा देखकर द्रवित हो उठता है। किन्तु जो सन्तदृष्टि हैं और जीवन के प्रति सतर्क हैं, वे जानते हैं कि मानवजीवन की स्थिति भी उन पत्तों से अच्छी नहीं है। किसी भी क्षण जीवन का अन्त करने के लिए मृत्यु की आंधी आ सकती है। ऐसी स्थिति में विवेकवान् जनों का क्या कर्त्तव्य है यह समझना कठिन नहीं। भगवान् फर्माते हैं—क्षण भर भी प्रमाद न करो और आत्मा के कल्याण में लग जाओ और निरन्तर लगे रहो।

जगत् की दशा बड़ी विषम है। कवियों ने नानाप्रकार से उसे चित्रित करने का प्रयत्न किया है। एक कवि ने बड़े भावपूर्ण शब्दों में कहा है—

> पान खिरंता इम कहे, सुन तरुवर वनराय।
> अब के बिछुड़े कब मिलें, दूर पड़ेंगे जाय॥
> तब तरुवर उत्तर दियो, सुनो पुत्र ! इक बात।
> इस घर की या रीत है—इक आवत इक जात॥

अगर पुराने पत्ते वृक्ष की डाली पर शंकर की तरह जमा जमाकर बठे रहें तो नवीन पत्तों और कोंपलों को कहाँ स्थान मिलेगा ? उस हालत में प्रकृति की सारी व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जायगी। इसलिए अनादिकाल से आवागमन का

गुरुदेव ने उत्तर दिया—भगवदाज्ञानुसार उपवास की पारणा के दिन पोरसी करने से दो उपवास का अधिक फल होता है। इसी प्रकार बेले के परचात् पोरसी करने से २५ उपवासों का और बेले के ऊपर पोरसी करने से पचास उपवासों का फल होता है। इसके अतिरिक्त बेला करने से पाँच तेला करने से पच्चीस और चोला करने से छह सौ पच्चीस उपवासों का फल होता है। इसके आगे एक-एक उपवास की वृद्धि पर पाँच-पाँच गुना फल बढ़ता जाता है।

इस प्रकार तपश्चर्या का महत्त्व सुन कर मातेश्वरीजी प्रभृति सतीसमुदाय में तथा श्रावक-श्राविकाओं में खूब व्रत-प्रत्याख्यान आदि हुए।

किसी दूसरे दिन मातेश्वरीजी ने प्रश्न किया—मुनिवर संसारी जीव कर्मों के जाल में किस कारण से पड़ा है? उस जाल को तोड़ने का क्या उपाय है?

इस प्रश्न को सुन कर गुरुदेव को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगे—मुमुक्षु आत्माओं के लिए यह प्रश्न बड़ा उपयोगी है। इस प्रश्न के उत्तर में शास्त्रों का समग्र सार समा जाता है। तत्पश्चात् आपने संक्षेप में उत्तर देते हुए फर्माया—संसार में कर्मबन्धन के मूल कारण दो हैं—राग और द्वेष। कहा भी है—

रागद्दोसे य दो पावे, पावकम्मपवत्तणे।

चार कषाय इन्हीं की शाखाएँ हैं। इसी से कहा गया है—

कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव।

अन्तःकरण के क्षेत्र में से कषाय का विषवृक्ष जब समूल उखड़ जाता है, तभी उसमें समता, वीतरागता, निराकुलता आदि के अमृतमय फल प्रदान करने वाले कल्पतरु पनप पाते हैं।

जीव अनादिकाल से कषायों से संतप्त हो रहा है और इसी कारण वह कर्मों से बद्ध है। प्रत्येक समय नवीन कर्मों का बंध हो रहा है और परिपक्व कर्मों की निर्जरा भी हो रही है। अनादि से यह दुस्तर कर्मप्रवाह सतत्गति से प्रवाहित हो रहा है। जो महात्मा कर्मबंध के कारण को दूर करके अर्थात् आस्रव का निरोध करके, संवर की साधना करता है और तपस्या आदि के द्वारा पुरातन कर्मों की निर्जरा करने पर तुल जाता है वह क्रमशः कर्मों से सर्वथा मुक्त बन जाता है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि आस्रव और बंध संसार के कारण हैं और संवर तथा निर्जरा मोक्ष के कारण हैं।

गुरुदेव ने स्पष्टीकरण करने के उद्देश्य से आगे कहा—भगवान् महावीर स्वामी के चरणों में नमस्कार करके विनयपूर्वक गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—'भंते!

श्रीहुलासकुँवरजी श्रीमदनकुँवरजी म० तथा स्थविरा महासती श्रीफूलकुँवरजी एवं मातेश्वरी श्रीज्ञानकुँवरजी म० आदि वहीं विराजमान थीं। क्रम के अनुसार सतियाँ सेवा में पधारीं। माता पुत्र का सम्मिलन बहुत वर्षों के बाद हुआ था। अतएव महासतीजी ने सेवा का अच्छा लाभ उठाया।

मातेश्वरी महासती की उम्र उस समय ७८ वर्ष की थी। वह जीवन की संध्या का समय था। फिर भी महासतीजी संयम पालन में सदा सचेत रहती थीं। ज्ञान-ध्यान आदि साधुक्रियाओं में ही आपका समय जाता था। गुरुदेव की सेवा में उपस्थित होने पर भी धर्मचर्चा का ही दौर चलता था। आप नाना प्रकार के शास्त्रीय प्रश्न करतीं और गुरुदेव उनके हृदयस्पर्शी उत्तर देते थे।

एक दिन महासतीजी ने प्रश्न किया—सामायिक में नमस्कार मन्त्र के जाप का तथा नवकारसी पोरसी एवं उपवास का आगमानुसार क्या फल होता है?

गुरुदेव ने कहा—शुद्ध भाव से एक सामायिक करने वाला मानव करोड़ उनसठ लाख, पचीस हजार, नौ सौ पचीस पल्योपम और एक पल्य के चौथाई भाग परिमित काल तक की देवायु का बन्ध करता है। इसी प्रकार चित्त को स्थिर रखकर नवकारमन्त्र की एक माला फेरने का फल छत्तीस लाख त्रेसठ हजार दो सौ सड़सठ पल्योपम की देवायु बँधना है। एक आनुपूर्वी का पाठ करने से कम से कम चौसठ सागर और अधिक से अधिक पाँच सौ सागर की अतीत आयु में बँधे पाप छूट जाते हैं।

अठत्तर वर्ष की आयु में भी पुण्ययोग से मातेश्वरीजी की नेत्रज्योति अच्छी थी। आनुपूर्वी का नाम सुनते ही आपके चेहरे पर संतोष का भाव आविर्भूत हुआ। आपको आनुपूर्वी का पाठ करना बड़ा प्रिय था।

गुरुदेव ने पुनः फर्माया—सूर्योदय से लेकर ४८ मिनिट तक का समय नवकारसी काल कहलाता है। इस काल में अन्न-पानी आदि कोई भी वस्तु मुख में न डालना नवकारसी तप है। शुद्ध और निर्मल भाव से यह तपस्या करने वाला सौ वर्ष के अशुभ कर्मों का क्षय करता है। उसे देवायु का बन्धन भी हो सकता है।

तीर्थंकरों की आज्ञा के अनुसार द्रव्य और भाव से उपवास करने वाला पल्य प्रमाण, हजार, करोड़ वर्ष के पाप कर्मों को नष्ट कर सकता है। बेला आदि करने पर यह फल क्रम से दस-दस गुणा बढ़ता जाता है।

इस बीच एक साधक ने पूछा—गुरुदेव किसी को सौ उपवास करने हों तो किस विधि से वह उनकी पूर्ति कर सकता है?

भाई का सुयोग मिल जाने के कारण एक नवीन भाषा-उर्दू में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

मुनि भाषा पर पूर्ण अंकुश रखते हैं। समितियुक्त ही बोलते हैं। जो कह दिया पत्थर की लकीर हो गया। गुरुदेव मारवाड़ से जब उदयपुर की ओर विहार कर रहे थे तभी सुखे-समाधे मोमट पधारने का वचन दे चुके थे। वहाँ की जनता का आश्वासन दे दिया था कि विशेष कारण न हुआ और सुख-समाधि रही तो मोमट महाबाबाद में आये बिना मारवाड़ नहीं जाएँगे। वहाँ के श्रावकों को विश्वास था कि दयासागर गुरुदेव हमारे प्रांत को अवश्य पावन करेंगे। इस वचन की पूर्ति के लिए आपने उधर विहार किया। सन्तों का विचरण वहाँ बहुत कम होता है, अतएव जनता में सन्तसेवा का बहुत भाव बना रहता है। गुरुदेव उस प्रदेश में पधारे तो भावुक और धर्मप्रेमी जनता को ऐसा प्रतीत हुआ मानों घर में कल्पवृक्ष उत्पन्न हो गया हो। भाइयों-बाइयों में खूब धर्मध्यान हुआ।

चालीसवाँ चातुर्मास—

कामतो जायते सोको, कामतो जायते भयं।
कामतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं॥

—धम्मपद

शोक और भय का उद्भव काम-वासना से होता है। जिसने कामवासना पर विजय प्राप्त कर ली उसने शोक और भय को भी जीत लिया।

संसार के साधारण प्राणीसमूह वासनाओं की ज्वालाओं से दग्ध हो रहे हैं। वासनापूर्तिजन्य सुख के लिए रात-दिन आकुल-व्याकुल रहते हैं। उन अज्ञानियों को पता नहीं कि वासनाजनित सुख अत्यल्प क्षणिक घोर दुःख का कारण और अधोगति में ले जाने वाला है। वासनाओं से अभिभूत प्राणी सदा शोकाकुल बने रहते हैं। उनके ऊपर जब विपत्तियों के बादल मंडराते हैं और संकटों के पहाड़ टूट कर गिरने को होते हैं तब उन्हें कोई शरणदाता नहीं दिखाई देता। यह सब देख कर भी प्राणी पतंगे की तरह वासना की ज्वाला की ओर ही अग्रसर हो रहा है।

लंकाधिपति रावण क्या कम ज्ञानी था? मगर वासना की आग उसके अन्तःकरण में उत्पन्न हो गई। फल यह हुआ कि उसे प्राणों से हाथ धोना पड़ा। वह अपने परिवार के विनाश का भी कारण बना।

महाराज पद्मोत्तर के सिर पर काम का भूत सवार हुआ। वह सती द्रौपदी को उठा कर ले गया। मगर द्रौपदी के बदले घोर विपदा ही उसके हाथ लगी।

जीव कर्मों के वशीभूत होकर किस प्रकार रमण करता है और कर्मों को भवान्तर में किस प्रकार साथ ले जाता ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान फर्माते हैं—आयुष्मन् गौतम ! जैसे तिल के दाने में तेल व्याप्त होकर रहता है, ईख में रस दही में मक्खन, पाषाण में धातु और फूल में गंध रहता है इसी प्रकार आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में कर्म व्याप्त हैं। पृथ्वी में बीज डाला जाता है। उससे विशाल वृक्ष की उत्पत्ति होती है और उसमें रंग-बिरंगे फूल लगते हैं। इसी प्रकार हमारी एक-एक क्रिया के फलस्वरूप विविध कर्मों का बंध होता है और उससे नाना प्रकार के फलों की इसी जन्म एवं जन्मान्तर में प्राप्ति होती है।

फिर मातेश्वरीजी को सम्बोधित करते हुए आपने फर्माया—महासतीजी आपने सराहनीय संयम का पालन किया है। तप भी अच्छा किया है। इस ढलती उम्र में अब खूब सावधान रहना जिससे अन्तिम घड़ी सुधर जाय। अन्तिम समय की विचारधारा जीवनव्यापी संस्कारों से प्रभावित होती है। अतएव अपने पुण्य-पाप का हिसाब रखना। आपके लिए इहलोक और परलोक दोनों कल्याणकारी हैं। नमस्कार मन्त्र का शरण ही उन घड़ियों में आपका सहायक बनेगा।

मातेश्वरी—जगत् की किसी भी भौतिक वस्तु की मुझे अभिलाषा नहीं है, आपके दर्शन की इच्छा अवश्य रहती थी सो वह अब पूरी हो रही है। कृपा कर आप समय समय पर दर्शन देते रहा करें, जिससे मेरे चित्त में समाधि रहे और मैं सेवा का लाभ उठा सकूँ।

इस प्रकार गुरुदेव और मातेश्वरी के बीच नानाविध चर्चाएँ चलती रहती थीं और उनसे अन्य सतियों तथा श्रोताओं को भी तत्त्वज्ञान का लाभ होता था। इसी बीच अनेक स्थलों से चातुर्मास की प्रार्थनाएँ आने लगीं। गुरुदेव ने गोगुंदा में वि० सं० १९८८ का चातुर्मास करना स्वीकार किया। महासती श्री धूलकुँवरजी म० श्रीपानकुँवरजी म० श्रीशंभूकुँवरजी म० तथा श्रीशीलकुँवरजी म० का भी चौमासा गोगुंदा में ही हुआ।

उस समय सतीजी की सेवा में रह कर दो विरक्त बाइयाँ ज्ञानाभ्यास करती थीं, सुन्दरकुँवरजी तथा सायर बाई। सुन्दरकुँवरजी की दीक्षा उसी वर्ष चातुर्मास के पश्चात् हो गई। सायरबाई को पारिवारिक परिस्थिति के कारण काफी समय तक रुकना पड़ा।

गोगुंदा—चातुर्मास में धर्मध्यान अच्छा हुआ। अहमदाबाद पालनपुर मोमत एवं सेरा प्रांत के दर्शनार्थी जनों का तांता लगा रहा। श्रीपुष्करमुनिजी महाराज ने एक ब्राह्मण श्रीदेवीलालजी की सहायता से उर्दू भाषा का अभ्यास किया। आप संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के अच्छे विद्वान् बन चुके थे। उर्दू पढ़ाने वाले

और वह भी भूख से मरा हुआ था ! मगर दूसरा कोई विकल्प नहीं था। आस पास में कोई घर नहीं था और सूर्यदेव शीघ्र ही मुँह छिपा लेने की धमकी दे रहे थे। अतएव गुरुदेव न उसी मुसाफिरखाने का आश्रय लिया।

आधा फर्लांग की दूरी पर मकान के दोनों ओर, पूर्व और पश्चिम में पर्वत अपना मस्तक ऊँचा किये खड़ा था। वह पुरातन भारत का स्मारक स्वरूप पर्वत अरावली के नाम से विख्यात है, जिसने न जाने कितनी सहस्र शताब्दियाँ देखी हैं और जिसके वक्षस्थल पर अगणित स्वाधीनताप्रिय नरवीरों ने अपने प्राणों की आहुति दी है। वह अरावली जिसके वक्ष पर अत्याचारियों के अत्याचारों का प्रतिरोध करने के लिए प्रताप जैसे प्रतापी वीरों ने खून की होली खेली थी। वास्तव में अरावली भारतीय शौर्य का अद्वितीय प्रतीक है और पराक्रम का पावन स्मारक है। भारत भूमि पर जब तक अरावली का एक भी अवशेष रहेगा भारतीय जन स्वाधीनता के गौरव का विस्मरण नहीं कर सकेंगे।

अरावली का प्राचीन इतिहास गुरुदेव की दृष्टि के समक्ष सजीव-सा हो उठा। समय कम होने से सन्तों ने उसी मुसाफिरखाने में अपने आसन जमाये। गुरुदेव ने अपने शिष्य का आसन अन्दर की ओर रक्खा और अपना द्वार के सम्मुख।

इतने में चारों ओर घोर अन्धकार व्याप्त हो गया जैसे समग्र विश्व को किसी ने काजल से मढ़ दिया हो।

मुसाफिरखाना एक जलाशय के समीप ही था। अतएव रात्रि में वनराज और उनके प्रजागण पानी की तालाश में आये और चले गये। गुरुदेव के अखण्ड ब्रह्मचर्य के प्रताप से किसी भी हिंसक पशु को उधर झाँकने का साहस न हुआ। रात्रि सकुशल व्यतीत हुई। गुरुदेव जैसे संध्या के समय में निर्भय थे उसी प्रकार निर्भय भाव से प्रभातकाल में वहाँ से प्रस्थान कर आगे बढ़े। सुखपूर्वक आप पडावली ग्राम में पधार गये।

सन्तजन जंगम तीर्थ कहलाते हैं। जो भव्य जीवों को संसार-सागर से तिरने का उपाय बतलाता है और धर्मभावना उत्पन्न कर सकता है, वही जंगम तीर्थ वास्तव में तीर्थ है। इन तीर्थों की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि वे स्वयं स्थान-स्थान पर विचरण करके भव्यजनों को पार पहुँचाने का मार्ग प्रदर्शित करते हैं।

भीमट (वाकल) के धर्मप्रेमी नर-नारियों ने घर आँगन पधारे हुए गुरुदेव को तीर्थस्वरूप मानकर अपार हर्ष का अनुभव किया।

स्त्रियों के भील कपड़े पहन कर उस कृष्ण वासुदेव के सामने आना पड़ा और इस प्रकार दीनता के साथ प्राणों की भीख माँगनी पड़ी। वास्तव में कामवासना मानव के लिए बड़े से बड़ा अभिशाप है। भगवान् महावीर ने यथार्थ ही कहा है—

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं॥

कामभोग शल्य हैं कामभोग विष हैं और भयंकर विषधर के समान जहरीले हैं। इनकी दारुणता तो इसी से प्रतीत होती है कि कामभोगों को न भोगने वाला मगर इनकी अभिलाषा करने वाला भी दुर्गति का पात्र होता है।

कामविकार की आग अनन्त-अनन्त ज्वलन बमों से भी अधिक भीषण होती है। ब्रह्मचर्य की साधना के द्वारा ही उस आग को शान्त किया जा सकता है। यही कारण है कि शास्त्रों में ब्रह्मचर्य की महिमा मुक्त कंठ से गाई गई है। ब्रह्मचर्य दैविक शक्ति है। उसके प्राप्त हो जाने पर मनुष्य इतना सशक्त बन जाता है कि भीति नाम की वस्तु उसके समीप भी नहीं फटकती। प्राचीनकालीन महर्षियों के पैरों में व्याघ्र और सिंह पालतू कुत्तों के समान पड़े रहते थे। महर्षिजन उनसे भयभीत नहीं होते थे। यह उनके ब्रह्मचर्य का ही प्रताप था। ब्रह्मचर्य का प्रभाव मति के अगोचर और मन से अचिन्त्य है। तर्क की तो पहुँच ही वहाँ नहीं है। ब्रह्मचर्य के प्रताप से आग शीतल हो सकती है, सर्प पुष्पमाला का रूप धारण कर सकता है, तो सिंह जैसे विकराल पशु सौम्य रूप क्यों नहीं धारण कर सकते?

हमारे चरितनायकजी की विहारचर्या में भी एक ऐसी ही घटना घटित हुई। आप गोमट प्रदेश में पधार रहे थे। गोगुन्दा और पदराड़ली ग्रामों के बीच चौदह मील तक पावत्य प्रदेश है। कहीं-कहीं आदिवासी भीलों के झौंपड़ों के सिवाय वहाँ कोई बस्ती नहीं है। इस भयावने वन में सिंह आदि हिंस्र पशुओं का विहार होता रहता है।

गुरुदेव जब वहाँ पहुँचे तो पीपल नामक एक स्थान पर रात्रिवास के लिए रुकना पड़ा। संध्या हो रही थी। दिन बहुत कम रह गया था। सूर्यास्त के पश्चात् जैन मुनि विहार नहीं करते। अतः वहाँ ठहरना अनिवार्य हो गया।

वहाँ एक मुसाफिरखाना था। उसे देखा तो पता चला कि उसके किवाड़ ही नदारद हैं। बिना किंवाड़ों का वह मुसाफिरखाना उस भयावह जंगल में रात्रि के समय कितना उपयोगी हो सकता है यह बात समझाने की आवश्यकता नहीं।

हाथियों के चित्र देखकर जनता विस्मित हो गई। कला सम्बन्धी कौशल मानव हृदय को मुग्ध कर देता है।

तदनन्तर आप गोगुन्दा पधारे। स्थविर मुनि श्रीदौलतरामजी म० की सेवा में पहुँचना था अतएव सेरा प्रान्त में होते हुए सादड़ी, खंडिराव और फिर चायोद पधारे।

सूरदास का प्रश्न—

चायोद में एक सूरदास महाशय थे जो तेरहपंथी समाज में धर्मोपदेशी माने जाते थे। वह वहाँ ग्रामगुरु कहलाते थे। ज्ञानी इतने बड़े कि भगवान् महावीर की चूक बतलाने तक की हिमाकत करते थे। मरते हुए जीव को बचा लेने में एकान्त पाप बतलाते थे और भूख-प्यास से छटपटाते हुए किसी दीन-दुखी जीव को भोजन-पानी देने में भी एकान्त पाप कहते थे। वह अपने आपको कट्टर तेरह पन्थी मानते थे।

चरितनायक गुरुदेव चायोद पधारे और रात्रि में एक छोटे-से मकान में ठहरे। सूरदासजी को आपके पधारने का समाचार मिला तो अपनी बुढ़ापे की सखी पथप्रदर्शिका यष्टिका हाथ में लेकर चल पड़े। रात्रि के ८॥ बजे का समय था। मुनिराज स्वाध्याय कर रहे थे। द्वार पर लाठी की आहट पाकर समझा कि कोई जिज्ञासु जन आया है। सूरदास पाई हुई शिक्षा के अनुसार सन्तों के प्रति अभिवादन आदि शिष्टाचार किये बिना ही बैठ गये। आव देखा न ताव जो दिमाग में भर रक्खा था वही मुख से उगलने लगे। बोले—'सन्तो! जिस मकान में साधु निवास करते हैं, उसके द्वार खुले ही रहते हैं। वे रात्रि में भी द्वार बन्द नहीं करते। ऐसी स्थिति में यदि कोई नारी अपने छह महीने के बालक को साथ में ले कर, रात के समय साधु के पास आवे और कहे—'हे मुनि, मेरे साथ भोग करो अन्यथा इस बालक को आपके सामने मार डालूँगी।' मुनि यदि संभोग करता है तो पाप का भागी होता है और नहीं करता तो भी बालहत्या के पाप का भागी होता है। ऐसी स्थिति में मुनि को क्या करना चाहिए?

गुरुदेव ने सूरदास का प्रश्न सुना तो समझ गये कि यह इसकी कुशिक्षा का परिणाम है, कोरा कुतर्क है। इसमें हृदयस्पर्शी तत्त्व नहीं है। यह जिज्ञासुभाव से किया गया प्रश्न नहीं है, सिर्फ दया को पाप बतलाने की धृष्टता मात्र है। फिर भी जब प्रश्न उपस्थित हुआ है तो मौन धारण करना उचित नहीं है।

गुरुदेव ने उस भाई को मधुर शब्दों में आश्वासन देकर दया-दान का विरोध न करने के लिए समझाया। तत्पश्चात् मूल प्रश्न के विषय में फर्माया—

इस प्रांत में मुनिराज बहुत कम पधारते हैं। अतएव मुनिदर्शनार्थ आने वालों का तांता सा लगा रहता था। स्वधर्मी भाई परस्पर एक दूसरे का सत्कार करते दीन-हीन जनों को यथोचित दान देते और पशुओं को शुष्क घास डलवाते थे। जिस किसी ग्राम में आपका पदार्पण होता वहाँ आसपास के ग्रामों में रहने वाले जैन बच्चे-बच्चे गुरुदेव की सेवा में पहुँचते। अहिंसा सत्य ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का तथा नोकारसी पोरसी उपवास आदि नियमों का पालन करने का यथाशक्ति नियम लेते थे। कोई-कोई माता पिता सासू, श्वसुर आदि की आज्ञा के पालन आदि के उपयोगी नियम लेकर लौटते थे।

वास मास्का होकर जब आप बीरपुर पधारे तो वहाँ माली तथा लुहार भाइयों ने भी सेवा एवं उपासना का बहुत लाभ उठाया। जैनों के पाँच घर होने पर भी व्याख्यान में सैकड़ों स्त्री-पुरुष एकत्र होते थे। यह एक छोटा और मझौला गाँव है, अतएव वहाँ कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है। तथापि ग्राम के मध्य भाग में एक विशालकाय बट वृक्ष है, जो सड़क के किनारे पर स्थित है और बटोमारे यात्रियों एवं पशुओं को आराम देने के लिए, उनके स्वागत के लिए, सदैव अपनी शाखा रूप भुजाएँ फैलाए खड़ा रहता है। इसी बटवृक्ष की शीतल छाया में विराजमान होकर गुरुदेव ग्रामीण जनता के योग्य विषयों पर सरल भाषा में प्रवचन करते थे।

एक दिन गुरुदेव ने मानवभव की महिमा प्रदर्शित करते हुए फर्माया— मानवता प्राप्त करने से पहले मानवभव प्राप्त करना होता है और उसकी प्राप्ति भी बड़ी ही दुर्लभ है। इस चराचर विश्व में मानवभव सब से श्रेष्ठ माना गया है। अनन्त पुण्य के उदय से नरदेह मिलती है। परन्तु अज्ञानी जन इससे लाभ नहीं उठाते और पशुओं की तरह व्यर्थ के कामों में ही व्यर्थ कर देते हैं। इसे सफल बनाने का एक ही उपाय है—धर्म का सेवन करना। अहिंसा का पालन करना सत्य के मार्ग पर चलना परोपकार करना ईर्षा द्वेष न करना किसी का बुरा न चाहना दूसरे के सुख को देख कर सुखी होना और दुःख में दुःखी होना माता-पिता दीन-हीन असमर्थ जनों की सेवा करना प्रेमपूर्वक रहना और परस्पर सहानुभूति का भाव रखना यह धर्म की प्रथम श्रेणी है।

इस प्रकार गुरुदेव के सर्वजनोपयोगी प्रवचनों का जनसमाज पर गहरा प्रभाव पड़ा था। ग्रामीण जनता को आपके प्रवचनों से नूतन प्रकाश मिला और बहुतों का जीवन सन्मार्ग पर लगा। जैनों में खूब व्रत-प्रत्याख्यान आदि हुए।

गुरुदेव ओगणा होते हुए मजावाड़ पधारे। मजावाड़ के रावजी साहब ने आपकी खूब सेवा की। मने की डाक जितनी प्यारी जगह में एक सी आठ

तो उसे सुसम्पन्न कर एक रूप हो जाएँ। तत्पश्चात् विभिन्न सम्प्रदायों के प्रान्तीय सम्मेलनों का आयोजन किया जाय और उनमें प्रांत व्यापी संगठन को मूर्त रूप दिया जाय। सफलतापूर्वक इतनी भूमिका तैयार हो जाने के पश्चात् अखिल भारतीय साधुसम्मेलन की तैयारी की जाय।

इस योजना के अनुसार प्रत्येक सम्प्रदाय का स्नेहसम्मेलन होने लगा। समाज में नया उत्साह उमड़ पड़ा। नयी उमंगें और नयी चेतना उत्पन्न हुई। *हमारे चरितनायक संगठन के प्रबल समर्थक थे। साम्प्रदायिक संकीर्णता के कटुक* परिणामों को जानते थे। अतएव संगठन की इस योजना से आप बहुत प्रसन्न हुए और उसे सफल बनाने में योग देने लगे।

अमरगच्छ का स्नेहसम्मेलन समदड़ी में आयोजित हुआ। एक प्रकार से चरितनायक ही इस गच्छ के नायक और सर्वेसर्वा थे। हृदय की उदारता स्वच्छता और मद्रता के कारण सन्तों की हार्दिक श्रद्धा के भाजन थे। अतएव स्नेहसम्मेलन खूब आनन्द के साथ सम्पन्न हुआ। अन्यान्य सम्प्रदायों के सम्मेलन भी हो गये। तत्पश्चात् प्रांतीय सम्मेलनों की बारी आई। गुजरप्रान्तीय सम्मेलन राजकोट में और पंजाब प्रांतीय सम्मेलन होशियारपुर में हुआ। मारवाड़ी मुनिराजों का सम्मेलन पाली में होना निश्चित हुआ।

पाली से प्रांतीय सम्मेलन में सम्मिलित होने की प्रार्थना का तार आया। तत्पश्चात् एक शिष्टमंडल भी उपस्थित हुआ। गुरुदेव संगठन और ऐक्य के अभिलाषी थे ही आपने सम्मेलन में सम्मिलित होने की स्वीकृति प्रदान की।

पारस्परिक विचारणा के पश्चात् निश्चित हुआ कि श्रीदौलत मुनिजी श्रीप्रतापमलजी म० तथा श्रीपुष्कर मुनिजी म० समदड़ी से लांबा पधारें और श्रीनारायणचन्द्रजी म० के साथ गुरुदेव पाली पधारें।

गुरुदेव ने श्रीनारायणचन्द्रजी म० के साथ पाली की ओर विहार किया। उस समय श्रीदयालचन्द्रजी और श्रीहमराजजी म० पाली में ही विराजमान थे। आपके पदार्पण के अवसर पर श्रीहमराजजी म० तथा अन्य सन्त स्वागतार्थ लम्बी दूर तक सामने पधारे। चारों सन्त एकत्र विराजे।

चारों सन्तों में साम्प्रदायिक हित सम्बन्धी चर्चा हुई। यह भी निश्चय हुआ कि इस समय सर्वत्र संघ में एकता की जो आवाज सुनाई दे रही है, वह श्रीसंघ के लिए अतीव हितकर है और हमें एकता की स्थापना में भरसक सहयोग देना चाहिए।

यह प्रश्न किसी तेरहपंथी साधु से ही पूछना चाहिए। उन्हीं के लिए यह लागू होता है क्योंकि अन्य मुनि तो रात्रि में अवसर देखकर द्वार बंद करके सो सकते हैं। मगर तेरहपंथी साधुओं की रीति द्वार बंद न करने की है। उन्हीं के पास रात्रि में ऐसी नारी के आने की कल्पना की जा सकती है। ऐसी स्थिति में वे क्या करेंगे यह वही बतलाएंगे। उन्हीं से यह प्रश्न पूछना चाहिए।

गुरुदेव का अवसरोचित उत्तर सुन कर सूरदास को बोलने के लिए अवकाश न रहा। वह चुप हो कर वहाँ से चल दिया।

चरित्रनायक यथासमय चायोद स विहार करके, कुन्दावा होते हुए समदड़ी पधार गये।

समदड़ी में पाँच सन्त सम्मिलित हो गये। श्रीशीतलमुनि की शारीरिक स्थिति विहार के योग्य नहीं थी अतएव विहार करने में बाधा खड़ी हो गई।

गुरुदेव की मेवाड़ यात्रा के समय श्रीनारायणचन्द्रजी म०ने स्थविर मुनि की बड़े चाव स सेवा की थी। वे बड़े ही सेवापरायण सन्त थे और उन्हें सेवा का अवसर मिलने पर सन्तोष का अनुभव करते थे। श्रीशीतल मुनि ने गुरुदेव के समक्ष उनके सेवाप्रेम की भूरि भूरि प्रशंसा की। गुरुदेव उनकी प्रशंसा सुनकर अतीव सन्तुष्ट हुए।

मरुधर मुनि सम्मेलन—

जो समाज समय का आदर करता है अर्थात् अपने मूलभूत आदर्शों एवं सिद्धान्तों को अक्षुण्ण करता हुआ उनके संरक्षण के लिए समय के अनुकूल व्यवस्था करता है, जो युग के साथ करवट बदल लेता है, वही समाज उत्थान कर सकता है। समय पलटता है और समय के साथ परिस्थितियाँ भी पलट जाती हैं। अतएव समाज के ढांचे में भी परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है। जिस समाज में इस प्रकार का परिवर्तन करने की क्षमता नहीं होती वह जीवित नहीं रह सकता।

स्थानकवासी समाज के दीर्घदृष्टि नेताओं ने समय की गति को पहिचाना और एक नया आन्दोलन आरम्भ किया। सर्वत्र एकता का नारा गूँजने लगा। संगठन का तुमुल घोष सुनाई देने लगा। स्थानकवासी समाज अनेक सम्प्रदायों में विभक्त था और सम्प्रदायों में संकीर्णता की चरम हुई भावना के कारण शक्ति केन्द्रित नहीं हो पा रही थी। अतएव विभिन्न सम्प्रदायों को संगठित करने की आवश्यकता थी। इस महत्त्वपूर्ण योजना को कार्यान्वित करने के लिए व्यवस्थित प्रयास प्रारम्भ हो गया।

संगठन की योजना ऐसी थी कि सर्वप्रथम एक-एक सम्प्रदाय के मुनिराज अपना-अपना सम्मेलन कर लें और उनमें यदि किसी प्रकार का विक्षोभ हो

और श्रीपुष्कर मुनिजी म० विहार कर कुम्पावा ब्यावर आदि आसपास के क्षेत्रों में पधार गये।

उन दिनों ग्रीष्म का प्रकोप बढ़ गया था। मारवाड़ी लू चल रही थी, जो आग की लपट के समान गर्म थी। उस समय विहार करना आसान काम न था किन्तु विहार करना आवश्यक था। श्रीछोगवरामजी म० के दुबल शरीर पर लू का असर हो गया और बिना ही व्याधि, लू लग जाने के कारण एक ही रात्रि में उनका स्वर्गवास हो गया। स्थविर मुनि के स्वर्गवास का समाचार शीघ्र ही सर्वत्र फैल गया। श्री ताराचन्द्रजी म० उस समय करमावस में थे। आप तत्काल विहार कर मोकलसर पधार गये।

पीपाड़ आदि अनेक क्षेत्रों के श्रावक चातुर्मास की प्रार्थना करने आये थे। देश-काल आदि पर विचार कर गुरुदेव ने पीपाड़ में चातुर्मास व्यतीत करने की स्वीकृति प्रदान की।

कल्पमर्यादा के अनुसार मोकलसर में विराजने के बाद आपने राखी करमावस बड़ीपाड़ा आदि आदि ग्रामों में विचरण किया और यथासमय पीपाड़ पधार गये।

पीपाड़ श्रीसंघ में धर्मोत्साह और जागृति सराहनीय है। आपके पदार्पण के अवसर पर संघ ने श्रद्धा के साथ भव्य स्वागत किया। उपाश्रय में पधारने पर आपश्री ने प्रासंगिक प्रवचन करते हुए एकता का महत्त्व समझाया और पाली सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्तावों में से चौबीसवें प्रस्ताव की व्याख्या करते हुए कहा—सम्मेलन के निर्णय के अनुसार मारवाड़ी छह सम्प्रदायों के मुनिराज एक ही क्षेत्र में अलग-अलग चौमासा नहीं करेंगे। कदाचित् कारणवशात् हो जायगा तो अलग-अलग व्याख्यान नहीं सुनाएंगे। इस निर्णय के अनुसार जहाँ भी हमारा मिलाप होगा एक ही स्थान पर व्याख्यान होगा। मुनियों ने जो निर्णय किया है, वह संघ की उन्नति शान्ति और धर्म की प्रभावना की दृष्टि से अतीव उत्तम निर्णय है। इस प्रशस्त निर्णय से एक ही किसी क्षेत्र में अनेक जगहों पर जो चौमासे होते थे, व रुक जाएँगे और परिणाम यह होगा कि बहुत-से क्षेत्रों को धर्मलाभ होगा। एक ही ग्राम में अनेक स्थलों पर व्याख्यान होना अनैक्य का निशान है। इससे भेदभावना विकसित होती है। जहाँ सिद्धान्तों की तथा आचार विचार की एकरूपता हो वहाँ अलग-अलग व्याख्यान होना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होता।

अब तक के जैनसंघ के इतिहास में विघटन की प्रधानता रही है। एक अखण्ड वीरसंघ के दो विभाग हुए। फिर उनमें भी एकता न रही। विभागों में

मरुधरमन्त्री की उपाधि—

पाली के प्रांगण में दूर-दूर से मुनिराजों का पदार्पण हुआ। प्रांतीय सम्मेलन होने के कारण निम्नलिखित छह सम्प्रदायों के महारथी मुनि उसमें सम्मिलित हुए—

(१) पूज्य श्रीअमरसिंहजी महाराज का सम्प्रदाय—चरितनायक गुरुदेव श्रीताराचंदजी म० श्रीनारायणचंद्रजी म० श्रीदयालचंदजी म० श्रीहंसराजजी म०।

(२) पूज्य श्रीनानकरामजी म० का सम्प्रदाय—प्रवर्तक पं० श्रीपन्नालालजी म० ठाणा ३।

(३) पूज्य श्रीस्वामीदासजी म० का सम्प्रदाय—श्रीफतहचन्दजी म० श्रीकन्हैयालालजी म० 'कमल' आदि ठाणा ४।

(४) पूज्य श्रीरघुनाथजी म० का सम्प्रदाय—श्रीमीश्रीमलजी महाराज आदि ठाणा ६।

(५) पूज्य श्रीजयमलजी म० का सम्प्रदाय—श्रीहजारीमलजी महाराज आदि ठाणा ११।

(६) पूज्य श्रीचौथमलजी म० का सम्प्रदाय—श्रीसादूलसिंहजी म० ठाणा ४।

सम्मेलन फाल्गुन शुक्ला तृतीया सं० १९८८ के दिन प्रारम्भ हुआ। इतने प्रधान-प्रधान मुनियों के दर्शन का एक ही स्थान पर लाभ उठाने के उद्देश से सैंकड़ों श्रावक और श्राविकाओं का भी आगमन हुआ। उत्साही और धर्मप्रेमी पालीसंघ ने सब आगत धर्मबन्धुओं एवं बहिनों का प्रेमपूर्वक स्वागत किया।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र की उन्नति के सम्बन्ध में तथा समाज संगठन के विषय में गंभीर विचारविनिमय हुआ और अनेक प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। छह सम्प्रदायों के छह प्रवर्तक बनाये गये और छह निम्नलिखित मन्त्री बनाये गये—(१) चरितनायकजी श्रीपन्नालालजी महाराज श्रीमगनलालजी महाराज श्रीमिश्रीमलजी महाराज श्रीचौथमलजी महाराज तथा श्रीसादूलसिंहजी म ।

आनन्द और उत्साह के वातावरण में सम्मेलन का कार्य समाप्त हुआ। समाज में नयी आशाओं का संचार हुआ और भारतव्यापी विराट साधुसम्मेलन की भूमिका का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् मुनिराजों ने विभिन्न क्षेत्रों की ओर विहार किया। चरितनायकजी विहार करके लांबा पधारे। यहाँ ठाणों का मिलाप हो गया। तत्पश्चात् चार ठाणा ४ से मोकलसर पधारे।

मोकलसर में आपके गुरुभ्राता श्रीउत्तमचन्द्रजी महाराज आदि तीन सन्त विराजमान थे अतएव कुछ समय तक आप वहीं विराजे। श्री उत्तमचन्द्रजी म०

सम्मेलन की आयोजना करने में जुट गये थे। अपूर्व वातावरण था निराली ही लहर थी। प्रमुख कार्यकर्ता मुख्य-मुख्य मुनियों की सेवा में पहुँच कर सम्मेलन की सफलता के सम्बन्ध में विचारविमर्श कर रहे थे। मरुधरमन्त्री चरितनायकजी की सेवा में भी कार्यकर्ता उपस्थित हुए। उन्होंने सम्मेलन में अजमेर पधारने की प्रार्थना की। गुरुदेव स्वभावतः संगठनप्रेमी थे और एकता के प्रबल समर्थक। आपके मन में कभी साम्प्रदायिक संकीर्णता का अनुभव ही नहीं हुआ था। अतएव सम्मेलन की आयोजना को आपका हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त था। आप मानते थे कि संघ में एकता स्थापित हो जाना मेरे चिरपोषित स्वप्न की सफलता है। चरितनायकजी ने प्रसन्नतापूर्वक सम्मेलन के सम्मिलित होने की, साधुमर्यादा के अनुकूल स्वीकृति प्रदान की। कार्यकर्ताओं की महान् निस्पृह सेवा की भूरि-भूरि प्रशंसा की और सम्मेलन की सफलता की अभिलाषा प्रकट की।

गुरुदेव के उदार विचार जानकर कार्यकर्ताओं का उत्साह चौगुना बढ़ गया और वे सोचने लगे कि—अगर सभी मुनियों का ऐसा ही दृष्टिकोण रहा तो सम्मेलन की सफलता में तनिक भी कठिनाई न आएगी। इस प्रकार वे नूतन आशाएँ लेकर रवाना हुए।

इधर सम्मेलन में सम्मिलित होने की स्वीकृति देते ही गुरुदेव ने अपने सिर पर विशिष्ट उत्तरदायित्व का अनुभव किया। तत्काल आपने भी समुचित कार्रवाई आरम्भ कर दी। यह आवश्यक था कि सम्मेलन में प्रस्तुत होने वाले प्रश्नों पर सम्प्रदाय के सन्तों के विचार जान लिये जाएँ। सम्मेलन में जिनका प्रतिनिधित्व करना है, उनकी विचारधारा से अभिज्ञ होना ही चाहिए। ऐसा किये बिना सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं होता और कभी-कभी उसका परिणाम भी अनिष्ट होता है। हमारे दूरदर्शी चरितनायकजी सम्प्रदाय के उत्तरदायी वास्तविक प्रतिनिधि बनकर जाना चाहते थे। अतएव आपने सन्तों से विचारों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया आरम्भ कर दी।

स विभाग होते ही चले गये। किन्तु अब समय आया है और हम संगठन की ओर अग्रसर होकर इतिहास की धारा को मोड़ने के लिए उद्यत हुए हैं। किन्तु भावकों के हार्दिक सहयोग से ही एकता को बल मिल सकेगा। अतएव आप लोग इस पुनीत प्रयास में सहायक हों। संकीर्ण विचारों को हृदय में स्थान न दें और संघ को विशाल स्वरूप प्रदान करने के प्रयत्नों में पूर्ण सहयोग दें। गई गुजरी बातों को भुला दें और मिल-जुल कर धर्म तथा संघ के अभ्युदय के लिए प्रयास करें। आपका सहयोग रहेगा तो निस्सन्देह धर्म का उदय होगा और संघ में शान्ति एवं आनन्द की धारा बहेगी।

आपके भावपूर्ण प्रवचन का गहरा प्रभाव पड़ा। समस्त संघ ने आपकी आज्ञा शिरोधार्य करने की तत्परता प्रकट की। उत्साह और आनन्द के वातावरण में चातुर्मास हुआ। खूब धर्माराधना हुई। मेवाड़ से इतने दर्शनार्थी आये कि चारों महीनों में भीड़ लगी रही। इस प्रकार सानन्द चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् गुरुदेव पीपाड़ से विहार कर शीघ्र ही कुन्दाड़ा पधारे।

इकतालीसवाँ चातुर्मास—

साधु विचरणशील साधक है। मोह-ममता के संस्कारों के उदय को अवसर न मिले इस दृष्टि से वह भ्रमण करते रहते हैं। इससे विभिन्न प्रदेशों की जनता को धर्मलाभ मिलता है। सच्चे साधक आत्मार्थी मुनि भावुक भक्तों के हृदय सरवर के कमल बन कर रहते हैं। वे पक्षी की भाँति अप्रतिबद्ध होकर विचरण करते हैं। यही कारण है कि चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् दूसरे दिन ही विहार कर देते हैं।

इधर से गुरुदेव कुन्दाड़ा पधारे और उधर कल्याणपुर से विहार कर श्रीनारायण चन्द्रजी म० भी पधार गये। श्रीदयालचन्दजी म ठा० २ वहीं विराजमान थे। सबका समागम हो गया। कुन्दाड़ा उस समय धर्मप्रेमी जनों के लिए त्रिवेणीतीर्थ बन गया। जहाँ सन्तों का समागम होता है, वहाँ के संघ में धर्मभावना की अपूर्व जागृति हो उठती है। लोगों की भावनाओं में निर्मलता आ जाती है। वीतराग वाणी का जयघोष होने लगता है। जनता में शुभ प्रवृत्ति की लहर पैदा हो जाती है।

कुन्दाड़ा में भी ऐसा ही हुआ। कुछ दिनों तक सन्तमण्डली वहाँ विराजी। पहले कहा जा चुका है कि वह समय स्थानकवासी समाज में अभूतपूर्व जागृति का काल था। सर्वत्र संगठन और एकता की धूम थी। प्रांतीय सम्मेलन हो चुके थे और उनसे संगठन को बल मिला था। सम्मेलनों की इस सफलता को देखकर समाज के उत्साही कार्यकर्ता आशावान हो गये

मायाजाल को छिन्न-भिन्न कर दिया। बाद का उनका जीवन एकान्त रूप से तप जप ध्यान स्वाध्याय और प्रभुस्मरण में ही व्यतीत हुआ। अस्सी वर्ष तक वह जीवित रहीं मगर दवाओं के सेवन की कोई खास आवश्यकता नहीं हुई। वह प्रकृति से अतीव भद्र थीं और उनकी वाणी में सुधा का माधुर्य था। उनकी धर्मश्रद्धा अगाध थी। 'जैसी कहनी वैसी रहनी' की उक्ति उन पर पूर्ण रूप से घटित होती थी।

माहेश्वरी राजस्थानी वीर नारी का सजीव प्रतीक थीं। आपत्तियों का दृढ़ता और वीरता के साथ सामना करके उन्होंने चरितनायकजी को संयमपथ में दीक्षित करवाया और स्वयं भी उसी पथ की पथिक बनीं। अपने इकलौते होनहार बालक को एक माता अपनी मोदभरी गोद से उठाकर गुरुजी के श्रीचरणों में अर्पित कर दे, यह ऐसी घटना है जो असाधारण व्यक्तियों के जीवन में ही घटित हो सकती है।

अपने संयमजीवन में उन्होंने वैराग्य की मूर्ति बनकर साध्वीसमाज में प्रचुर प्रतिष्ठा प्राप्त की। कषाय को भवभ्रमण का मूल कारण समझकर उन्होंने क्रोध को क्षमा से मान को नम्रता से माया को सरलता से और लोभ को निस्पृहता से जीता। इस प्रकार उनका समग्र जीवन सजीव बोधपाठ रहा।

चरितनायकजी ने महासतीजी के विषय में संक्षेप में फर्माया—महासतीजी ने महाप्रस्थान कर दिया है, परन्तु वे अपनी लम्बी यात्रा में किसी प्रकार का कष्ट नहीं उठाएँगी। वे अपने मार्ग की खर्ची साथ ले गई हैं। लम्बी यात्रा पर जाने वाला जो पथिक साथ में पाथेय-भाता-से लेता है, वह सुखपूर्वक अपने लक्ष्य पर पहुँचता है। उसे भूख-प्यास की पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती। इसी प्रकार परलोक जाने वाला जो जीव धर्म को साथ लेकर चलता है, उसे परलोक में दुःख नहीं भोगना पड़ता है। धर्म के प्रभाव से वह मोक्ष या स्वर्ग में जाता है। सराग भाव से धर्माराधना करने वाला भी उच्च गति पाता है तो महासतीजी के समान वीतरागभाव से धर्म की आराधना करने वाले का तो कहना ही क्या है। अब महासतीजी का भव्य आदर्श ही हम लोगों के समक्ष रहेगा और हमें प्रेरणा देता रहेगा।

चरितनायकजी के पश्चात् मुनि श्रीदयालचंदजी म० तथा श्रीनारायणचन्द्रजी म० ने भी स्वर्गीय महासतीजी के संयम की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए श्रद्धाञ्जलि समर्पित की।

उस दिन सभी मुनिराजों ने विशेष त्याग-प्रत्याख्यान किए और अनेक श्रावकों तथा श्राविकाओं ने भी ।

मातेश्वरी महासती का महाप्रस्थान

जहा महासागरं जो, सपाहेज्जा पवज्जइ।
गच्छंतो सो सुही होई, छुहातण्हाविवज्जिओ॥
एवं धम्मं पि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं।
गच्छंतो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे॥

—उत्तराध्ययनसूत्र

तब मुनिराज आहार कर के निवृत्त हुए ही थे कि कुछ श्रावक गुलाबी रंग के कागज का एक चौकोर टुकड़ा हाथ में लिए, गंभीर और खिन्न भाव से स्थानक में प्रविष्ट हुए। मुनिराजों पर दृष्टि पड़ते ही अन्य दिन जैसे उनके चेहरे खिल उठते थे वह दिन नहीं खिल रहे थे। वह कागज का टुकड़ा जयपुर से आया तार था और तार में अंकित समाचार ने ही उनके चेहरों पर विषाद की श्याम रेखायें खींच दी थीं। उनकी चाल से जान पड़ता था पैर आगे बढ़ना नहीं चाहते परन्तु कर्तव्य उन्हें जबर्दस्ती आगे घसीट रहा है। मुनिराज श्रावकों की यह स्थिति देख किसी गम्भीर घटना के घटित होने का अनुमान कर सतर्क हुए ही थे कि उनमें से एक भाई ने महासती श्रीज्ञानकुँवरजी महाराज के स्वर्गवास का वज्रपात के समान वृत्तान्त सुना दिया।

यों सन्तजनों के लिए जीवन-मरण कोई हर्ष-विषाद उत्पन्न करने वाली महत्त्वपूर्ण घटना नहीं है, तथापि जब एक संयममय और तपश्चरणपरिपूर्ण जीवन का अन्त होता है और संघ की कोई मूल्यवान निधि छिन जाती है तो विषाद न होना कठिन है। श्रीज्ञानकुँवरजी म० कोई साधारण साध्वी नहीं थीं। चरितनायक गुरुदेव की जननी होने के कारण ही उनका महत्त्व नहीं था। उनका अपना एक तपोमय और उदात्त व्यक्तित्व था। ऐसा व्यक्तित्व जो हजारों में भी नहीं मिलता।

महासतीजी को जैसे जन्मघुटी में ही धर्म के संस्कार दिये गये थे। धार्मिकता उनके शैशवकाल में ही उनके व्यवहार में झलकती थी। वह मधुर धर्म-धन की अधिकारिणी थीं। विधि ने उनके लिए लौकिक सुहाग का पर्याप्त न समझकर विवाह के कुछ काल पश्चात् ही उन्हें लोकोत्तर सौभाग्य प्रदान करने की योजना की। वास्तव में धर्म की धन देवी ने *वैधव्य को भी अनन्त अखंड सौभाग्य का* साधन बना लिया। चालीस वर्ष की प्रौढ़ वय में जब उनका एक मात्र पुत्र संयम ग्रहण करने योग्य बन गया उन्होंने दीक्षा अंगीकार कर संसार के समक्ष

मायाजाल को छिन्न-भिन्न कर दिया। बाद का उनका जीवन एकान्त रूप से तप जप ध्यान स्वाध्याय और प्रभुस्मरण में ही व्यतीत हुआ। अस्सी वर्ष तक वह जीवित रहीं, मगर दवाओं के सेवन की कोई खास आवश्यकता नहीं हुई। वह प्रकृति से अतीव भद्र थीं और उनकी वाणी में सुधा का माधुर्य था। उनकी धर्मश्रद्धा प्रगाढ़ थी। 'जैसी कहनी वैसी रहनी' की उक्ति उन पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती थी।

महेश्वरी राजस्थानी वीर नारी का सजीव प्रतीक थीं। आपत्तियों का दृढ़ता और वीरता के साथ सामना करके उन्होंने चरितनायकजी को संयमधर्म में दीक्षित करवाया और स्वयं भी उसी पथ की पथिक बनीं। अपने इकलौते होनहार बालक को एक माता अपनी मोदभरी गोद से उठाकर गुरुजी के श्रीचरणों में अर्पित कर दे, यह ऐसी घटना है जो असाधारण व्यक्तियों के जीवन में ही घटित हो सकती है।

अपने संयमजीवन में उन्होंने वैराग्य की मूर्ति बनकर साध्वीसमाज में मधुर प्रतिष्ठा प्राप्त की। कषाय को भवभ्रमण का मूल कारण समझकर उन्होंने क्रोध को क्षमा से मान को नम्रता से माया को सरलता से और लोभ को निस्पृहता से जीता। इस प्रकार उनका समग्र जीवन सजीव बोधपाठ रहा।

चरितनायकजी ने महासतीजी के विषय में संक्षेप में फर्माया—महासतीजी ने महाप्रस्थान कर दिया है, परन्तु वे अपनी लम्बी यात्रा में किसी प्रकार का कष्ट नहीं उठाएँगी। वे अपने मार्ग की खर्ची साथ ले गई हैं। लम्बी यात्रा पर जाने वाला जो पथिक साथ में पाथेय-भाता-ले लेता है, वह सुखपूर्वक अपने लक्ष्य पर पहुँचता है। उसे भूख-प्यास की पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती। इसी प्रकार परलोक जाने वाला जो जीव धर्म को साथ लेकर चलता है उसे परलोक में दुःख नहीं भोगना पड़ता है। धर्म के प्रभाव से वह मोक्ष या स्वर्ग में जाता है। सराग भाव से धर्माराधना करने वाला भी उच्च गति पाता है तो महासतीजी के समान वीतरागभाव से धर्म की आराधना करने वाले का तो कहना ही क्या है। अब महासतीजी का भव्य आदर्श ही हम लोगों के समक्ष रहेगा और हमें प्रेरणा देता रहेगा।

चरितनायकजी के प्रधान मुनि श्रीदयालचंदजी म० तथा श्रीनारायणचन्द्रजी म० ने भी स्वर्गीय महासतीजी के संयम की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए श्रद्धाञ्जलि समर्पित की।

उपस्थित सभी मुनिराजों ने विशेष त्याग-प्रत्याख्यान किए और अनेक श्रावकों तथा श्राविकाओं ने भी।

मातेश्वरी महासती का महाप्रस्थान

> अद्धाणं जु महंतं जो, सपाहेज्जो पवज्जइ ।
> गच्छंतो सो सुही होई, छुहातण्हाविवज्जिओ ॥
> एवं धम्मं पि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
> गच्छंतो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ॥
>
> —उत्तराध्ययनसूत्र

सब मुनिराज आहार कर के निवृत्त हुए ही थे कि कुछ श्रावक गुलाबी रंग के कागज का एक चौकोर टुकड़ा हाथ में लिए, गंभीर और खिन्न भाव से स्थानक में प्रविष्ट हुए। मुनिराजों पर दृष्टि पड़ते ही अन्य दिन जैसे उनके चेहरे खिल उठते थे वह दिन नहीं खिल रहे थे। वह कागज का टुकड़ा उदयपुर से आया तार था और तार में अंकित समाचार ने ही उनके चेहरों पर विषाद की श्याम रेखाएँ खींच दी थीं। उनकी चाल से जान पड़ता था पैर आगे बढ़ना नहीं चाहते परन्तु कर्त्तव्य उन्हें जबर्दस्ती आगे घसीट रहा है। मुनिराज श्रावकों की यह स्थिति देख किसी गम्भीर घटना के घटित होने का अनुमान कर सतर्क हुए ही थे कि उनमें से एक भाई ने महासती श्रीआनकुँवरजी महाराज के स्वर्गवास का वज्रपात के समान वृत्तान्त सुना दिया।

यों सन्तजनों के लिए जीवन-मरण कोई हर्ष-विषाद उत्पन्न करने वाली महत्त्वपूर्ण घटना नहीं है, तथापि जब एक संयममय और तपश्चरणपरिपूर्ण जीवन का अन्त होता है और संघ की कोई मूल्यवान निधि छिन जाती है तो विषाद न होना कठिन है। श्रीआनकुँवरजी म० कोई साधारण साध्वी नहीं थीं। चरितनायक गुरुदेव की जननी होने के कारण ही उनका महत्त्व नहीं था। उनका अपना एक तेजोमय और उदात्त व्यक्तित्व था ऐसा व्यक्तित्व जो हजारों में भी नहीं मिलता।

महासतीजी को जैसे जन्मघुटी में ही धर्म के संस्कार दिये गये थे। धार्मिकता उनके शैशवकाल से ही उनके व्यवहार में झलकती थी। वह मधुर धन-धन की अधिकारिणी थी। विधि ने उनके लिए लौकिक सुहाग का पर्याप्त न समझकर विवाह के कुछ काल पश्चात् ही उन्हें लोकोत्तर सौभाग्य प्रदान करने की योजना की। वास्तव में धन्य थी उस देवी ने वैधव्य को भी अपने अखंड सौभाग्य का साधन बना लिया। चालीस वर्ष की प्रौढ़ वय में जब उनका एक मात्र पुत्र संयम ग्रहण करने को तैयार हो गया उन्होंने दीक्षा अंगीकार कर संसार के समस्त

अजमेर की भूमि अनेक आचार्यों तथा उपाध्याय प्रवर्तक आदि पदवीधर मुनियों के चरणस्पर्श से पावन बनी। विदुषी महासतियाँ भी पधारीं। संघ के पुनरुद्धार एवं ज्ञान-चारित्र के विकास के विषय में विचारविनिमय हुआ। ता० ५ अप्रेल सन् १९३३ से प्रारम्भ होकर सम्मेलन का कार्य ता० २६ अप्रैल तक चलता रहा।

इस सम्मेलन में विभिन्न स्थानकवासी जैन सम्प्रदायों के २२५ मुनिराजों ने भाग लिया। हमारे चरितनायकजी भी पाली से विहार करते हुए यथासमय सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए अजमेर पधार गये थे। प्रतिनिधि के रूप में आपने सम्मेलन में अच्छा योग दिया।

पूज्य श्रीअमरसिंहजी महाराज के सम्प्रदाय के चार प्रतिनिधि थे—(१) गुरुदेव श्रीताराचन्द्रजी महाराज (२) श्रीदयालचन्द्रजी म० (३) श्रीनारायण चन्द्रजी म० और (४) श्रीहेमराजजी म०। प्रत्येक सम्प्रदाय के सन्त-सतियों की संख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था। मुनियों की सभा बहुत शानदार गोलाकार बैठकर होती थी। बीच में दो मुनि बैठ कर हिन्दी और गुजराती भाषा में स्वीकृत प्रस्ताव आदि कार्रवाई लिपिबद्ध करते जाते थे। गणि श्री उदयचन्द्रजी म० तथा शतावधानी पं० मुनि श्रीरत्नचन्द्रजी म० शान्तिरक्षक थे।

सम्मेलन के कार्य की सुविधा की दृष्टि से २१ मुनिराजों की एक विषय निर्धारिणी समिति नियुक्त कर दी गई थी। यह समिति विवादग्रस्त विषयों पर ऊहापोह, चर्चा-वार्त्ता करके उन्हें प्रतिनिधिमण्डल के समक्ष उपस्थित करती थी जिससे सम्मेलन में कम से कम मतभेद हो और कार्रवाई शीघ्रता के साथ आगे बढ़ सके। हमारे चरितनायकजी भी इस समिति के एक सदस्य थे। अन्य मुनिराजों में गणिवर्य श्रीउदयचन्द्रजी म० पूज्य श्रीअमोलकऋषिजी म श्रीमणि लालजी म० पूज्य श्रीजवाहरलालजी म० आदि थे।

इस प्रकार सम्मेलन की आन्तरिक और बाह्य व्यवस्था बड़ी सुन्दर थी। अत्यन्त शांति और सद्भावना के साथ सम्मेलन का कार्य हुआ। उसमें अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए। समाज में एक नवीन युग का निर्माण हुआ। नवीन पथ सामने आया। अभूतपूर्व जागृति हुई। संघऐक्य की कल्पना सामने दीखने लगी। साम्प्रदायिक भेदभाव में कमी होने लगी। परस्पर में सौहार्दपूर्ण व्यवहार होने लगा। संघ में नवीन आशा, नवीन उत्साह, और नये-नये स्वप्न साकार होन लगे।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह समारोह एक महान् घटना थी। किसी ने अपने जीवन में एक स्थान पर, विशाल भारत के दूर-दूरवर्ती प्रांतों में विचरण

बृहत्साधुसम्मेलन—

जिस दिन मातेश्वरीजी के स्वर्गवास का समाचार मिला था, उसी दिन चरितनायकजी ने अजमेर में होने वाले बृहत् साधुसम्मेलन में आने का निर्णय कर लिया। शुभ मुहूर्त देख कर आप पाली की ओर रवाना हुए।

अजमेर का बृहत्साधुसम्मेलन जैन इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। जिनशासन और वीरसंघ के अभ्युदय के हेतु किये गये इस पुनीत अनुष्ठान का विशिष्ट स्थान है। इतिहास से विदित होता है कि श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् पाटलिपुत्र (पटना) में प्रथम बार मुनिसम्मेलन हुआ। तत्पश्चात् तीन सौ वर्ष बाद दूसरा सम्मेलन मथुरा में हुआ। तीसरा सम्मेलन वीरनिर्वाण के ९८० वर्ष बाद सौराष्ट्र प्रदेश के अन्तर्गत वल्लभीपुर में आयोजित हुआ। इस सम्मेलन का नेतृत्व आचार्य श्रीदेवर्धिगणी क्षमाश्रमण ने किया था। तेरह मास पर्यन्त सम्मेलन चलता रहा। उसी समय जैनागम लिपिबद्ध किये गये। इससे पहले आगम लिखित रूप में नहीं थे। गुरुशिष्यपरम्परा से सन्त जन उन्हें कंठस्थ कर लेते थे।

वल्लभीपुर-सम्मेलन के पश्चात् लम्बी-लम्बी पन्द्रह शताब्दियाँ बीत जाने पर भी मुनियों के विराट्-सम्मेलन का शुभ अवसर नहीं आया था। अतएव अजमेर का साधुसम्मेलन डेढ़ सहस्राब्दी के पश्चात् होने वाली एक महान् घटना था।

इन पन्द्रह सौ वर्षों में क्या-क्या परिवर्तन नहीं हो गये ! कितना ही साहित्य लिखा गया ! कितनी ही पुरातन परम्पराएँ अतीत के गहन अंधकार में विलीन हो गईं और कितनी ही नवीन विचारधाराएँ प्रवाहित हुईं। अजमेर-सम्मेलन सिर्फ स्थानकवासी परम्परा के साधुओं का सम्मेलन था। इस परम्परा में भी अनेक शाखाएँ फूट निकली थीं और उन शाखाओं में भी बहुत-सी अवांछनीय वृत्तियाँ उत्पन्न हो गई थीं जिनका परिमार्जन करना आवश्यक था। समाज के विचारशील मुनियों और श्रावकों की तीव्र अभिलाषा थी कि हजारों वर्षों से चले आ रहे अनैक्य के सिलसिले को अब समाप्त किया जाय और कम से कम स्थानकवासी परम्परा में एकरूपता लाई जाय। इस प्रकार सम्प्रदायों का एकीकरण सम्मेलन का प्रधान साध्य था।

सभी सम्प्रदायों के प्रमुख मुनिराजों का पदार्पण हुआ। उस समय स्थानकवासी समाज में अभूतपूर्व जागृति आ गई थी। सर्वत्र उत्साह और उल्लास व्याप्त था। एकता और संगठन की पुनीत भावनाएँ अत्यन्त प्रबल रूप धारण कर रही थीं। समाज इतिहास के महत्त्वपूर्ण नवीन पृष्ठों का निर्माण होने और एक स्मरणीय महान् युग का प्रारम्भ होने की राह देख रहा था।

वहाँ मद्रास बम्बई आदि नगरों में व्यापार करने आते जाते हैं। विद्यालय का व्यय वसूबी सहन कर सकते हैं। धर्म के प्रभाव से सब तरह की अनुकूलता है।

चरितनायकजी ने ज्ञानप्रसार का अवसर और भाइयों की गहरी भावना देखकर तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव अनुकूल जानकर मंवाल के भाइयों को आश्वासन दे दिया। इस प्रकार वि० सं० १९९० का चौमासा मंवाल में व्यतीत हुआ। वहाँ श्रीमगनमलजी कोचेटा सेठ मिश्रीमलजी चाँदमलजी तथा राम करणजी मामड आदि श्रावक बड़े सेवाभावी और उत्साही थे।

दिये हुए वचन के अनुसार मंवाल में श्री लौंकाशाह के नाम पर पाठशाला की स्थापना की गई। स्थापना के शुभ अवसर पर प्रवचन करते हुए गुरुदेव ने फर्माया—

दीनदानाद् भवेद् भोगी, सुखी सत्पात्रदानतः।
अभीतिदानाद् दीर्घायुः ज्ञानी स्याज्ज्ञानदानतः॥

आचार्य कहते हैं—दीन-हीन जनों को करुणादान देने से भोगों की प्राप्ति होती है, सुपात्र को दान देने से सुखों की प्राप्ति होती है, अभयदान से दीर्घजीवन-लम्बा आयुष्य प्राप्त होता है और ज्ञानदान से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

इस मरुभूमि में ज्ञान का अमृत बहाने के लिए आप जो आयोजन कर रहे हैं वह दूसरों के लिए अनुकरणीय है। आज समाज में धार्मिक ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। धर्मज्ञान शासनोद्योत का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। यह पाठशाला आसपास के जिज्ञासुओं के लिए ज्ञान का सुन्दर केन्द्र बने यह वांछनीय है। संस्थाओं की स्थापना करना कठिन नहीं उन्हें सुचारुरूपेण चलाना कठिन होता है। आप में आज जो उत्साह है, वह स्थायी रहना चाहिए। संस्था के स्थायित्व के लिए पर्याप्त द्रव्यराशि तो अपेक्षित है ही उससे अधिक योग्य और लगन वाले कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है। काम का भार आ पड़ने पर कभी-कभी उत्साही कार्यकर्ता भी ऊब जाते हैं। आप अपने उत्साह को नित्य नवीन रक्खेंगे तो संस्था का भविष्य उज्ज्वल बनेगा।

व्यक्ति के जीवन का निर्माण उसके बाल्यकाल में होता है। इस काल में पड़े हुए संस्कार ही उसे भविष्य में संचालित करते हैं। यही नहीं सामाजिक जीवन को उच्च कोटि का बनाने के लिए भी बालकों को सुसंस्कारी बनाने की आवश्यकता है। अतएव इस पाठशाला में ज्ञानदान के साथ चरित्रनिर्माण एवं संस्कार सुधार की ओर भी ध्यान देना श्रेयस्कर होगा। सुसंस्कार और सदाचार से ही ज्ञान की शोभा है।

करने वाले मुख्य-मुख्य मुनिराजों का ऐसा संगम नहीं देखा था। इसके अतिरिक्त सम्मेलन के पीछे संगठन की जो भव्य दृष्टि थी उसका आकर्षण भी कम नहीं था। इस कारण भारत के कोने-कोने से हजारों श्रावक श्राविकाओं का आगमन हुआ था। यथा सीलोन और अमरीका तक से अनेक दर्शनार्थी आये थे। अजमेर के उत्साही श्रीसंघ ने अत्यन्त परिश्रम उत्साह और उमंग से सब की यथोचित व्यवस्था की थी।

सम्मेलन का कार्य जब सानन्द सम्पन्न हो गया तो मुनिराजों ने अपने अपने लक्ष्य के अनुसार अजमेर से विहार किया।

चरितनायकजी महाराज अजमेर से विहार कर ठाणा २ से पुष्कर पधारे। वहाँ सम्मेलन के निमित्त आगत अनेक मुनिराजों से पुनर्मिलन हुआ। पुष्कर से विहार कर आप मेड़ता पधारे। वहाँ पंजाब सम्प्रदाय के विद्वद्वर उपाध्याय श्रीआत्मारामजी म० (जो अब वर्द्धमान श्रमणसंघ के आचार्य पद पर सुशोभित हैं) तथा पूज्य श्रीहस्तीमलजी म० आदि मुनियों से मिलाप हुआ। मेड़ता के भाइयों में धर्मभावना उत्तम होने से व्याख्यान आदि का खूब ठाठ रहा। भाइयों और बहिनों ने धर्म की अच्छी आराधना की।

लौंकाशाह विद्यालय, मंवाल—

मेड़ता में मुनिराजों के विराजमान होने का समाचार सुनकर अनेक स्थानों के भाई चौमासे की प्रार्थना करने के लिए उपस्थित हुए। मंवाल के भाई भी आये। मंवाल मेड़ता के निकट एक छोटा ग्राम है। अनेक बड़े-बड़े क्षेत्रों के संघों की प्रार्थना करते देखकर मंवाल के भाई निराश-से हो गये और अपने पक्ष को प्रबल बनाने का उपाय सोचने लगे। उन्होंने विचार किया मुनिराजों को शहर की शान-शौकत से तो कोई प्रयोजन होता नहीं और उससे वे आकर्षित भी नहीं होते वे आकर्षित होते हैं धर्मप्रचार की संभावनाओं से। जहाँ धर्मप्रचार की अधिक संभावना होती है, उसी ओर वे विहार कर देते हैं। तो हमें कोई विशेष कार्य करने का निश्चय करना चाहिए, जिससे मुनिराज आकृष्ट होकर चौमासे की प्रार्थना स्वीकार कर लें। इस प्रकार सोच कर उन्होंने धार्मिक ज्ञान के प्रचार की एक योजना तैयार कर डाली।

तत्पश्चात् वे भाई चरितनायकजी की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने निवेदन किया—मंवाल में आपका चातुर्मास होने से ज्ञान का अच्छा प्रचार होगा। यों तो जहाँ मुनिवर विराजते हैं, वहाँ ज्ञानप्रचार होता ही है परन्तु हम आपके चातुर्मास की खुशी में एक विद्यालय की स्थापना करेंगे, जिससे स्थायी रूप से समाज का उपकार होगा। मंवाल में जैनों की गृहसंख्या अधिक नहीं, तथापि

जब आप पाली में विराजमान थे तभी ब्यावर से एक शिष्टमण्डल चातुर्मास की प्रार्थना के हेतु पाली आ पहुँचा। उसमें सेठ मिश्रीलालजी मुथा, कालूरामजी कोठारी पन्नालालजी कांकरिया आदि ब्यावर के अग्रगण्य श्रावक थे। उस समय ब्यावर में चातुर्मास की समस्या बड़ी जटिल थी क्योंकि संघ में एकता का अभाव था। वहाँ का संघ तीन भागों में विभक्त था। पहला स्थानक का अनुयायी दूसरा पूज्य श्रीजवाहरलालजी महाराज का और तीसरा पूज्य मुन्नालालजी म० का अनुयायी। स्थानक वालों में तथा पूज्य मुन्नालालजी म० के अनुयायियों में परस्पर सद्भाव था। चौमासे सबके अलग-अलग होते थे मगर इन दोनों वर्गों के आपसी समझौते के कारण बारी-बारी से एक चौमासा और एक व्याख्यान होता था। उस वर्ष कुछ ऐसी समस्यायें उत्पन्न हो गई कि जिनके कारण तीनों संघों का चौमासा करवाने का मार्ग रुक गया। अन्त में तीनों संघों की एक सम्मिलित समिति बनी और उसे चौमासा कराने का उत्तरदायित्व सौंपा गया।

समिति किसी ऐसे मुनिराज की खोज में थी जो मध्यस्थ होने के कारण सभी सम्प्रदायों के श्रद्धाभाजन हों और जो ब्यावरसंघ को सन्तुष्ट कर सकते हों। समिति की दृष्टि हमारे चरितनायकजी की ओर आकृष्ट हुई। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, आप में साम्प्रदायिक अभिनिवेश नाम मात्र को भी नहीं था। आपका हृदय बहुत उदार और विशाल था। यह जानकर ब्यावर-श्रीसंघ के मुख्य-मुख्य नेता आपकी सेवा में उपस्थित हुए।

किन्तु महाराज भी कम सौदेबाज नहीं थे। उन्होंने चौमासे की स्वीकृति देने से पहिले अपनी पूरी फीस चुका देने की स्वीकृति चाही। सन्तों की फीस रुपया पैसा नहीं धर्माराधना होती है। तब सेठ पन्नालालजी कांकरिया ने वायदा करते हुए कहा—गुरु महाराज चौमासे में धर्मध्यान करवाने का जिम्मा मैं लेता हूँ। आपको आपकी इच्छा के अनुरूप ही फीस मिल जायगी।

तब सन्तों ने परस्पर विचार-विनिमय करके चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान की। प्रतिनिधिमण्डल हर्ष के साथ ब्यावर लौटा। चरितनायकजी जैसे तत्त्वज्ञ मुनिराज का चातुर्मास निश्चित होने से ब्यावर संघ में हर्ष का वातावरण बन गया। उत्साह में वृद्धि हुई।

शेष काल पाली में व्यतीत कर आप जोधपुर पधारे। श्रीनारायणदासजी म० ठाणा २ का मिलाप हो गया। तत्पश्चात् मार्गवर्ती क्षेत्रों में जिनधर्म का उपदेश करते हुए आपने ब्यावर में पदार्पण किया।

ब्यावर में इस प्रकार का चातुर्मास प्रथम था। वहाँ पारस्परिक मनमुटाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। लोग ब्यावर को झगड़े की भौंजाई कहने

आप तत्परता से इस पुनीत अनुष्ठान में संलग्न हों और पाठशाला दिनों दिन विकसित और उपयोगी बनती जाय यही हमारी शुभ कामना है।

गुरुदेव के संक्षिप्त और सारगर्भित व्याख्यान से श्रोताओं को बड़ा हर्ष हुआ। उनके उत्साह में वृद्धि हुई। व्यापार के निमित्त बाहर रहने वाले बहुत-से भाई धर्मध्यान के लिए आ गये थे। बाहर से दर्शनार्थी भी आते रहते थे। इस कारण छोटे ग्राम में भी व्याख्यानभवन भर जाता था। खूब चहल-पहल रहती थी। अजैन भाइयों में भी गुरुदेव के प्रति काफी प्रेम था।

इस प्रकार आनन्द और सफलता के साथ यह चातुर्मास व्यतीत हुआ।

बयालीसवाँ चातुर्मास—

यह सुनिश्चित है कि कोई भी व्यक्ति जन्मजात महापुरुष नहीं होता। जब कोई मनुष्य अपना लक्ष्य स्थिर करके, दृढ संकल्प और आत्मश्रद्धा के साथ *कर्त्तव्य के क्षेत्र में अग्रसर होता है* और *मार्ग में* आने वाली बाधाओं को नगण्य मानकर निरुत्साह नहीं होता और दुगुने उत्साह के साथ उन पर विजय प्राप्त करता हुआ आगे से आगे बढ़ता जाता है और इस प्रकार किसी महान् कार्य में सफलता प्राप्त कर लेता है, तभी लोग उसे महान् पुरुष की संज्ञा प्रदान करते हैं। जगत् में जो महान् पुरुष कहलाए हैं, उनके जीवनरहस्य का भलीभाँति निरीक्षण किया जाय तो यह सत्य सूर्य के समान चमकने लगेगा। भगवान् महावीर ने दीर्घकाल तक रोमांचकारी कष्ट सहन करके भी अपनी संयमयात्रा निराबाध जारी रक्खी तो वे हमारे उपास्य बन गये। गांधीजी के महापुरुष होने का भी यही रहस्य है कि वे कदापि कष्टों और विघ्नों से हतोत्साह नहीं हुए और अपने कार्यक्षेत्र में मजबूती के साथ आगे ही बढ़ते चले गये। वास्तव में कार्य ही मानव को महत्ता प्रदान करता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम को महान् बनाने वाला उनका स्वेच्छास्वीकृत वनवास था।

हमारे चरितनायकजी एक साधारण परिवार में जन्मे थे और किसी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय के स्नातक नहीं थे तथापि असाधारण कर्त्तव्य निष्ठा के बल पर ही उन्होंने इतना बड़ा विकास किया था। चारित्रबल और आत्मविश्वास उनके सहायक थे। इसी कारण आपका जीवन बढ़वृक्ष की तरह विकसित होता चला जा रहा था।

आप शासनोत्थान का विजयपताका फहराते हुए देवदूत की तरह ग्रामानुग्राम विचरण कर रहे थे। चातुर्मास के पश्चात् आप पीपाड़ पधारे और फिर समदड़ी सिवाना होते हुए पाली पधारे। सर्वत्र धर्मध्यान का खूब ठाठ रहा।

आचार्य आदि ज्येष्ठ मुनि का आदेश प्राप्त होने पर विहार करने की अनुमति दी गई है। (देखो ठाणांग ५, उ० २, सूत्र ४१२)

चरितनायकजी महाराज के सामने ऐसा ही प्रसंग उपस्थित हो गया। श्रीदयालचन्द्रजी म० उस वर्ष समदड़ी में चातुर्मास में विराजमान थे। वह स्थविर और वयोवृद्ध सन्त थे। अचानक ही व्याधिग्रस्त हो गये। संथारा ग्रहण करने की स्थिति आ गई। सेवा के लिए मुनियों की आवश्यकता पड़ी। तब ब्यावर तार पहुँचा और पत्र भी पहुँचे। चरितनायकजी स्वभावतः सेवाप्रिय तो थे ही तिस पर इस समय तो बड़े गुरुभ्राता मुनि का आदेश भी था और पत्र भी था और उस आदेश को टालना न व्यावहारिक दृष्टि से उचित था और न शास्त्रीय दृष्टि से ही। उस समय गुरुदेव ने स्थानांगसूत्र की उल्लिखित आज्ञा का सामने रख कर और 'उत्सर्गोऽपवादोऽपवादो विधिर्बलीयान्" अर्थात् उत्सर्गविधि और अपवादविधि में से अपवादविधि ही अधिक बलवान होती है और उसी का अवलम्बन करना शास्त्रप्रतिपादित मार्ग है, ऐसा विचार करके संघ से विहार करने की अनुमति माँगी।

ब्यावर-संघ भी असमंजस में पड़ गया। खूब आनन्द के साथ धर्मध्यान हो रहा था उपदेशामृत की वर्षा हो रही थी इस दुर्लभ लाभ को त्याग देने में कठिनाई थी। किन्तु विचारशील श्रावक सदैव मुनियों के चारित्रपालन में सहायक होते हैं और अनुराग के वश होकर मुनियों से कोई आगमविपरीत कार्य नहीं करवाना चाहते। चरितनायकजी को रोकना उनसे आगमविरुद्ध कार्य करवाना होता अतएव ब्यावर के विवेकी श्रावकों ने अनमने भाव से विहार करने की अनुमति प्रदान की।

गुरुदेव ने कार्तिक के कृष्णपक्ष में विहार किया। इस अकाल-विहार के समय ब्यावरवासी धर्मलाभ से वंचित हो जाने के कारण अत्यन्त खिन्न हुए। बहुतों ने प्रेम के आंसू बहाये। जो लोग संघ की एकता के विशेष प्रेमी थे उन महानुभावों को खास तौर से बहुत चोट पहुँची। मगर हृदय के एक कोने में वे सन्तोष का अनुभव भी कर रहे थे कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु गुरुदेव का चातुर्मास कराया था वह पूरी तरह सफल हुआ। संघ की छिन्नभिन्न दशा में पर्याप्त सुधार हो गया और सब लोग एक जगह बैठ कर धर्मध्यान करने लगे।

गुरुदेव विहार करके समदड़ी पधारे तो शीघ्रतापूर्वक विहार करने पर भी चौमासा समाप्त हो चुका था। किन्तु सौभाग्य से स्वामीजी महाराज की तबियत सुधार पर थी। आपने पहुँच कर जी-जान से सेवा की और स्वामीजी थोड़े दिन बाद पूर्ण स्वस्थ हो गये। आपको चातुर्मास में विहार करने पर पश्चात्ताप था सो

लगे थे। इसी दुरवस्था को दूर करने के लिए चातुर्मास की यह नवीन योजना की गई थी। चरितनायकजी जब पधारे तो ब्यावर में अनूठा ही दृश्य दिखलाई दिया। पहले भी सन्त आया करते थे परन्तु अपने अपने सम्प्रदाय के अनुयायी ही उनका स्वागत करते थे, दूसरों को मानो कुछ लेना-देना नहीं था। किन्तु इस बार सकल स्थानकवासी संघ ने मिलकर सन्तों की गहरी श्रद्धा और भक्ति के साथ अगवानी की। हजारों की संख्या में नर-नारियों ने जय-जयकार के निनादों से नगर के बाजार को गुंजा दिया। अपूर्व हर्ष और उत्साह फैल गया। चार मुनिराज आगे-आगे चल रहे थे, जैसे चार घातिया कर्मों को अथवा चार कषायों को जीतने के लिए चार सूरमा विजयप्रस्थान कर रहे हों। ऐसा प्रतिभास होता था मानो सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र और तप की चार सजीव मूर्त्तियाँ हैं और उनके पीछे-पीछे मुमुक्षु जनों का विराट् समूह चल रहा है। सब के पीछे-पीछे महिलाएँ मंगलगीत गाती हुई चली आ रही थीं। उस समय चतुर्विध संघ उस चतुरंगिणी सेना के समान जान पड़ता था जिसने मुक्ति के साम्राज्य को प्राप्त करने के लिए कूच किया हो। जो भाई स्वधर्मी को भी प्रेमाभाव के कारण विधर्मी समझते थे और कभी प्रसन्नतापूर्वक वार्त्तालाप भी न करते थे व आपस में बिछुड़े भाई भी उस समय एक हो गये। मुनिराजों की अनिर्वचनीय पावनता ने उनके हृदय के मैल को धो दिया। लोग कहने लगे—यह मुनि बड़े प्रभावशाली हैं और इन्होंने बहुत शुभ मुहूर्त में प्रवेश किया है; अन्यथा टूटे हुए दिल क्या यों मिल सकते थे ?

इस प्रकार यह सं० १९९१ का चौमासा ब्यावर में हुआ। वहाँ के पीपलिया बाजार में स्थित जैन स्थानक में आप विराजे। तीनों वर्गों के श्रावक-श्राविकाओं ने व्याख्यान से लाभ उठाया। उस समय सामायिक, पौषध तथा दया आदि करने का रिवाज ज्यादा था। यह सब खूब हुआ। ५००-७०० व्यक्तियों ने एक साथ दया की। चरितनायकजी के प्रभावशाली प्रवचनों ने श्रोताओं के हृदय द्रवित कर दिये। सेठ भिमीमलजी मुणोत कालूरामजी कोठारी आदि सेवाभावी श्रावकों ने भक्तिभाव से सेवा की।

शीघ्र विहार—

संसार के समस्त ज्ञानी पुरुष दो मार्ग विधान करते हैं, उत्सर्गमार्ग और अपवादमार्ग। जैन शास्त्रों में भी इन दोनों मार्गों का विधान है। जैन मुनियों के लिए चातुर्मास में विहार न करना और एक ही स्थान में निवास करना उत्सर्ग मार्ग है, जिसे सामान्य विधान भी कहते हैं। किन्तु विशेष कारण उपस्थित होने पर चातुर्मास में भी विहार करना अपवादमार्ग है। दोनों मार्ग शास्त्रप्रतिपादित हैं।

श्री स्थानांग सूत्र में वर्षावास में भी विहार करने के पाँच कारण बतलाये हैं जिनमें आचार्य उपाध्याय आदि किसी मुनिराज की सेवा (वैयावृत्य) के लिए

थे। अतः ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आप ब्यावर पधारे। बहुत सुन्दर स्वागत हुआ। अपने सद्गुणों के कारण व्यक्ति जनता के हृदय में स्थान पाता है।

तीनों वर्गों के श्रावकों के साथ आपका समान धर्मस्नेह था जिससे सभी लोग बिना हिचकिचाहट समान रूप से आपकी सेवा में आते थे। बहुत बार ऐसा होता है कि जो किसी एक का नहीं होता, वह किसी का नहीं होता परन्तु गुरुदेव एक के न होने के कारण सभी के थे। यह आपके प्रबल प्रभावशाली और आकर्षक व्यक्तित्व का और उच्चकोटि के ज्ञान-चारित्र का प्रभाव था।

ब्यावर श्रीसंघ ने आपकी सेवा का खूब लाभ उठाया। कुछ दिन विराजने से जनता में एकता की भावना कुछ और प्रबल बनी। तत्पश्चात् आप आसपास के क्षेत्रों में धर्मप्रचार करके श्रीपुष्कर मुनिजी महाराज को अभ्यराज की परीक्षा दिलवाने के निमित्त पुनः ब्यावर पधार गये। परीक्षा समाप्त होते ही आप विहार करके, मेवाड़ प्रांत में होते हुए मालवा की तरफ पधारे। नीमच आदि क्षेत्रों में वीतराग देव का संदेश सुनाते हुए मंदसौर पधारे।

बहुत वर्षों बाद आपका मालवा प्रदेश में पदार्पण हुआ था। पहले वि० सं० १६५५ में पं० मुनि श्रीनेमिचन्द्रजी म० के साथ पधारे थे। छह वर्ष के दीक्षित थे। तब से अब तक कितने युग बीत चुके थे। चार दशाब्दियाँ होने आई थीं। गुरुदेव में भी कितना अन्तर आ गया था।

इस बार जनता ने जो आपकी वाणी सुनी तो मंत्रमुग्ध हो गई। प्रतिदिन व्याख्यान में श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी। दया-पौषध आदि के विषय में उपदेश सुनकर मुण्ड के मुण्ड भाई-बहिन तैयार हो गये।

कुछ दिन मन्दसौर विराज कर आप जावरा पधारे और जावरा से रतलाम। सभी जगह धर्म का अच्छा उद्योत हुआ। रतलाम में लीमड़ी (पंचमहाल) श्रीसंघ की ओर से चौमासे की प्रार्थना लेकर शिष्टमण्डल उपस्थित हुआ। उसकी आग्रहपूर्ण प्रार्थना को स्वीकार करके आपने लीमड़ी की ओर विहार कर दिया। मार्ग में पेटलावद थांदला भाबुआ और दोहद आदि छोटे-बड़े स्थानों में धर्म-जागरण करते हुए आप लीमड़ी पधार गये। इस प्रकार वि० सं० १६६२ का चौमासा लीमड़ी में हुआ।

इस प्रदेश की यह परम्परा है कि आसपास के गाँवों के तपस्या करने वाले श्रावक और श्राविकाएँ मुनियों की सेवा में चले आते हैं और प्रभावना बाँटते हैं। इस परम्परा का लीमड़ी में भी पालन किया गया और खूब ही धर्मध्यान हुआ। आपके सदुपदेशों से अच्छी जागृति आई और धार्मिक पाठशाला की स्थापना हुई। पर्युषण पर्वराज के अवसर पर पाठशाला के निमित्त अच्छी

सेवा का लाभ प्राप्त होने और उसके सफल हो जाने का सन्तोष भी था। आपका सराहनीय सेवाभाव देख कर श्रीसंघ में और अधिक भक्तिभाव की वृद्धि हुई। कुछ दिन वहाँ विराजने के बाद स्वामीजी की आज्ञा होने पर आपने समदड़ी से विहार कर दिया।

तयालीसवाँ चातुर्मास—

समता सर्वभूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम्।

—मनुस्मृति

धर्म का वास कहाँ है ? बहिर्दृष्टि समझते हैं कि अमुक वेष में ही धर्म का निवास है। किन्तु वास्तव में धर्म किसी वेषभूषा में, किसी जाति या कुल में पंथ या परम्परा में नहीं किन्तु समताभाव में है। जिसके चित्त में जगत् के प्राणी मात्र के प्रति समत्वबुद्धि जागृत हो चुकी है, जिसका आत्मभाव विराट् बन कर विश्वव्यापी रूप धारण कर चुका है या जिसका 'अहम्' व्यक्ति के संकीर्ण दायरे से निकल कर प्रत्येक प्राणी में समा गया है, वही धर्मात्मा है और उसने धर्म की सच्ची आराधना की है। जिसके जीवन में वास्तविक धर्म की प्रतिष्ठा हो चुकी है, साम्प्रदायिक अभिनिवेश उसके समीप भी नहीं फटक सकता। यह सत्य है कि प्रत्येक साधक को किसी न किसी पन्थ या सम्प्रदाय का आश्रय लेना पड़ता है, अन्यथा कटे हुए पतंग की तरह उसे इतस्ततः भटकते ही रहना पड़ता है किन्तु सम्प्रदाय का अवलम्बन साधना में सहायता सुविधा पाने के लिए होना चाहिए कीचड़ में फँसने के लिए नहीं। जब सम्प्रदाय पक्षपात राग, द्वेष संकीर्णता और वैमनस्य का कारण बन जाता है तो वह दलदल है, और साधक के लिए बाधक है।

गुरुदेव ने इस तथ्य का बड़ा गहन मनन किया था और इसी कारण सम्प्रदाय उनके आत्मविकास का कारण था। साम्प्रदायिक संकीर्णता से वे कोसों दूर रहते थे। ब्यावर चातुर्मास की सफलता का भी यही मूल रहस्य था। आपने ब्यावर में रह कर जनता को धर्म का वास्तविक स्वरूप समझाया था।

जैनधर्म अखाड़ों का पोषक नहीं। वह सर्वव्यापी सत्य का निदर्शक है। मगर समय के प्रभाव से संघ में विघटन होता गया और सम्प्रदायों के अखाड़े तैयार हो गये। जैनधर्म उन घेरों में बन्द हो गया। नतीजा यह हुआ कि लोग धर्म की आत्मा को भूल गये और सम्प्रदायों के ढाँचों से चिपट गये। गुरुदेव इस अनिष्ट परिस्थिति को दूर करने के लिए जीवन पर्यन्त जूझते रहे।

आपने समदड़ी से विहार किया तो पुनः ब्यावर का मार्ग पकड़ा। ऐसा करने के दो कारण थे। प्रथम तो आप यह देखना चाहते थे कि पूर्वकृत धर्म प्रचार स्थिर है अथवा नहीं ? दूसरे उधर के श्रावकों के आग्रहपूर्ण पत्र आप आते

मेवाड़ निवासी भाइयों की दुकानें भाती हैं। उन्होंने तन-मन से सेवा बजाई। पचास-पचास और कभी सौ-सौ भाई विहार में साथ रहे। उस समय उस प्रान्त में जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई।

बम्बई में—

चरितनायकजी जब बम्बई के उपनगरों में पधारे तो वहाँ एक नये प्रकार की हलचल मची हुई थी। सत्याग्रही मुनि श्रीमिश्रीमलजी म० ने स्थानकवासी समाज के अन्तर्गत दो सम्प्रदायों में जो पूज्य मुन्नालालजी और पूज्य जवाहरलालजी म० के सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध थे एकता कराने के लिए अनशन-सत्याग्रह छेड़ रक्खा था। पहलेपहल उन्होंने सेठ वेलजी लखमसी नप्पु के बंगले के बाहर सत्याग्रह किया, फिर दूसरी जगह। कुछ मारवाड़ी भाई उनके समर्थक थे। आपके पधारने पर गुजराती-काठियावाड़ी भाइयों को आशंका हुई कि कहीं आप भी उनका समर्थन न करने लगें। कांदावाड़ी-संघ के प्रमुख व्यक्तियों ने जब आपकी सेवा में उपस्थित हो कर इस संबंध में वार्तालाप किया तो उन्हें पता लगा कि आप इस प्रकार की भूख हड़ताल के पक्ष में नहीं हैं।

बम्बई-संघ ने अच्छी सेवा-भक्ति की। विलेपार्ले माटुंगा चिंचपोकली, कांदावाड़ी घाटकोपर आदि उपनगरों में विराजे। मारवाड़ी और मेवाड़ी भाइयों ने खूब लाभ उठाया खूब सेवा की।

जब आपश्री कांदावाड़ी (बम्बई) में विराजमान थे तभी नासिक-श्रीसंघ की ओर से एक शिष्टमंडल चौमासे की प्रार्थना करने आया। क्षेत्र-काल आदि का विचार करके आपने स्वीकृति प्रदान की। यथासमय इगतपुरी, घोटी हो कर आप नासिक पधार गये। इस प्रकार गुजरात से महाराष्ट्र में आपका पदार्पण हो गया। वि० सं० १९९३ का चौमासा नासिक शहर में हुआ।

महाराष्ट्र में आपका यह प्रथम पदार्पण था। यहाँ की आम जनता की भाषा मराठी है और आपकी भाषा हिन्दी या राजस्थानी थी। प्रारम्भ में कुछ लोगों को बड़ी आशंका थी कि यहाँ की जनता मुनिराजों की भाषा नहीं समझ सकेगी तो व्याख्यान का प्रभाव कैसे पड़ेगा? मगर आपने जब अपनी ओजस्वी वाणी में भावपूर्ण प्रवचन प्रारम्भ किये तो लोग प्रभावित होने लगे और श्रोताओं की संख्या दिन-दिन बढ़ने लगी। स्थानक का विशाल प्रकोष्ठ ठसाठस भर जाता। नासिक की जनता आपके प्रवचनों से ऐसी प्रभावित हुई कि उसने अभयदान विद्यादान और स्वधर्मी-सहायता के लिए भी व्यवस्था की।

शब्दशास्त्र के अनुसार एक-एक शब्द में जगत् के सभी पदार्थों का वाचक होने की शक्ति विद्यमान है, किन्तु जिस प्रांत में जो शब्द जिस अर्थ में संकलित-

द्रव्यराशि इकट्ठी हो गई। इस प्रकार ज्ञान और चारित्र दानों दृष्टियों से चौमासा बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

चवालीसवाँ चातुर्मास—

गुरुदेव इस समय मालवा और गुजरात के संमिस्थल में थे। गुजरात आपके लिए नवीन प्रांत था अतएव उसी ओर विहार किया। लीमड़ी से गोधरा और बड़ौदा होते हुए पेटलाद पधारे। वहाँ श्रीपुष्कर मुनिजी म० ने न्यायप्रथमा और संस्कृत साहित्य की मध्यमा परीक्षा दी। तत्पश्चात् खंभात पधारने पर दरयापुरी-सम्प्रदाय के पूज्य श्रीमोहनलालजी महाराज से मिलाप हुआ। मारवाड़ी और गुजराती सन्तों की कतिपय परम्पराओं में भिन्नता है। उनके विषय में लम्बी चर्चा चली, विचारों का आदान-प्रदान हुआ। यह समागम बड़ा आनन्दप्रद रहा।

कुछ दिन खंभात विराजने के अनन्तर बम्बई की ओर विहार किया। रास्ते में एक मुस्लिम गाँव मिला। संध्या का समय हो जाने के कारण विहार नहीं किया जा सकता था और रातवासे के लिए कोई मकान नहीं देता था। आखिर एक मुसलमान ने हाथ से इशारा करके कहा—आप उस बंगले में ठहर जाइए, मैं इजाजत देता हूँ। सन्त उस बंगले में चले गये। प्रतिक्रमण और स्वाध्याय से निवृत्त होने के पश्चात् यथासमय सो गये। जब सन्त निद्रा में थे तो पास में सोया हुआ व्यक्ति अचानक चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। चरितनायकजी ने उठ कर जब कारण जानना चाहा तो उसने कहा—'महाराज, कोई मुझे डराता है, धमकाता है और मार डालने की चेष्टा करता है।'

आपने उसे आश्वासन दिया और माला फेरते-फेरते वह रात्रि व्यतीत की। प्रभातकालीन आवश्यक कृत्य समाप्त होने पर विहार किया और मकान की आज्ञा देने वाले के पास मकान सँभलाने के लिए पधारे। आपको देखकर उस मुसलमान को विस्मय हुआ। सहसा उसके मुँह से निकला—ऐं, क्या आप जिन्दा बच गये?

गुरुदेव ने कहा—हाँ तुम देख ही रहे हो। हम लोग जा रहे हैं आगे किसी को उस बंगले में मत ठहराना।

उसने कहा—हाँ खतरे वाला बंगला है। इसी से मैंने उसे बता दिया है। आप तो धर्मात्मा महात्मा हैं। ख्याल यह है कि उसमें कोई जिन्न रहता है।

चरितनायकजी वहाँ से सकुशल विहार करके सूरत पहुँचे तो संघ ने भक्तिभावपूर्वक हार्दिक स्वागत किया। होली-चातुमास वहाँ व्यतीत करके आगे विहार किया। घोलवड़ देहू बन्दर, पालघर आदि होते हुए बम्बई पधारे। मार्ग में

मवाड़ निवासी भाइयों की दुकानें आती हैं। उन्होंने तन-मन से सेवा बजाई। पचास-पचास और कभी सौ-सौ भाई विहार में साथ रहे। उस समय उस प्रान्त में जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई।

बम्बई में—

चरितनायकजी जब बम्बई के उपनगरों में पधारे तो वहाँ एक नये प्रकार की हलचल मची हुई थी। सत्याग्रही मुनि श्रीमिश्रीमलजी म० ने स्थानकवासी समाज के अन्तर्गत दो सम्प्रदायों में, जो पूज्य मुन्नालालजी और पूज्य जवाहरलालजी म० के सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध थे, एकता कराने के लिए अनशन-सत्याग्रह छेड़ रक्खा था। पहलेपहल उन्होंने सेठ वेलजी लखमसी नप्पु के बंगले के बाहर सत्याग्रह किया, फिर दूसरी जगह। कुछ मारवाड़ी भाई उनके समर्थक थे। आपके पधारने पर गुजराती-काठियावाड़ी भाइयों को आशंका हुई कि कहीं आप भी उनका समर्थन न करने लगें। कांदावाड़ी-संघ के प्रमुख व्यक्तियों ने जब आपकी सेवा में उपस्थित हो कर इस संबंध में वार्तालाप किया तो उन्हें पता लगा कि आप इस प्रकार की भूख हड़ताल के पक्ष में नहीं हैं।

बम्बई-संघ ने अच्छी सेवा-भक्ति की। विलेपार्ले माटुंगा चिंचपोकली कांदावाड़ी घाटकोपर आदि उपनगरों में विराजे। मारवाड़ी और मेवाड़ी भाइयों ने खूब लाभ उठाया खूब सेवा की।

जब आपश्री कांदावाड़ी (बम्बई) में विराजमान थे तभी नासिक-श्रीसंघ की ओर से एक शिष्टमंडल चौमासे की प्रार्थना करने आया। देश-काल आदि का विचार करके आपने स्वीकृति प्रदान की। यथासमय इगतपुरी घोटी, हो कर आप नासिक पधार गये। इस प्रकार गुजरात से महाराष्ट्र में आपका पदार्पण हो गया। वि० सं० १९९३ का चौमासा नासिक शहर में हुआ।

महाराष्ट्र में आपका यह प्रथम पदार्पण था। यहाँ की आम जनता की भाषा मराठी है और आपकी भाषा हिन्दी या राजस्थानी थी। प्रारम्भ में कुछ लोगों को बड़ी आशंका थी कि यहाँ की जनता मुनिराजों की भाषा नहीं समझ सकेगी तो व्याख्यान का प्रभाव कैसे पड़ेगा? मगर आपने जब अपनी ओजस्वी वाणी में भावपूर्ण प्रवचन प्रारम्भ किये तो लोग प्रभावित होने लगे और श्रोताओं की संख्या दिन-दिन बढ़ने लगी। स्थानक का विशाल प्रकोष्ठ खचाखच भर जाता। नासिक की जनता आपके प्रवचनों से ऐसी प्रभावित हुई कि उसने अभयदान विद्यादान और स्वधर्मी-सहायता के लिए भी व्यवस्था की।

शब्दशास्त्र के अनुसार एक-एक शब्द में जगत् के सभी पदार्थों का वाचक होने की शक्ति विद्यमान है, किन्तु जिस प्रांत में जो शब्द जिस अर्थ में संकेतित-

द्रव्यराशि इकट्ठी हो गई। इस प्रकार ज्ञान और चारित्र दोनों दृष्टियों से चौमासा बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

पचालीसवाँ चातुर्मास—

गुरुदेव इस समय मालवा और गुजरात के संधिस्थल में थे। गुजरात आपके लिए नवीन प्रांत था, अतएव उसी ओर विहार किया। दौमकी से गोधरा और बड़ोदा होते हुए पेटलाद पधारे। वहाँ श्रीपुष्कर मुनिजी म० ने न्यायप्रथमा और संस्कृत साहित्य की मध्यमा परीक्षा दी। तत्पश्चात् खंभात पधारने पर दरियापुरी-सम्प्रदाय के पूज्य श्रीमोहनलालजी महाराज से मिलाप हुआ। मारवाड़ी और गुजराती सन्तों की कतिपय परम्पराओं में भिन्नता है। उनके विषय में लम्बी चर्चा चली, विचारों का आदान-प्रदान हुआ। यह समागम बड़ा आनन्दप्रद रहा।

कुछ दिन खंभात विराजने के अनन्तर बम्बई की ओर विहार किया। रास्ते में एक मुस्लिम गाँव मिला। संध्या का समय हो जाने के कारण विहार नहीं किया जा सकता था और रातवासे के लिए कोई मकान नहीं देता था। आखिर एक मुसलमान ने हाथ से इशारा करके कहा—आप उस बंगले में ठहर जाइए, मैं इजाजत देता हूँ। सन्त उस बंगले में चले गये। प्रतिक्रमण और स्वाध्याय से निवृत्त होने के पश्चात् यथासमय सो गये। जब सन्त निद्रा में थे तो पास में सोया हुआ व्यक्ति अचानक चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। चारित्रनायकजी ने उठ कर जब कारण जानना चाहा तो उसने कहा—'महाराज, कोई मुझे डराता है, धमकाता है और मार डालने की चेष्टा करता है।

आपने उसे आश्वासन दिया और माला फेरते-फेरते वह रात्रि व्यतीत की। प्रभातकालीन आवश्यक कृत्य समाप्त होने पर विहार किया और मकान की आज्ञा देने वाले के पास मकान सँभलाने के लिए पधारे। आपको देखकर उस मुसलमान को विस्मय हुआ। सहसा उसके मुँह से निकला—ऐं, क्या आप जिन्दा बच गये ?

गुरुदेव ने कहा—हाँ तुम देख ही रहे हो। हम लोग जा रहे हैं, आगे किसी को उस बंगले में मत ठहराना।

उसने कहा—हाँ उतरे वाला बंगला है। इसी से मैंने उसे छोड़ दिया है। आप तो धर्मात्मा महात्मा हैं। ख्याल यह है कि उसमें कोई जिन्न रहता है।

चारित्रनायकजी वहाँ से सकुशल विहार करके सूरत पहुँचे तो संघ ने भक्तिभावपूर्वक हार्दिक स्वागत किया। होली-चातुर्मास वहाँ व्यतीत करके आगे विहार किया। पोसवाड़ वेलू बन्दर, पालघर आदि होते हुए बम्बई पधारे। मार्ग में

साधन समझ कर वे समभाव से सहन कर लेते हैं। मगर ऐसे अवसर क्वचित् क्वाचित् ही आते हैं, सर्वत्र सुलभ नहीं। जैन मुनियों की भिक्षा ऐसी सीधी-सादी होती है कि गृहस्थ तनिक भी बोझ अनुभव नहीं करता।

चरित्रनायक नासिक से विहार करके पूना की ओर पधारे तो मार्ग में अनेक बार भिक्षा संबंधी कठिनाइयाँ आईं। कहीं-कहीं भक्तिभाव भी प्रचुर देखा गया। आप पायर्डी घाटी मनचर, नारायणगांव होते हुए पूना पधारे। आपके विद्या विनोदी सुशिष्य श्रीपुष्करमुनिजी म० ने संस्कृत साहित्य की परीक्षा दी।

पूना दक्षिण भारत में विद्या का बड़ा केन्द्र है। वहाँ २०० घर स्थानकवासियों के हैं, जिनमें प्राय: मारवाड़ी ही अधिक हैं।

पूना से घोड़नदी हो कर अहमदनगर पधारे तो संघ ने हार्दिक भक्तिभाव प्रदर्शित किया। अहमदनगर दक्षिण में स्थानकवासियों का सब से अधिक आबादी वाला नगर है और वहाँ के कई श्रावक सिद्धान्त के वेत्ता और विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावशाली कार्यकर्त्ता हैं। आपका छोटी-चातुर्मास वहीं हुआ। व्याख्यानों में अच्छी उपस्थिति होती रही।

अहमदनगर से विहार करके राहोरी पधारे तो वहाँ महासती श्रीराजकुँवरजी विदुषी महासती श्री पन्नाकुँवरजी आदि विराजमान थीं। सब ने आपके दर्शन किये। वहाँ से चल कर मनमाड़ पधारे।

मनमाड़ पधारने पर गुरुदेव बड़े असमंजस में पड़ गये। औरंगाबाद जालना, अहमदनगर और माइली के श्रावक चातुर्मास की प्रार्थना करने आये। पाँचवाँ मनमाड़-संघ तो था ही! दयालुहृदय गुरुदेव किसकी प्रार्थना स्वीकार करें और किसकी नहीं यही बड़ा असमंजस था। सभी का प्रबल आग्रह था और सभी क्षेत्र बड़े और चौमासे के लिए उपयुक्त भी थे। गुरुदेव सोचते थे—एक जगह के लिए स्वीकृति देने पर चार जगह के भाइयों के लिए मनमाड़ मन-मार सिद्ध हो जायगा उनका मन मारा जायगा। तब आपने एक अनूठी विधि निकाली। श्रावकों से कहा—आप लोग इस मिनिट तक णमोकार का ध्यान कीजिए, तब तक मैं उत्तर ले आता हूँ। यह कहकर आप भीतर पधारे। पाँचों क्षेत्रों के पाँच कागज के टुकड़ों पर नाम लिखे और उनकी पुड़िया बना ली। *फिर बाहर आकर सब पुड़ियाँ श्रावकों के सामने रख दीं और कह दिया—मेरे* लिए सभी क्षेत्र समान हैं किन्तु एक साथ सब जगह चौमासा करना असंभव है। अतएव जिस क्षेत्र का नाम पहले खुलेगा वहीं सुखेसमाधे चौमासा करेंगे।

अबोध बालक ने पुड़िया उठाई और मनमाड़ का नाम खुल गया। इस विधि से किसी का मनमुटाव नहीं हुए और मनमाड़ चातुर्मास निश्चित हो गया।

त्न हो जाता है वह अर्थ उससे ध्वनित होने लगता है। यही कारण है कि एक शब्द का एक प्रांत में जो अर्थ होता है, दूसरे प्रान्त में उससे भिन्न अर्थ समझा जाता है। कभी कभी ऐसे अनेकार्थक शब्द बड़े मनोरंजक सिद्ध होते हैं। नासिक में एक बार ऐसी ही घटना घट गई।

गुरुदेव पाट पर आसीन थे। कितने ही भाई और बहिनें ज्ञानचर्चा के लिए मध्याह्न में स्थानक में आये थे। रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही थी। इस वातावरण को लक्ष्य करके गुरुदेव ने बहिनों से कहा—बहिनो, छींटे पड़ रहे हैं, कुछ काम-काज ज्यादा न होगा। चाहो तो तुम भी कुछ पूछ लो। मैं भी नवरा हूँ और तुम भी नवरी हो।

राजस्थानी भाषा में नवरा का अर्थ है—निठल्ला अवकाश या फुर्सत वाला। इसी अभिप्राय से गुरुदेव ने इस शब्द का प्रयोग किया था। मगर नवरा और नवरी शब्द सुनकर बाइयाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं। गुरुदेव इस असामयिक हँसी का रहस्य न समझ सके। तब उन्होंने हँसी का कारण पूछा। मगर शर्म के कारण किसी ने उत्तर नहीं दिया। आखिर एक मारवाड़ी बुढ़िया जो महाराष्ट्री भाषा भी जानती थी, खड़ी हुई और उसने बतलाया—गुरु महाराज, इस देश में नवरा और नवरी वर-वधू को कहते हैं।

गुरुदेव ने इस पर खेद प्रकट किया और सबसे क्षमायाचना की। बहिनों ने कहा—नहीं-नहीं महाराज आपकी कोई भूल नहीं, यह तो देश-देश की भाषा है। हँसने से आपकी असातना हुई, उसके लिए आप क्षमा प्रदान करें।

चौमासे में बहुत आनन्द रहा। भाई-बहिनों ने खूब त्याग-प्रत्याख्यान किया, सेवा-भक्ति की। चातुर्मास के बाद आपके विहार के समय बाजारों में नर-नारियों के झुँड के झुँड दिखाई देते थे।

पैंतालीसवाँ चातुर्मास—

जैन मुनि किसी भी सवारी का उपयोग नहीं करते पात्राथ नहीं रखते और मार्ग में अढ़ाई कोस से आगे भोजन-पानी नहीं ले जाते। स्वतन्त्र पक्षी की तरह देश के कोने-कोने में जा पहुँचते हैं। आत्मकल्याण और धर्मप्रचार ही उनके जीवन का एक मात्र पवित्र ध्येय होता है। चलते-चलते जहाँ अवसर देखा वहीं रुक जाते हैं और जैन-जैनेतर गृहस्थों के घरों से भिक्षा ले आते हैं। गृहस्थ के घर में उसके अपने लिए जो भोजन बनता है, उसमें से जो प्राप्त हो ले आते हैं। उनके लिए किसी प्रकार की तैयारी नहीं की जाती; क्योंकि वे न आमन्त्रण स्वीकार करते हैं और न पहले सूचना देकर आते हैं। कभी-कभी अपरिचित घरों में पहुँच जाने पर तिरस्कार का प्रसाद भी प्राप्त होता है, किन्तु उसे निर्जरा का

साधन समझ कर वे समभाव से सहन कर लेते हैं। मगर ऐसे अवसर क्वचित् कदाचित् ही आते हैं, सर्वत्र सर्वदा नहीं। जैन मुनियों की भिक्षा ऐसी सीधी-सादी होती है कि गृहस्थ तनिक भी बोझ अनुभव नहीं करता।

चरितनायक नासिक से विहार करके पूना की ओर पधारे तो मार्ग में अनेक बार भिक्षा संबंधी कठिनाइयाँ आईं। कहीं-कहीं भक्तिभाव भी प्रचुर देखा गया। आप पावर्डी, घोटी मनचर नारायणगाँव होते हुए पूना पधारे। आपके शिष्य विनोदी सुशिष्य श्रीपुष्करमुनिजी म० ने संस्कृत साहित्य की परीक्षा दी।

पूना दक्षिण भारत में शिक्षा का बड़ा केन्द्र है। वहाँ ३०० घर स्थानकवासियों के हैं, जिनमें प्रायः मारवाड़ी ही अधिक हैं।

पूना से घोड़नदी हो कर अहमदनगर पधारे तो संघ ने हार्दिक भक्तिभाव प्रदर्शित किया। अहमदनगर दक्षिण में स्थानकवासियों का सब से अधिक आबादी वाला नगर है और वहाँ के कई श्रावक सिद्धान्त के वेत्ता और विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावशाली कार्यकर्त्ता हैं। आपका दोसी-चातुर्मास वहीं हुआ। व्याख्यानों में अच्छी उपस्थिति होती रही।

अहमदनगर से विहार करके राहोरी पधारे तो वहाँ महासती मीराकुँवरजी विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकुँवरजी आदि विराजमान थीं। सब ने आपके दर्शन किये। वहाँ से चल कर मनमाड़ पधारे।

मनमाड़ पधारने पर गुरुदेव बड़े असमंजस में पड़ गये। औरंगाबाद जालना, अहमदनगर और घोड़नदी के श्रावक चातुर्मास की प्रार्थना करने आये। पाँचवाँ मनमाड़-संघ तो था ही। दयालुहृदय गुरुदेव किसकी प्रार्थना स्वीकार करें और किसकी नहीं यही बड़ा असमंजस था। सभी का प्रबल आग्रह था और सभी क्षेत्र बड़े और चौमासे के लिए उपयुक्त भी थे। गुरुदेव सोचते थे— एक जगह के लिए स्वीकृति देने पर चार जगह के भाइयों के लिए मनमाड़ मनमार सिद्ध हो जायगा उनका मन मारा जायगा। तब आपने एक अनूठी विधि निकाली। श्रावकों से कहा—आप लोग दस मिनिट तक लोगस्स का ध्यान कीजिए, तब तक मैं ऊपर से आता हूँ। यह कहकर आप भीतर पधारे। पाँचों क्षेत्रों के पाँच कागज के टुकड़ों पर नाम लिखे और उनकी पुड़िया बना ली। फिर बाहर आकर वह पुड़ियाँ श्रावकों के सामने रख दीं और कह दिया—मेरे लिए सभी क्षेत्र समान हैं किन्तु एक साथ सब जगह चौमासा करना असंभव है। अतएव जिस क्षेत्र का नाम पहले खुलेगा वहीं सुखेसमाधे चौमासा करेंगे।

अबोध बालक ने पुड़िया उठाई और मनमाड़ का नाम खुल गया। इस विधि से किसी का अप्रसन्नता नहीं हुई और मनमाड़ चातुर्मास निश्चित हो गया।

मनमाड़ में स्थानकवासी जैनों के अधिक घर न होने पर भी धर्मभावना बलवती होने के कारण अच्छी जागृति हुई। नर-नारियों ने खूब धर्माराधना की। विक्रम संवत् १९९४ का यह चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ।

छियालीसवाँ चातुर्मास—

मनमाड़ से विहार कर चरित्रनायक चालीसगांव, माचोरा, बहगांव सुसावल और खंडवा पधारे।

आपने शास्त्रीय अध्ययन करने के पश्चात् देशाटन आरम्भ किया था। विभिन्न प्रांतों में पर्यटन करते हुए आप खूब चमके। स्वयं ही नहीं चमके, वरन् अपने गंभीर ज्ञान के प्रखर प्रकाश से समाज को भी चमकाया, उसे भी प्रकाश दिया। आपकी व्याख्यानशैली इतनी सरल और उत्तम हो गई थी कि मारवाड़ी मेवाड़ी और मालवीय श्रावकों में आपका स्थान प्रमुख बन गया था। आप अपने हृद्गत सद्भावों को विवेक की तराजू पर तोल कर अपने शब्दों के सांचे में डालकर श्रोताओं में पहुँचाते थे।

खंडवा से विहार कर आप इन्दौर पधारे तो सेठ रामलालजी कीमती पन्नालालजी सरदारमलजी सांड, श्री कन्हैयालालजी इन्दरमलजी आदि भाइयों ने खूब सेवा की। अच्छा धर्मध्यान हुआ। जावरौद पधारने पर रतलाम से ओसवदास मित्रमण्डल की ओर से आपकाजय प्रार्थना करने पहुँचे। चरित्रनायकजी पूर्णतया निस्पृह थे अतएव रतलाम में बड़े समारोह के साथ भव्य स्वागत हुआ। आपके व्याख्यान होते रहे। तत्पश्चात् आप जावरा मन्दसौर होते हुए मेवाड़ में पधार गये। छोटी सादड़ी कानोड़ भिंडर आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए देलवाड़ा पधारे और वहाँ पर पं० श्रीताराचन्दजी महाराज से मिलाप हुआ।

एकलिंगजी में गुरुदर्शन—

अरावली पर्वत मेवाड़ के इतिहास का निर्माता है। उसकी गोद में महादेवजी विराजे हैं जो मेवाड़ के नाथ के नाथ कहलाते हैं। विराट्काय दो पर्वतों के बीच उन्होंने अपना आसन जमा रखा है। चारों ओर निर्झरों की निर्मल धवल धाराएँ प्रवाहित होती रहती हैं। अनेक सरोवरों और वाटिकाओं के कारण यह सुन्दर पार्वत्य प्रदेश और भी सुरम्य बन गया है। उदयपुर से ब्यावर जाने वाली पक्की सड़क पर देलवाड़ा से तीन मील दूर एकलिंगजी का तीर्थस्थान है।

चरित्रनायकजी देलवाड़ा पधारे तब तक उन्हें मालूम ही नहीं था कि एक जिज्ञासु और मुमुक्षु जन उनके दर्शन के लिए उत्कंठित और व्याकुल हो रहा है।

आपका एकलिंगजी में पदार्पण हुआ तो तत्र विराजित सतीसमुदाय के साथ मैं भी अग्रगामी के लिए आ पहुँचा। यह प्रभात का सुहावना समय था और साथ ही मेरे मंगलमय जीवन का भी प्रथम प्रभात था। बसन्त का यौवन था। विशालकाय हरे-भरे आम्रवृक्ष की छाया में गुरुदेव खड़े हुए। कोकिलाओं ने पंचमस्वर से स्वागतगीत गाया। नमस्कार करने पर गुरुदेव ने मुझे 'दया पालो' का भाव पूर्ण संदेश दिया। वीतरागमार्ग सद्गुरु महाराज के दर्शन का मेरे लिए यही प्रथम शुभावसर था। आपका करुणापूर्ण सौम्य मुखमण्डल और दिव्य भव्य आकृति निहार कर मैं निहाल हो गया।

तत्पश्चात् धर्मशाला में पधार कर आप उच्च आसन पर आसीन हुए और सब सम्मुख बैठ गये। प्रासंगिक चर्चा के पश्चात् बालब्रह्मचारिणी विदुषी सद्गुरुणी श्रीशीलकुँवरजी म० ने मेरा परिचय देते हुए कहा—यह एक विरक्त जिज्ञासु हैं और आपकी सेवा में रह कर साधना करना चाहते हैं।

गुरुदेव ने विशेष परिचय प्राप्त करना चाहा तो विदुषी महासतीजी ने कहा—यह क्षत्रिय कुमार है। वाकल (मोमट मेवाड़) का निवासी है। केसरीसिंह नाम है। करीब दो माह से यह और बगडुन्दा वाली सुश्राविका लक्ष्मीबाई सेवा में हैं। धर्म की भावना गहरी है। माग्य और भाव इन्हीं का काम आएगा इसलिए सो पात्र समझकर आपकी सेवा में प्रस्तुत कर दिया है। कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी बनाया है—मिथ्यात्वी से समकित्वी बना दिया है।

गुरुदेव इस परिचय से संतुष्ट हुए, किन्तु अधिक न बोले। हृदय में हर्ष की लहर उत्पन्न हुई, यह जान पड़ा। यद्यपि मैं अपने भविष्य का निर्णय करने को उत्कंठित था, तथापि बोल कुछ न सका।

महासतीजी उदयपुर पधारीं और चरित्रनायकजी देलवाड़ा पधार गये। मैं चरितनायकजी के साथ हो लिया।

उदयपुर में पदार्पण—

महाराणा प्रताप की वीरभूमि मेवाड़ की राजधानी उदयपुर को गुरुदेव के चरणस्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसी समय अन्य संप्रदाय के मुनि भी उदयपुर पधार रहे थे। अजमेर-सम्मेलन के नियमानुसार एक नगर में एक ही जगह व्याख्यान हो सकता था। अतएव सन्तों के व्याख्यान देने में कोई बाधा न हो यह सोचकर आप नगर के बाहर ही ठहर गये। मगर नगरनिवासी श्रावकों को यह बात अखरी और वे आग्रह करके आपको नगर में लाये। आपकी यह सरल और सन्तोचित उदार भावना देखकर श्रावकों के हर्ष का पार न रहा।

मनमाड में स्थानकवासी जैनों के अधिक घर न होने पर भी धर्मभावना प्रबलती होने के कारण अच्छी जागृति हुई। नर-नारियों ने खूब धर्माराधना की। वि० सं० १९९४ का यह चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ।

छियालीसवाँ चातुर्मास—

मनमाड से विहार कर चरितनायक चालीसगाँव, पाचोरा, जामनेर, भुसावल और खण्डवा पधारे।

आपने शास्त्रीय अध्ययन करने के पश्चात् देशाटन आरम्भ किया था। विभिन्न प्रांतों में पर्यटन करते हुए आप खूब चमके। स्वयं ही नहीं चमके वरन् अपने गंभीर ज्ञान के प्रखर प्रकाश से समाज को भी चमकाया; उसे भी प्रकाश दिया। आपकी व्याख्यानशैली इतनी सरस और उत्तम हो गई थी कि मारवाड़ी मेवाड़ी और मालवीय वक्ताओं में आपका स्थान प्रमुख बन गया था। आप अपने हृदगत सद्भावों को विवेक की तराजू पर तोल कर अपने शब्दों के सांचे में ढालकर श्रोताओं में पहुँचाते थे।

खंडवा से विहार कर आप इन्दौर पधारे तो सेठ रामलालजी कीमती पन्नालालजी सरदारमलजी सांड, श्री कन्हैयालालजी हनूमलजी आदि भाइयों ने खूब सेवा की। अच्छा धर्मध्यान हुआ। खाचरौद पधारने पर रतलाम से श्रीधर्मदास मित्रमण्डल की ओर से श्रावकगण प्रार्थना करने पहुँचे। चरितनायकजी पूर्णतया निस्पृह थे, अतएव रतलाम में बड़े समारोह के साथ भव्य स्वागत हुआ। आपके स्वतन्त्र व्याख्यान होते रहे। तत्पश्चात् आप जावरा मन्दसौर होते हुए मेवाड़ में पधार गये। छोटी सादड़ी कानौड़ भिंडर आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए देलवाड़ा पधारे और वहाँ पर पं० श्रीताराचन्दजी महाराज से मिलाप हुआ।

एकलिंगजी में गुरुदर्शन—

अरावली पर्वत मेवाड़ के इतिहास का निर्माता है। उसकी गोद में महादेवजी विराजे हैं जो मेवाड़ के नाथ के नाम से कहलाते हैं। विराट्काय दो पर्वतों के बीच उन्होंने अपना आसन जमा रक्खा है। चारों ओर निर्झरों की निर्मल धवल धारायें प्रवाहित होती रहती हैं। अनेक सरोवरों और वाटिकाओं के कारण वह सुन्दर प्राकृत प्रदेश और भी सुरम्य बन गया है। उदयपुर से नाथद्वारा जाने वाली पक्की सड़क पर देलवाड़ा से तीन मील दूर एकलिंगजी का तीर्थस्थान है।

चरितनायकजी देलवाड़ा पधारे तब तक उन्हें मालूम ही नहीं था कि एक जिज्ञासु और मुमुक्षु जन उनके दर्शन के लिए उत्कंठित और व्याकुल हो रहा है।

की बावड़ी पहुँचे। पैर जवाब दे रहे थे अतएव बावड़ी पर विश्राम करने के लिए रुक गये।

प्रासंगिक बातचीत करती हुई नाथी बाई ने कहा—घर पहुँच कर मुझे महासतीजी के दर्शनार्थ शीघ्र गोगुन्दा जाना है।

सहसा मेरे मुख से निकल पड़ा—मुझे भी दिखलाना अपनी महासतीजी को।

इसी वाक्य से मेरे वैराग्य की बुनियाद तैयार हो गई। नाथी बाई ने महासतीजी के समक्ष मेरी चर्चा की। थोड़े दिनों में श्रीशीलकुँवरजी म० का वास में पदार्पण हुआ। इससे पूर्व मैंने कभी जैन साधु-साध्वी के दर्शन नहीं किये थे। १६ वर्ष की वय में सर्वप्रथम शीलमूर्ति श्रीशीलकुँवरजी म० के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

श्री शीलकुँवरजी म० में कुछ ऐसा अनूठा प्रभाव है कि आपके दर्शन से भावनाशील अपरिचित व्यक्ति में भी दिव्य पावनता का उदय होता है। आपका सौम्य भाव निराली सात्विकता उत्पन्न करता है। वाणी में न जाने मिश्री या अमृत घुला है! मैं महासतीजी के दर्शन से अतिशय प्रभावित हुआ। उन्होंने मेरे तमाखूसेवन आदि कई दुर्व्यसन छुड़ा दिए। यही नहीं, मेरा जीवन ही बदल दिया। वही महासतीजी मेरी सच्ची गुरुणी हैं।

महासतीजी की संगति से मेरा मन संसार से विरत हो गया और मैं उन्हीं के साथ-साथ गोगुन्दा पहुँचा। वहाँ श्रीजोधराजजी बाजेड़ की सुपुत्री मोहनकंवर बाई की दीक्षा का समारोह देखा तो अन्तःकरण में और तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ। वहाँ से गोगुन्दा और उदयपुर होता हुआ महासती म० के साथ आपकी सेवा में उपस्थित हुआ।

मेरा आत्मनिवेदन सुन कर गुरुदेव बोले—ठीक! तुमने जैन साध्वी-साध्वियों का रहन-सहन, आहार-विहार आदि व्यवहार देख लिया है। बतलाओ क्या तुम इस प्रकार के मुनि बन कर रह सकते हो?

क्षण भर विचार करके मैंने कहा—हाँ।

किन्तु विचारों में ज्वार-भाटा चल रहा था। यद्यपि घर का हमाली का काम छूट जाने से बड़ी राहत मिल गई थी और खान पान सम्मान भी दिनोंदिन अच्छा हो रहा था तथापि बिछुड़ा हुआ परिवार, पुराना घर और जंगल का वह मंगल पुनः पुनः स्मृतिपट पर उभर रहा था।

गुरुदेव को 'हाँ' के आधार पर शिष्य पर विश्वास हो गया। मैं भी अपने वचन की गुरुता को अनुभव करने लगा। अब मैं पढ़ने लिखने में अधिक तत्परता से जुट गया।

आपकी यह निरभिमान वृत्ति जनता में आपके प्रति अतिशय श्रद्धा और भक्ति बढ़ाने वाली सिद्ध हुई। आने वाले दूसरे संत आबड़ में जो नगर से दो मील की दूरी पर एक ग्राम है, ठहर गये। जब वे पधारे तो आपने सहर्ष उनका व्याख्यान करवाया और आप स्वाध्याय तथा पठन-पाठन में संलग्न हो गये।

उस समय उदयपुर में ज्ञानगरिमामयी श्रीमदनकुँवरजी म० विदुषी श्री सोहनकुँवरजी म० तथा विदुषी श्रीशीलकुँवरजी म० आदि ११ सतियाँ विराजमान थीं। श्रीमदनकुँवरजी म० वृद्धावस्था के कारण कई वर्षों से वहाँ स्थिर वास में थीं।

मैं—परीक्षा की कसौटी पर—

गुरुदेव ने सोचा—'वैरागी की संयम पालने की भावना सच्ची है या कच्ची? ऐसा तो न हो कि ऊपर की चमकियों से वैराग्य का भाव कच्चे रंग की तरह उड़ जाय? अतएव ठीक तरह पूछताछ कर परीक्षा कर लेना उचित है।' यह सोच कर गुरुदेव ने एक दिन पास बिठला कर प्रेमपूर्वक पूछा—'केसरीसिंह! पढ़ने में दिल लगता है?'

मैंने कहा—'खूब लगता है।

गुरुदेव—'अच्छा यह बतलाओ घर क्या धंधा करते थे और सतीजी के साथ कैसे चले आये? अपना पूरा वृत्तान्त कह सुनाओ।'

मैंने उत्साह के साथ कहा—गुरुदेव नाऊ के पास मेरी जन्मभूमि है। वह छोटा-सा बारह घर के किसानों का गाँव है। किसानी का परम्परागत धंधा है। मैं तेरह वर्ष का था कि एक ही साल में माताजी और पिताजी गोलोकवासी हो गये। माता का नाम गुली बाई और पिता का नाम चतरसिंहजी था। परिवार में बड़े भाई और दो बहिनें हैं। पिताजी के स्वर्गवास के समय मैं पास-वाली सेठ प्यारचन्दजी भेरीलालजी के यहाँ नौकरी करने लगा था। एक बार मैं सेठजी की भतीजी नाथी बाई को उनकी ससुराल-मगदुम्बा-पहुँचाने जा रहा था। दिन भर बस चलना ही चलना था। पहाड़ी रास्ता बड़ा ऊबड़खाबड़ था। पत्थर मानो दाँत निकाले और पाँव पसारे मार्ग में खड़े हों।

मेरे सिर पर छोटा-सा साफा पुरानी अंगरखी और फटीसी पगरखी थी। गले में एक दुपट्टा था जो बार-बार पसीना पोंछने के काम आ रहा था। बाईजी घोड़े पर सवार थीं और मैं घोड़े के पीछे-पीछे रक्षक की तरह स्वाभिमानी बन कर चल रहा था। बड़ी कठिनाई से जोड़ी की घाटी पार हो सकी। यह डेढ़ मील सीधे चढ़ाव की घाटी है। उस घाटी पर चढ़ कर और फिर उतर कर हम माकवा

की बावड़ी पहुँचे। पैर जवाब दे रहे थे अतएव बावड़ी पर विश्राम करने के लिए रुक गये।

प्रासंगिक बातचीत करती हुई नाथी बाई ने कहा—घर पहुँच कर मुझे महासतीजी के दर्शनार्थ शीघ्र गोगुन्दा जाना है।

सहसा मेरे मुख से निकल पड़ा—मुझे भी दिखलाना अपनी महासतीजी को।

इसी वाक्य से मेरे वैराग्य की बुनियाद तैयार हो गई। नाथी बाई ने महासतीजी के समक्ष मेरी चर्चा की। थोड़े दिनों में श्रीशीलकुँवरजी म० का वास में पदार्पण हुआ। इससे पूर्व मैंने कभी जैन साधु-साध्वी के दर्शन नहीं किये थे। १६ वर्ष की वय में सर्वप्रथम शीलमूर्ति श्रीशीलकुँवरजी म० के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

श्री शीलकुँवरजी म० में कुछ ऐसा अनूठा प्रभाव है कि आपके दर्शन से भावनाशील अपरिचित व्यक्ति में भी दिव्य पावनता का उदय होता है। आपका सौम्य भाव निराली सात्त्विकता उत्पन्न करता है। वाणी में न जाने मिश्री या अमृत घुला है ! मैं महासतीजी के दर्शन से अतिशय प्रभावित हुआ। उन्होंने मेरे तमाखूसेवन आदि कई दुर्व्यसन छुड़ा दिये। यही नहीं, मेरा जीवन ही बदल दिया। वही महासतीजी मेरी सच्ची गुरुणी हैं।

महासतीजी की संगति से मेरा मन संसार से विरत हो गया और मैं उन्हीं के साथ-साथ गोगुन्दा पहुँचा। वहाँ श्रीजोधराजजी कावेड़ की सुपुत्री मोहनकुंवर बाई की दीक्षा का समारोह देखा तो अन्तःकरण में और तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ। वहाँ से गोगुन्दा और उदयपुर होता हुआ महासती म० के साथ आपकी सेवा में उपस्थित हुआ।

मेरा आत्मनिवेदन सुन कर गुरुदेव बोले—ठीक ! तुमने जैन साध्वी साध्वियों का रहन-सहन, आहार-विहार आदि व्यवहार देख लिया है। वत्स्तालाभो, क्या तुम इस प्रकार के मुनि बन कर रह सकते हो ?

क्षण भर विचार करके मैंने कहा—हाँ।

किन्तु विचारों में उतार-चढ़ाव चल रहा था। यद्यपि घर का हमाली का काम छूट जाने से बड़ी राहत मिल गई थी और खान पान सम्मान भी दिनोंदिन अच्छा हो रहा था, तथापि बिछुड़ा हुआ परिवार, पुराना घर और अंगन का वह मंगल पुनः पुनः स्मृतिपट पर उभर रहा था।

गुरुदेव को 'हाँ' के आधार पर शिष्य पर विश्वास हो गया। मैं भी अपने वचन की गुरुता को अनुभव करने लगा। अब मैं पढ़ने लिखने में अधिक तत्परता से जुट गया।

उदयपुर से विहार कर गुरुदेव गोगुन्दा पधारे। वहाँ शान्तिमूर्ति श्रीयुत कँवरजी म० आदि सतियाँ विराजमान थीं। आपके पदार्पण के समाचार फैलते ही मेरा तथा वागड़ प्रान्त के दर्शनार्थियों का तांता लग गया। व्याख्यान में हजारों श्रोता सम्मिलित होने लगे। जगह-जगह से चौमासे की प्रार्थना करने वाले भी आने लगे।

इसी बीच सेठ गेरीलालजी भाई कानजी को गुरु महाराज की सेवा में साथ ले आये। कानजी भाई ने उपदेश से प्रभावित होकर दीक्षा के लिए आज्ञापत्र लिख दिया। उस समय तक मेरी विरक्ति भी प्रबल हो चुकी थी। आज्ञा प्राप्त होने से मेरा चित्त निश्चिन्त हो गया।

उस वर्ष अर्थात् वि० स० १९९५ का चौमासा कंबोल में हुआ। वहां के भाइयों की भक्ति चिरस्मरणीय है। १००-१२५ दर्शनार्थी प्रतिदिन आते और श्रीसंघ उनका हार्दिक स्वागत करता था।

सैंतालीसवाँ चातुर्मास—

गुरुदेव के सरल वात्सल्यमय और सुन्दर व्यवहार को देखकर मैं उनकी ओर पूरी तरह आकृष्ट हो चुका था। उनकी आज्ञा का पालन करना ही मेरा प्रधान धर्म था। मैंने थोड़े ही दिनों में प्रतिक्रमण पचीस बोल का थोकड़ा आदि सीख लिया था और हिन्दी की चौथी कक्षा की योग्यता प्राप्त कर ली थी। -

भगवती दीक्षा की तैयारी—

मेरा प्रांत वागड़ एवं म्हालावाड़ प्रान्तों में गुरुदेव के ही भक्त श्रावक थे और उनकी आपके प्रति पूर्ण श्रद्धा थी। बहुत वर्षों के बाद मैं गुरुदेव की सेवा में वैरागी के रूप में था अतएव सभी ग्रामों के निवासी वैरागी का खूब आदर सम्मान करते थे। देहाती जनता के अनुरोध को स्वीकार कर आप सामरा, सिंघाड़ा सिमल दील पुनावली सुमावतों का गुड़ा मन्देसमा, परानन्दगढ़ बीरपाल आदि ग्रामों में पधारे। फिर जगदुम्बा होकर वागड़ पहुँचे। आज्ञापत्र देते समय वागड़ के भाइयों ने वायदा करा लिया था कि दीक्षा हमारे यहाँ होनी चाहिए। दीक्षा का दिन निश्चित हो गया और आसपास के ग्रामों एवं नगरों में सूचना भेज दी गई।

चुगलखोर का चमत्कार—

दीक्षा का समय पौष कृष्णा ५ सं० १९९५ निश्चित हो चुका था। इस प्रांत में बहुत वर्षों बाद दीक्षा का समारोह हो रहा

उत्साह था। करीब पाँच सौ आदमी मावड़ा में आ चुके थे और हजारों के आने की संभावना थी।

इसी बीच किसी ने थाने में रिपोर्ट कर दी कि मावड़े में एक छोटे बालक को बिना उसके संरक्षक की आज्ञा प्राप्त हुए ही, जैन साधु बनाया जारहा है। उसका भाई दीक्षा रोकना चाहता है।

इस शिकायत के आधार पर १५ पुलिस के सिपाही पौष वदि १ के दिन मावड़ा आ धमके। उन्होंने कहा—सरकार के हुक्म से हम बैरागी को मेरपुर ले जायेंगे।

रात्रि का समय था। पुलिस की धमकियों से जैनी भाई घबरा गये। मेरपुर मावड़ा से १५ मील दूर था। कदाचित् बैरागी को मेरपुर भेजना पड़ा तो दीक्षा होना असंभव हो जायगा। लोगों ने पुलिस वालों को बहुत कुछ कहा-सुना पर वे न माने। तब वे वहाँ के ठाकुर साहब रतनसिंहजी के पास पहुँचे। ठाकुर साहब ने रात्रि को ११ बजे मुझे अपने महल में बुलवाया। पूछताछ करने के बाद उन्हें सन्तोष हो गया और वे बोले तुम आनन्द के साथ दीक्षा दो। मैं सब ठीकठाक कर दूँगा।

तत्पश्चात् वे रात्रि के १२ बजे गुरु महाराज की सेवा में उपस्थित हुए। पुलिस के अधिकारी से भी मिले। छोटे गांव के जागीरदार होने पर भी वे राजनीति में बड़े कुशल थे। उन्होंने पुलिस को स्पष्ट कह दिया—बैरागी मेरपुर नहीं जा सकता और न वहां ले जाने की आवश्यकता ही है।

ठाकुर साहब ने एक लम्बी रिपोर्ट लिखकर चार सवारों के साथ मेरपुर भेजी। गुरुदेव और श्रावकों को विश्वास दिलाया कि दीक्षा अवश्य होगी। धूम धाम से तैयारी करो। अगर हथकड़ियाँ लेकर कोई आयगा तो पहले मैं पहिनूँगा।

ठाकुर साहब ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि यदि दीक्षा रोकी गई तो खून की नदियाँ बहेगी क्योंकि कई हजारों जैन यहाँ आ रहे हैं।

इस प्रकार ठाकुर साहब के हस्तक्षेप से शांति हुई। फिर तो मेरपुर से ही राजकीय आभूषण, कोतल घोड़ और निशान आदि मंगवाये गये।

दीक्षा प्रसंग पर भाई कालजी स्वयं आये। एक दिन के लिए मुझे घर ले गये और डेढ़ सौ आदमियों का भोजन करवाया। उन्होंने भावपूर्ण शब्दों में दीक्षा की आज्ञा दी। नियत समय पर आम्रतरु की सघन शीतल छाया में दीक्षा का कार्य आनन्द सम्पन्न हुआ। दीक्षित नाम 'हीरा मुनि' रक्खा गया। जयनादों से आकाश गूंज उठा।

उदयपुर से विहार कर गुरुदेव गोगुन्दा पधारे। वहाँ शान्तिमूर्ति श्रीयुत कुँवरजी म० आदि सतियाँ विराजमान थीं। आपके पदार्पण के समाचार फैलते ही सेरा तथा वाकल प्रान्त के दर्शनार्थियों का तांता लग गया। व्याख्यान में हजारों श्रोता सम्मिलित होने लगे। जगह-जगह से चौमासे की प्रार्थना करने वाले भी आने लगे।

इसी बीच सेठ गेरीलालजी भाई कानजी को गुरु महाराज की सेवा में साथ ले आये। कानजी भाई ने उपदेश से प्रभावित होकर दीक्षा के लिए आज्ञापत्र लिख दिया। उस समय तक मेरी विरक्ति भी प्रबल हो चुकी थी। आज्ञा प्राप्त होने से मेरा चित्त निश्चिन्त हो गया।

इस वर्ष अर्थात् वि० सं० १९९९ का चौमासा कंबोल में हुआ। वहाँ के भाइयों की भक्ति चिरस्मरणीय है। १००-१२५ दर्शनार्थी प्रतिदिन आते और श्रीसंघ उनका हार्दिक स्वागत करता था।

सैंतालीसवाँ चातुर्मास—

गुरुदेव के सरल वात्सल्यमय और सुन्दर व्यवहार को देखकर मैं उनकी ओर पूरी तरह आकृष्ट हो चुका था। उनकी आज्ञा का पालन करना ही मेरा प्रधान धर्म था। मैंने थोड़े ही दिनों में प्रतिक्रमण पचीस बोल का थोकड़ा आदि सीख लिया था और हिन्दी की चौथी कक्षा की योग्यता प्राप्त कर ली थी। -

भागवती दीक्षा की तैयारी—

सेरा प्रांत वाकल एवं महलावाड़ प्रान्तों में गुरुदेव के ही भक्त श्रावक थे और उनकी आपके प्रति पूर्ण श्रद्धा थी। बहुत वर्षों के बाद मैं गुरुदेव की सेवा में बैरागी के रूप में था अतएव सभी ग्रामों के निवासी बैरागी का खूब आदर सम्मान करते थे। देहाती जनता के अनुरोध को स्वीकार कर आप सायरा, सिंघाड़ा सिवल दीवल धुमावली झुझावतों का गुड़ा मझेरामा, चत्रावन्ठगढ़ बीरपाल आदि ग्रामों में पधारे। फिर वागुन्दा होकर वाकल पहुँचे। आज्ञापत्र देते समय वाकल के भाइयों ने वायदा करा लिया था कि दीक्षा हमारे यहाँ होनी चाहिए। दीक्षा का दिन निश्चित हो गया और आसपास के ग्रामों एवं नगरों में सूचना भेज दी गई।

चुगलखोर का चमत्कार—

दीक्षा का समय पौष कृष्णा ५, सं० १९९९ निश्चित हो चुका था। इस प्रांत में बहुत वर्षों बाद दीक्षा का समारोह हो र

उत्साह था। करीब पाँच सौ आदमी मादड़ा में आ चुके थे और हजारों के आने की संभावना थी।

इसी बीच किसी ने थाने में रिपोर्ट कर दी कि मादड़े में एक छोटे बालक को बिना उसके संरक्षक की आज्ञा प्राप्त हुए ही जैन साधु बनाया जारहा है। उसका भाई दीक्षा रोकना चाहता है।

इस शिकायत के आधार पर १२ पुलिस के सिपाही पौष वदि १ के दिन मादड़ा आ धमके। उन्होंने कहा—सरकार के हुक्म से हम बैरागी को मेरपुर ले जाएँगे।

रात्रि का समय था। पुलिस की धमकियों से जैनी भाई घबरा गये। मेरपुर मादड़ा से १५ मील दूर था। कदाचित् बैरागी को मेरपुर भेजना पड़ा तो दीक्षा होना असंभव हो जायगा। लोगों ने पुलिस वालों को बहुत कुछ कहा-सुना पर वे न माने। तब वे वहाँ के ठाकुर साहब रतनसिंहजी के पास पहुँचे। ठाकुर साहब ने रात्रि को ११ बजे मुझे अपने महल में बुलवाया। पूछताछ करने के बाद उन्हें सन्तोष हो गया और वे बोले तुम आनन्द के साथ दीक्षा लो। मैं सब ठीकठाक कर दूँगा।

तत्पश्चात् वे रात्रि के १२ बजे गुरु महाराज की सेवा में उपस्थित हुए। पुलिस के अधिकारी से भी मिले। छोटे गाँव के जागीरदार होने पर भी वे राजनीति में बड़े कुशल थे। उन्होंने पुलिस को स्पष्ट कह दिया—बैरागी मेरपुर नहीं जा सकता और न उसे ले जाने की आवश्यकता ही है।

ठाकुर साहब ने एक लम्बी रिपोर्ट लिखकर चार महाजनों के साथ मेरपुर भेजी। गुरुदेव और श्रावकों को विश्वास दिलाया कि दीक्षा अवश्य होगी। धूम धाम से तैयारी करो। अगर हथकड़ियाँ लेकर कोई आयगा तो पहले मैं पहिनूँगा।

ठाकुर साहब ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि यदि दीक्षा रोकी गई तो खून की नदियाँ बहेंगी क्योंकि कई हजारों जैन यहाँ आ रहे हैं।

इस प्रकार ठाकुर साहब के हस्तक्षेप से शांति हुई। फिर तो मेरपुर से ही राजकीय आभूषण, कोतल घोड़े और निशान आदि मंगवाये गये।

दीक्षा प्रसंग पर भाई कानजी स्वयं आये। एक दिन के लिए मुझ पर से गये और केई सौ आदमियों को भोजन करवाया। उन्होंने भावपूर्ण शब्दों में दीक्षा की आज्ञा दी। नियत समय पर आम्रतरु की सघन शीतल छाया में दीक्षा का कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ। दीक्षित नाम 'हीरा मुनि' रक्खा गया। जयनादों से आकाश गूँज उठा।

दीक्षा के इस पुनीत प्रसंग पर विदुषी महासती श्रीसोहनकुँवरजी म० श्रीशीलकुँवरजी म० आदि २६ महासतियों का पदार्पण हुआ। समस्त कार्य बड़े आनन्द और उल्लास के साथ हुआ।

दीक्षा के अनन्तर तीनों सन्त वास पधारे। सीरवासे में बड़ी दीक्षा दी गई। ठंड का मौसिम था और कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। कच्चे मकान में शीत का अनुभव अधिक होता है। सभी सन्तों का शरीर सर्दी से काँपता था। मैं यद्यपि नवदीक्षित था तथापि उत्साह और उल्लास में धैर्य के साथ सर्दी सहन कर रहा था।

गुरुदेव विचरते हुए सेरा गाँव में पधारे। इस प्रदेश में अधिक विचरने वाली महासती श्रीकेसरकुँवरजी म० ठाणा ४ ने गुरुदेव के दर्शन किये। फिर रायणपुर साकड़ी और संखिराव होते हुए आप जालौर पधारे।

बहुत वर्षों के बाद आपका पदार्पण हुआ था अतएव जनता में भारी उत्साह था। फलानी के चौक में आपके सार्वजनिक प्रवचन होने लगे। दान, पुण्य परोपकार आदि धर्मकृत्य खूब हुए।

तत्पश्चात् आप मोकलसर पधारे। वहाँ स्थिरवास विराजित स्थविर मुनि श्रीउत्तमचन्दजी म० * श्रीबागमलजी म० श्रीनारायणदासजी म० तथा श्रीप्रताप मलजी म० मौजूद थे। उन्होंने आपका हार्दिक स्वागत किया। यह सम्मिलन बड़ा ही आनन्दमय रहा। यहीं होली चातुर्मास हुआ।

** अमरगच्छ में श्री उत्तमचन्दजी म० एक उत्तम सन्त हो गये हैं। जातिमद से अंधे लोगों को वे चुनौती दे गये कि धर्म से जाति का कोई संबंध नहीं। धर्म आत्मा का स्वरूप है और किसी जाति की बपौती नहीं है।*

उन्होंने नाथद्वारा के समीपवर्ती कोसा गाँव में कीर जाति में जन्म लिया था। पूज्य श्री पूनमचन्दजी म० के प्रशिष्य श्री प्रेमचन्दजी म० का नाथद्वारा में उपदेश सुनकर उन्हें विरक्ति हुई। उस समय १६ वर्ष की उनकी उम्र थी। इस पवित्र आत्मा ने सं० १९५६ में दीक्षा अंगीकार की। संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के विद्वान् बने। स्वाध्याय के बड़े प्रेमी थे। आपने मारवाड़ के छोटे-छोटे ग्रामों में जैनधर्म का खूब प्रचार किया। वृद्धावस्था में भी स्वाध्याय में लीन रहा करते थे। स्थूल शरीर गौर वर्ण विशाल भाल और लम्बी भौंहें थीं। श्री बागमलजी म० आपके शिष्य थे जो थोकड़ों के अच्छे जानकार और बड़े सेवाभावी थे। गुरु शिष्य बहुत वर्षों तक मोकलसर में विराजे। स्वभाव से शान्त आगमों के ज्ञाता अध्यात्मानन्दी और परमात्मपरायण थे। आपका पवित्र जीवन जातिवाद का मूर्तिमान् खण्डन था।

वहाँ से आप ठाणा ५ ने करमावस की ओर विहार किया। फिर चरितनायकजी ठाणा २ भक्तिस ग्राम में विराजित ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रीदयालचन्द्रजी म० की सेवा में पधार गये। गुरुभ्राताओं का वह नेहमिलन दर्शनीय था। लम्बे वर्षों के पश्चात् मिलाप हुआ था। कुछ दिन वहीं ठहर कर रहीपड़ा पधारे। समदड़ी संघ को आपके पधारने का समाचार मिला तो करीब सौ-सवा सौ भाई-बहिनें दर्शनार्थ आ पहुँचे। संघ की प्रार्थना स्वीकार करके आप समदड़ी पधारे तो लोगों में अपूर्व उत्साह आ गया। खूब दया-पौषध आदि धर्माराधना हुई। व्याख्यानों में श्रोताओं की खूब भीड़ होने लगी। पुरानी प्रीति उमड़ पड़ी। लोग भावविभोर होकर गुरुदेव की सेवा करने लगे।

समदड़ी से जब आपश्री बालोतरा पधारे तो एक अड़चन आ पड़ी। आपके पधारने के समय ही पं० मुनि श्री भीमराजजी म० भी पधारे। साम्प्रदायिक भेद के कारण न परस्पर मिलाप हो सका और न व्याख्यान ही। अजमेर-सम्मेलन के नियमानुसार दो व्याख्यान नहीं हो सकते थे। दोनों पृथक्-पृथक् स्थानों में विराजे थे। बस संघ में चर्चा चल पड़ी कि व्याख्यान किसका कराया जाय? संघ में इस प्रश्न को लेकर मतभेद हो गया और परिणाम यह हुआ कि दो दिन तक दोनों मुनिराजों में से किसी को भी व्याख्यान के लिए आमन्त्रित न किया गया। दोनों बड़े-बड़े विद्वान् मुनिराज नगर में मौजूद थे मगर श्रीसंघ अपने मतभेद के कारण उनके व्याख्यान से लाभ नहीं उठा सकता था। बहुतों को यह स्थिति बहुत अखरी। अन्त में संघ ने यह निर्णय किया कि पर्यायज्येष्ठ मुनि पहले व्याख्यान फरमावें। इस निर्णय के अनुसार गुरुदेव व्याख्यान फर्माने लगे।

उसी समय सिवाने से चौमासे की प्रार्थना करने के लिए एक प्रतिनिधिमंडल उपस्थित हुआ। यद्यपि जोधपुर आदि स्थानों की भी प्रार्थना थी, तथापि चरितनायकजी ने सिवाने वालों को मर्यादानुसार स्वीकृति दे दी। यथासमय विहार कर मोकलसर होते हुए आप सिवाना पधारे और वि० सं० १९९९ के चातुर्मास में विराजे।

'अमरसूरि' काव्य पर चर्चा—

साहित्यविशारद पं० र० मन्त्री श्रीपुष्करमुनिजी म० ने 'अमरसूरि' काव्य लिखा है। संस्कृतभाषा में पद्यमय रचना है। उसमें श्री अमरसिंहजी महाराज का सारगर्भित संक्षिप्त जीवनचरित है। आचार्यवर्य अमरसिंहजी म० ने मारवाड़ प्रान्त में किस प्रकार धर्मप्रचार किया किस प्रकार यतियों को चुनौती देकर शास्त्रार्थ किया और किस प्रकार जैनधर्म का झंडा फहराया आदि बातों का उसमें दिग्दर्शन कराया गया है। निम्नलिखित उक्ति जो उस समय प्रसिद्ध हो गई थी आपके प्रखर प्रभाव को प्रमाणित करती है—

दीक्षा के इस पुनीत प्रसंग पर विदुषी महासती श्रीसोहनकुँवरजी म० श्रीशीलकुँवरजी म० आदि २६ महासतियों का पदार्पण हुआ। समस्त कार्य बड़े आनन्द और उल्लास के साथ हुआ।

दीक्षा के अनन्तर तीनों सन्त व्यास पधारे। दीक्षावाले में बड़ी दीक्षा दी गई। ठंड का मौसिम था और कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। कच्चे मकान में शीत का अनुभव अधिक होता है। सभी सन्तों का शरीर सर्दी से काँपता था। मैं यद्यपि नवदीक्षित था तथापि उत्साह और उल्लास में धैर्य के साथ सर्दी सहन कर रहा था।

गुरुदेव विचरते हुए सेरा प्रांत में पधारे। इस प्रदेश में अधिक विचरने वाली महासती श्रीसुहरकुँवरजी म० ठाणा ४ ने गुरुदेव के दर्शन किये। फिर रायपुर सादड़ी और सविराव होते हुए आप जालौर पधारे।

बहुत वर्षों के बाद आपका पदार्पण हुआ था अतएव जनता में भारी उत्साह था। फलानी के चौक में आपके सार्वजनिक प्रवचन होने लगे। दान, पुण्य परोपकार आदि सत्कृत्य खूब हुए।

तत्पश्चात् आप मोकलसर पधारे। वहाँ स्थिरवास विराजित स्थविर मुनि श्रीउत्तमचन्दजी म० * श्रीबागमलजी म श्रीनारायणदासजी म० तथा श्रीप्रताप मलजी म० मौजूद थे। उन्होंने आपका हार्दिक स्वागत किया। यह सम्मिलन बड़ा ही आनन्दमय रहा। वहीं होली चातुर्मास हुआ।

** अमरगच्छ में भी उत्तमचन्दजी म० एक उत्तम सन्त हो गये हैं। व्यतिपद से अंधे लोगों को वे चुनौती दे गये कि धर्म से जाति का कोई संबंध नहीं। धर्म आत्मा का स्वरूप है और किसी जाति की बपौती नहीं है।*

उन्होंने नाथद्वारा के समीपवर्ती कांसा गांव में ब्यौर जाति में जन्म लिया था। पूज्य श्री पूनमचन्दजी म० के प्रशिष्य श्री प्रेमचन्दजी म का नाथद्वारा में उपदेश सुनकर उन्हें विरक्ति हुई। उस समय १६ वर्ष की उनकी उम्र थी। इस पवित्र आत्मा ने सं० १६५६ में दीक्षा अंगीकार की। संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के विद्वान् बने। स्वाध्याय के बड़े प्रेमी थे। आपने मारवाड़ के छोटे-छोटे ग्रामों में जैनधर्म का खूब प्रचार किया। वृद्धावस्था में भी स्वाध्याय में लीन रहा करते थे। स्थूल शरीर गौर वर्ण विशाल भाल और लम्बी भौंहें थीं। श्री बागमलजी म० आपके शिष्य थे जो मोकड़ों के अच्छे जानकार और बड़े सेवाभावी थे। गुरु शिष्य बहुत वर्षों तक मोकलसर में विराजे। स्वभाव से शान्त आगमों के ज्ञाता नवनामन्दी और परमात्मपरायण थे। आपका पवित्र जीवन जातिवाद का मूर्तिमान् खण्डन था।

वहाँ से आप ठाणा ६ से कूसाबास की ओर विहार किया। फिर चरितनायकजी ठाणा २ भखिल ग्राम में विराजित ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रीदयालचन्दजी म० की सेवा में पधार गये। गुरुभ्राताओं का वह नेहमिलन वर्णनीय था। लम्बे वर्षों के पश्चात् मिलाप हुआ था। कुछ दिन वहीं ठहर कर दहीपड़ा पधारे। समदड़ी संघ को आपके पधारने का समाचार मिला तो करीब सौ-सवा सौ भाइ-बहिनें दर्शनार्थ आ पहुँचे। संघ की प्रार्थना स्वीकार करके आप समदड़ी पधारे तो लोगों में अपूर्व उत्साह आ गया। खूब दया-पौषध आदि धर्माराधना हुई। व्याख्यानों में श्रोताओं की खूब भीड़ होने लगी। पुरानी प्रीति उमड़ पड़ी। लोग भावविभोर होकर गुरुदेव की सेवा करने लगे।

समदड़ी से जब आपश्री बालोतरा पधारे तो एक उलझन आ पड़ी। आपके पदार्पण के समय ही पं० मुनि श्री भीमराजजी म० भी पधारे। साम्प्रदायिक भेद के कारण न परस्पर मिलाप हो सका और न व्याख्यान ही। अजमेर-सम्मेलन के नियमानुसार दो व्याख्यान नहीं हो सकते थे। दोनों पृथक्-पृथक् स्थानों में विराजे थे। अतः संघ में चर्चा चल पड़ी कि व्याख्यान किसका कराया जाय? संघ में इस प्रश्न को लेकर मतभेद हो गया और परिणाम यह हुआ कि दो दिन तक दोनों मुनिराजों में से किसी को भी व्याख्यान के लिए आमन्त्रित न किया गया। दोनों बड़े-बड़े विद्वान् मुनिराज नगर में मौजूद थे मगर श्रीसंघ अपने मतभेद के कारण उनके व्याख्यान से लाभ नहीं उठा सकता था। बहुतों को यह स्थिति बहुत अखरी। अन्त में संघ ने यह निर्णय किया कि पर्यायज्येष्ठ मुनि पहले व्याख्यान फरमावें। इस निर्णय के अनुसार गुरुदेव व्याख्यान फर्माने लगे।

उसी समय सिवाने से चौमासे की प्रार्थना करने के लिए एक प्रतिनिधिमंडल उपस्थित हुआ। यद्यपि जोधपुर आदि स्थानों की भी प्रार्थना थी, तथापि चरित नायकजी ने सिवाने वालों को मर्यादानुसार स्वीकृति दे दी। यथासमय विहार कर मोकमपुर होते हुए आप सिवाना पधारे और वि० सं० १९९६ के चातुर्मास में विराजे।

'अमरसूरि' काव्य पर चर्चा—

साहित्यविशारद पं० र० मन्त्री श्रीपुष्करमुनिजी म० ने 'अमरसूरि' काव्य लिखा है। संस्कृतभाषा में पद्यमय रचना है। उसमें श्री अमरसिंहजी महाराज का सारगर्भित संक्षिप्त जीवनचरित है। आचार्यवर्य अमरसिंहजी म० ने मारवाड़ प्रान्त में किस प्रकार धर्मप्रचार किया किस प्रकार यतियों को चुनौती देकर शास्त्रार्थ किया और किस प्रकार जैनधर्म का झंडा फहराया आदि बातों का उसमें दिग्दर्शन कराया गया है। निम्नलिखित पंक्ति, जो उस समय प्रसिद्ध हो गई थी आपके उक्त प्रभाव को प्रमाणित करती है—

यतिधर्म जाता रहा, पड़ा रह गया पाट।
उपाश्रय ऊभा हुआ, थानक लागे ठाठ॥

यह पुस्तक सब वर्ष सिवाने में स्थित श्रीजिनजयसागर सूरिजी को भखरी। खास तौर से पुस्तक में लिखित निम्नोक्त बातें सह्य नहीं हुई—

'अमरसिंहजी महाराज शास्त्रार्थ के मैदान में आये। पण्डितों ने पूज्यश्री के मन्तव्यों का खण्डन करने के लिए बड़ी तोड़ कोशिश की मगर उन्होंने उनकी समस्त कुयुक्तियों को शास्त्र के अकाट्य प्रमाणों से खंडित कर दिया। मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधनी चाहिए, यह सिद्ध करने के लिए आचार्य महाराज ने अभिमत शास्त्रों के प्रमाण प्रस्तुत किये और अन्यमतों के ग्रंथों की साक्षी भी दी। वेद व्यास द्वारा रचित शिवपुराण का प्रमाण दिया—

हस्ते पात्रं दधानाश्च तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः।
मलिनान्येव वासांसि, धारयन्त्यल्पभाषिणः॥

शिवपुराण के अनुसार जैनमुनि का यह वेष है, जिससे स्पष्ट है कि वे मुख पर वस्त्र धारण करते थे।

श्रीदेवसूरि ने लिखा है—मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्।

इसमें मुखवस्त्रिका को मुख पर बाँध कर रजोहरण का प्रतिलेखन करने का विधान साफ है। और

कन्नेट्ठियाए वा मुहणंतगेणं वा विणा इरियं पडिक्कमे मिच्छादुक्कडं पुरिमड्ढं वा।

मुखवस्त्रिका के कान में डाले बिना या मुखवस्त्रिका के बिना ईर्या प्रतिक्रमण करने से साधु को मिथ्या दुष्कृत या पुरिमार्द्ध का दंड आता है।

इत्यादि प्रमाण उपस्थित करके आचार्य ने जब मुखवस्त्रिकाबंधन का विधान सिद्ध किया तो यति लोग "नौ दो ग्यारह हो गये।"

जयसागर सूरिजी ने इस प्रकरण को सुधार या निकाल देने की सूचना की; और साथ ही कहला भेजा कि अगर यह संशोधन नहीं किया गया तो शास्त्रार्थ के मैदान में आना होगा।

गुरुदेव ने उत्तर में कहला दिया—पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है, सब प्रमाणयुक्त है। उसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं। अगर सूरिजी का शास्त्रार्थ

प्रिय हैं तो हम तैयार हैं। वह सब चाहें, अपनी बीम की सुजली मिटा लें।

इस उत्तर को पाकर सूरिजी ने मौन धारण कर लिया। फिर तो समय समय पर मिलते भी रहे, मगर काव्य के सम्बन्ध में कभी एक अक्षर न बोले।

दुर्भिक्ष के लक्षण—

किसी निमित्तवत्ता का कथन है—

परमाते गहडम्बरो, दुपेरो तपन्त।
राते तारा निर्मला, चेला करो गच्छन्त॥

यह हैं दुष्काल के चिह्न जो सिवाना-चातुर्मास के समय दिखलाई पड़ते थे। यों तो मरुधरा दुर्भिक्ष के लिए अभ्यस्त है, जैसा कि एक कवि ने कहा है—

पग पूगल सिर मेड़ते, उदर बीकानेर।
भूल्यो चूक्यो जोधपुर, ठावो जैसलमेर॥

दुष्काल के पाँव पूगल प्रदेश में हैं तो सिर मेड़ता में और पेट बीकानेर में है। कभी जोधपुर पर उसकी क्रूर दृष्टि पड़ जाती है, मगर जैसलमेर में तो उसका अड्डा ही है। और भी—

मगसिर वाय न बाजिया, रोयणी तपी न जेठ।
क्यों कन्था घर्षि भींपड़ी, रहेंगे बड़ला हेठ॥

इन सब लक्षणों के रहते उस वर्ष दुष्काल पड़ा। महाराजा उम्मेदसिंहजी ने मारवाड़ के किसानों को हल और बैल दिलवाये। कितने ही किसानों को हमने गधों और ऊँटों से हल चलाते देखा। राज्य की ओर से लाखों रुपयों से गरीबों की सहायता की गई। इसके अतिरिक्त श्रावकसंघों की ओर से भी अच्छी सहायता प्रदर्शित की गई।

अड़तालीसवाँ चातुर्मास—

चातुर्मास समाप्त होने पर मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपद् को सिवाने से विहार कर गुरुदेव मोकलसर पधारे। सन्तों का मिलाप होने से वहाँ कुछ दिन ठहर कर खंडप और मांवरी पधारे। मांवरी छोटा-सा ग्राम होने पर भी वहाँ की जनता ने गहरी श्रद्धा भक्ति प्रकट की।

पतिधर्म आता रहा, पढ़ा रह गया पाठ।
उपाश्रय उभा हुआ, थानक लागे ठाठ॥

यह पुस्तक उस वर्ष सिवाने में स्थित श्रीजिनजयसागर सूरिजी को भजदी। खास तौर से पुस्तक में लिखित निम्नोक्त बातें सह्य नहीं हुई—

'अमरसिंहजी महाराज शास्त्रार्थ के मैदान में आये। यतियों ने पूज्यश्री के मन्तव्यों का खण्डन करने के लिए भी जोड़ कोशिश की, मगर उन्होंने उनकी समस्त कुयुक्तियों को शास्त्र के अकाट्य प्रमाणों से खंडित कर दिया। मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधनी चाहिए, यह सिद्ध करने के लिए आचार्य महाराज ने अभिप्रेत शास्त्रों के प्रमाण प्रस्तुत किये और अन्यमतों के ग्रंथों की साक्षी भी दी। वेद व्यास द्वारा रचित शिवपुराण का प्रमाण दिया—

हस्ते पात्रं दधानाश्च तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः।
मलिनान्येव वासांसि, धारयन्त्यल्पभाषिणः॥

शिवपुराण के अनुसार जैनमुनि का यह वेष है, जिससे स्पष्ट है कि वे मुख पर वस्त्र धारण करते थे।

श्रीदेवसूरि ने लिखा है—मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्।

इसमें मुखवस्त्रिका को मुख पर बाँध कर रजोहरण का प्रतिलेखन करने का विधान साफ है। और

कण्णेट्ठियाए वा मुहणंतगेणं वा विणा इरियं पडिक्कमे मिच्छादुक्कडं पुरिमड्ढं वा।

मुखवस्त्रिका के कान में डाले बिना या मुखवस्त्रिका के बिना ईर्यो प्रतिक्रमण करने से साधु को मिथ्या दुष्कृत या पुरिमाध का दंड आता है।

इत्यादि प्रमाण उपस्थित करके आचार्य ने जब मुखवस्त्रिकाबंधन का विधान सिद्ध किया तो यति लोग "नौ दो ग्यारह हो गये।"

जयसागर सूरिजी ने इस अवतरण को सुधार या निकाल देने की सूचना दी, और साथ ही कहला भेजा कि अगर यह संशोधन नहीं किया गया तो शास्त्रार्थ के मैदान में आना होगा।

गुरुदेव ने उत्तर में कहला दिया—पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है, सब प्रमाणयुक्त है। उसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं। अगर सूरिजी को शास्त्रार्थ

बुढ़िया की बात से आश्चर्य होना स्वाभाविक था। कुछ कुतूहल भी हुआ। सहानुभूति भी जागी। उपस्थित लोगों में से एक ने पूछा—तुम्हारा लड़का कब और कहाँ साधु बना है।

बुढ़िया ने तीखे स्वर में कहा—कब और कहाँ बना, यह पूछने की अब आवश्यकता नहीं। जल्दी सौंप दो नहीं तो लाठियाँ चलेंगी और हम जबर्दस्ती बाँध कर ले जाएँगे।

बुढ़िया को आश्वासन दिया गया। फिर उससे पूछा—अच्छा पहिचान सकती हो अपने लड़के को? इन तीन में से कौन तुम्हारा लड़का है।

बुढ़िया थोड़ी देर के लिए हकबका गई। फिर गौर से देख कर बोली—यह बीच में बैठा जवान साधु मेरा बेटा है।

बीच में श्रीपुष्कर मुनिजी म० बैठे थे। वह सोचने लगे-यह बुढ़िया मेरी नयी माता कैसे पैदा हो गई? होगी किसी पूर्व भव की।

इतने में बुढ़िया के साथ की टोली उठ खड़ी हुई। लाठियाँ और रस्सियाँ सँभाल कर ले जाने को वे तैयार हुए कि एक सज्जन ने उन्हें फटकारा और पिठ लाया। कहा—ऐसी मूर्खता करने से बेटा नहीं मिल सकता।

तब बुढ़िया ने अनुनय के स्वर में कहा—बेटा तू अपने मन से ही यह पट्टी उतार कर फेंक दे और मेरे साथ आ जा। घर चल कर तुझे मन्दिर में भगवान का पुजारी बना दूँगी। इससे तेरा कल्याण होगा।

पुत्रवियोग की व्यथा से बुढ़िया का हृदय आहत था। उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली और देखते-देखते वह मूर्छित हो गई।

जब वह होश में आई तो उसे मिठास के साथ समझाया गया कि—'यह साधु मारवाड़ी नहीं मेवाड़ी हैं। नान्देशमा गाँव में इनका जन्म हुआ है। तुम्हारा लड़का सं० ८६ में भागा है परन्तु ये सं० ८१ में ही जालौर में दीक्षित हो चुके थे।' उसे दीक्षा की पत्रिका भी दिखला दी गई। तब कहीं उसे विश्वास हुआ कि वास्तव में यह मुनि मेरा बेटा नहीं है। वह अपने दलबल के साथ रवाना हो चली गई।

चातुर्मास में वहाँ के लूकड़परिवार द्वारा स्थापित श्रीअमर जैन ज्ञान भंडार के शास्त्रों और ग्रंथों से मुनिमण्डल ने खूब लाभ उठाया। चातुर्मास में धर्मध्यान बहुत अच्छा हुआ; मगर अन्तिम दिनों में चरितनायकजी अस्वस्थ हो गये जिससे कुछ दिन अधिक ठहरना पड़ा। स्वस्थ होने पर कुशपाल के साथ विहार हुआ। आप सिरोही और सादड़ी होते हुए मेवाड़ में पधार गये।

पाली के प्रांगण में—

आप पाली पधारे तो भक्त श्रावकों का उत्साह दर्शनीय था। एक अपूर्व हलचल-सी मच गई। एक हजार के लगभग श्रावकों और श्राविकाओं ने अगवानी की। उस विशाल जनसमूह को देख कर मुझे बड़ा विस्मय हुआ। जयनादों से आकाश गूंज रहा था। बहिनें गुरुमहिमा के गीत गा रही थीं। नगरप्रवेश धूमधाम से हुआ। व्याख्यान की जाहिर सूचना की गई। श्रोताओं का जमघट होने लगा। उस समय पाली में भारतरत्न शतावधानी मुनि श्रीरत्नचन्द्रजी म० ठाणा ४ पंजाब की ओर से पधारे हुए थे। एक साथ व्याख्यान होता था। रात्रि में गंभीर तत्त्वचर्चा होती और स्थानीय शास्त्रज्ञ श्रावक भी उसमें भाग लेते थे।

मुनियों का स्नेहसम्मिलन—

चरित्रनायक पाली से जोधपुर पधारे। उस समय वहां जयगच्छीय प्रवर्त्तक मुनि श्री हजारीमलजी म०, कविवर श्री चौथमलजी म० प्रभृति तथा श्री नारायणदासजी म० आदि सन्त विराजमान थे। सोमागमंजी के प्रसिद्ध डाक्टर मथुरादास के हाथों श्री नारायणदासजी म० की आँख का ऑपरेशन हुआ। उस समय अन्यान्य स्त्री-पुरुषों की आँखों के भी ऑपरेशन हुए थे। मुनिश्री की आँख का ऑपरेशन सफलतापूर्वक हो गया, किन्तु आँख की ज्योति मन्द पड़ गई। सभी मुनिराज उनकी सेवा में उपस्थित रहे। पारस्परिक प्रेम के कारण ज्ञानचर्चा बड़ी अच्छी होती रही। गुरुदेव ने वहीं संघ के भावभरे संघ की भावना स्वीकार कर चातुर्मास की स्वीकृति दी। यथासमय जोधपुर से विहार करके आप संघ पधारे और वि० सं० १९९७ का चौमासा वहीं व्यतीत किया।

बेटे की खोज में माता—

संघ-चातुर्मास में एक अजीब घटना घटी। आश्विन मास और प्रातःकाल करीब आठ बजे का समय था। एक वृद्धा माताजी ने अपने परिवार के दस-बीस व्यक्तियों के साथ स्थानक में प्रवेश किया। मुनिगण अपने-अपने प्रातःकालीन स्वाध्याय आदि कृत्यों में संलग्न थे। यों तो सन्तों के समीप दर्शनार्थी जन आते-जाते ही रहते हैं, मगर वह टोली कुछ भिन्न प्रकार की थी। उन लोगों के चेहरे से श्रद्धा-भक्ति प्रकट नहीं होती थी, रोष और घृणा के भाव टपक रहे थे। आते ही उन्होंने स्थानक के द्वार पर कब्जा कर लिया। तत्पश्चात् उस वृद्धा ने आँखों से अंगार निकालते हुए कहा—मेरा बेटा साधु बना हुआ है। उसे फुसला कर साधु बना लिया गया है। उसी को लेने के लिए मैं आई हूँ। भला चाहो तो उसे मुझे सौंप दो।

बुढ़िया की बात से आश्चर्य होना स्वाभाविक था। कुछ कुतूहल भी हुआ। सहानुभूति भी जागी। उपस्थित लोगों में से एक ने पूछा—तुम्हारा लड़का कब और कहाँ साधु बना है।

बुढ़िया ने तीखे स्वर में कहा—कब और कहाँ बना, यह पूछने की अब आवश्यकता नहीं। जल्दी सौंप दो नहीं तो लाठियाँ चलेंगी और हम जबर्दस्ती बाँध कर ले जाएँगे।

बुढ़िया को आश्वासन दिया गया। फिर उससे पूछा—अच्छा पहिचान सकती हो अपने लड़के को? इन तीन में से कौन तुम्हारा लड़का है।

बुढ़िया थोड़ी देर के लिए हक्का गई। फिर गौर से देख कर बोली—यह बीच में बैठा जवान साधु मेरा बेटा है।

बीच में श्रीपुष्कर मुनिजी म० बैठे थे। वह सोचने लगे-यह बुढ़िया मेरी नयी माता कैसे पैदा हो गई? होगी किसी पूर्व भव की।

इतने में बुढ़िया के साथ की टोली उठ खड़ी हुई। लाठियाँ और रस्सियाँ सँभाल कर ले जाने को वे तैयार हुए कि एक सज्जन ने उन्हें फटकारा और बिठलाया। कहा—ऐसी मूर्खता करने से बेटा नहीं मिल सकता।

तब बुढ़िया ने अनुनय के स्वर में कहा—बेटा, तू अपने मन से ही यह पट्टी उतार कर फेंक दे और मेरे साथ आ जा। घर चल कर तुझे मन्दिर में भगवान का पुजारी बना दूँगी। इससे तेरा कल्याण होगा।

पुत्रवियोग की व्यथा से बुढ़िया का हृदय आहत था। उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली और देखते-देखते वह मूर्छित हो गई।

जब वह होश में आई तो उस विश्वास के साथ समझाया गया कि—'यह साधु मारवाड़ी नहीं मेवाड़ी हैं। मान्दरामा गाँव में इनका जन्म हुआ है। तुम्हारा लड़का सं० ८८ में भागा है, परन्तु ये सं० ८१ में ही जालौर में दीक्षित हो चुके थे।' उसे दीक्षा की पत्रिका भी दिखला दी गई। तब कहीं उसे विश्वास हुआ कि वास्तव में यह मुनि मेरा बेटा नहीं है। वह अपने दलबल के साथ रवाना हो चली गई।

चातुर्मास में वहाँ के सू० कानरीरचार द्वारा स्थापित मीठामर जैन ज्ञान भंडार के शास्त्रों और ग्रन्थों से मुनिमण्डल ने खूब लाभ उठाया। चातुर्मास में धर्मध्यान बहुत अच्छा हुआ मगर अन्तिम दिनों में चरित्रनायकजी अस्वस्थ हो गये जिससे कुछ दिन अधिक ठहरना पड़ा। स्वस्थ होने पर धूमधाम के साथ विहार हुआ। आप सविराव और सादड़ी होते हुए मेवाड़ में पधार गये।

उनंचासवाँ चातुर्मास—

इस बार मेवाड़ पधारने का मुख्य प्रयोजन महासती श्री मदनकुँवरजी म० को दर्शन देना था। गोगुंदा में विराजित श्री भूलकुँवरजी म० तथा सेरा प्रान्त में धर्मप्रचार करने वाली श्री प्रहरकुँवरजी म० को भी आपने दर्शन दिये। बगड़ूंदा होकर आप शीघ्र ही उदयपुर पधारे। महासती मदनकुँवरजी म० का चारित्र बड़ा ही उज्ज्वल था और साथ ही ज्ञान भी उच्चकोटि का था। एक बार पूज्य मुन्नालालजी म० ने व्याख्यान के समय उदयपुर में चार से ५० प्रश्न पूछे थे और आपने उन सब के सप्रमाण उत्तर दिये थे।

विदुषी महासती श्री सोहनकुँवरजी म० के समीप उस समय श्री कन्हैया लालजी बरडिया के पुत्र स्वर्गीय जीवसिंहजी की धर्मपत्नी तीजबाई दीक्षा लेने की भावना से शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त कर रही थीं। उनके नव वर्षीय सुपुत्र थे बाबू धन्नालाल। इस कोमल वय में उनकी भी भावना संयम धारण करने की हुई। नन्हें से बालक के पवित्र चित्त पर माता के सुसंस्कारों का तथा श्री सोहनकुँवरजी म० के सदुपदेशों का प्रभाव पड़ा था और वह पाँच—छह माह तक गुरुदेव की सेवा में रह चुका था। उसके संस्कार उत्तम और भावना पवित्र थी। भगिनी श्रीसुन्दर बाई १४ वर्ष की वय में कुछ वर्षों पहले ही दीक्षा अंगीकार कर चुकी थीं। वह अब महासती श्रीपुष्पवतीजी के नाम से विख्यात हैं और संस्कृत,प्राकृत आदि भाषाओं की तथा व्याकरण साहित्य धर्म न्याय आदि विषयों की विदुषी हैं।

उदयपुर से मारवाड़ की ओर विहार करने पर श्री हेमराजजी म के स्वर्गवास के समाचार मिले। तब गुरुदेव ढुंढाड़ा पधारे और कुछ दिन वहीं विराजे। इसी बीच श्री तीजबाई बरडिया और बाबू धन्नालाल भी आ पहुँचे। दीक्षा लेने की प्रबल भावना व्यक्त की। खंडप—श्री संघ ने सेवा में उपस्थित होकर अपने यहाँ दीक्षा करवाने का अनुरोध किया। तब आपने खंडप की ओर विहार किया। फाल्गुन शु तृतीया को दीक्षा हुई।

भावकों की इच्छा बड़ा आडम्बर करने की थी पर चरितनायकजी ने मनाई कर दी और सादगी के साथ दीक्षासमारोह सम्पन्न हुआ। दीक्षा के समय माता ने जब आज्ञा प्रदान की तो दर्शकों के नेत्र अश्रुप्लावित हो गये। कोमल बालक को कठोर राजपथ के पथ का पथिक बनने की अनुमति देने वाली वीरांगना माता की सभी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

बाबू धन्नालाल दीक्षा लेने पर देवेन्द्र मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए। ऊँचा कद, गौर वर्ण प्रभावशाली चेहरा और लघु वय दर्शनार्थियों का एक निराला

आकर्षण उत्पन्न करने लगी। समझ-समझ कर इधर उधर से लोग आने लगे। इस भीड़ का देख चरितनायकजी ने सत्वर से विहार कर दिया। श्री तीजबाई स्वयं भी आषाढ़ मास में उदयपुर में विदुषी महासती श्री सोहनकुंवरजी म० के सन्निकट दीक्षित हो गई। आपका शुभ नाम प्रभावतीजी रक्खा गया।

प्रसिद्धवक्ताजी से मिलाप—

जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी म० १४ ठाणा से मोकलसर पधारे तो चरितनायकजी भी मनवांछित मुनि के साथ वहाँ पधार गये। परस्पर घनिष्ठ प्रेम रहा। सम्मिलित व्याख्यान हुआ। श्री देवेन्द्र मुनि को देखकर जैनदिवाकरजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। कुछ दिन विराजने के बाद उन्होंने आहोर की ओर और चरितनायकजी ने समदड़ी की ओर विहार किया।

उदार सेवा—

श्री दयालचन्द्रजी म० के शिष्य मुनि श्री हेमराजजी जब बहुत बीमार हुए तो साथावास से श्री शार्दूलसिंहजी म० ने श्री रूपचन्द्रजी म० को तुरन्त ढूँढ़ाके भेजा। आमपुर की ओर से जैनदिवाकरजी भी पधार गये। चरितनायकजी उनके स्वर्गवास के पश्चात् पहुँच पाये। श्री शार्दूलसिंहजी म० भी बहुत दिनों तक सेवा में विराजे।

श्री शार्दूलसिंहजी म० का चौमासा पाली में निश्चित हुआ था मगर रूपचंदजी म० की अस्वस्थता के कारण समदड़ी में चातुर्मास हुआ। श्री शार्दूलसिंहजी म० ने श्री दयालचन्द्रजी म० की सेवा का खूब लाभ उठाया।

समदड़ी चातुर्मास के समय वहाँ ज्ञानसागरजी नामक मूर्तिपूजक मुनि थे। वह जब कभी हम छोटे साधुओं को देखते तो अपने पास बुलाने का प्रयत्न करते। बार-बार कहने पर एक दिन मैं उनके पास चला गया तो उन्होंने प्रलोभनों का जाल फैलाना आरम्भ किया। कहा—मेरे पास आ जाओ या मेरे गुरुजी के पास चले आओ।

मैं चकित-सा रह गया। अन्त में कहा—ठहर जाइए, मैं अपने गुरुजी से पूछ कर उत्तर दूंगा।

यह उत्तर सुनकर वह मेरी ओर देखते रह गये और मैं अपने स्थान पर आ गया। गुरुदेव से इस घटना का जिक्र किया तो बोले—भैया, एस लोगों को 'दूरमा परिवजए!' गुरुदेव ने बाद में गुरुजी के लिए उन्हें उलाहना दिया।

उनंचासवाँ चातुर्मास—

इस बार मेवाड़ पधारने का मुख्य प्रयोजन महासती श्री मदनकुँवरजी म० को दर्शन देना था। गोगुंदा में विराजित श्री फूलकुँवरजी म० तथा सेरा प्रान्त में धर्मप्रचार करने वाली श्री प्रहलदकुँवरजी म० का भी आपने दर्शन दिये। बगडुंदा होकर आप शीघ्र ही उदयपुर पधारे। महासती मदनकुँवरजी म० का चारित्र बड़ा ही उज्ज्वल था और साथ ही ज्ञान भी उच्चकोटि का था। एक बार पूज्य मुन्नालालजी म० ने व्याख्यान के समय उदयपुर में चार से ५० प्रश्न पूछे थे और आपने उन सब के सप्रमाण उत्तर दिये थे।

विदुषी महासती श्री सोहनकुँवरजी म० के समीप उस समय श्री कन्हैया लालजी बरड़िया के पुत्र स्वर्गीय जीवनसिंहजी की धर्मपत्नी तीजबाई दीक्षा लेने की भावना से शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त कर रही थीं। उनके नव वर्षीय सुपुत्र थे बाबू धन्नालाल। इस कोमल वय में उनकी भी भावना संयम धारण करने की हुई। नन्हें से बालक के पवित्र चित्त पर माता के सुसंस्कारों का तथा श्री सोहनकुँवरजी म० के सदुपदेशों का प्रभाव पड़ा था और वह पाँच—छह माह तक गुरुदेव की सेवा में रह चुका था। उसके संस्कार उत्तम और भावना पवित्र थी। भगिनी श्रीसुन्दर बाई १४ वर्ष की वय में कुछ वर्षों पहले ही दीक्षा अंगीकार कर चुकी थीं। वह अब महासती श्रीपुष्पवतीजी के नाम से विख्यात हैं और संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं की तथा व्याकरण साहित्य धर्म न्याय आदि विषयों की विदुषी हैं।

उदयपुर से मारवाड़ की ओर विहार करने पर श्री हेमराजजी म० के स्वर्गवास के समाचार मिले। तब गुरुदेव दुंदाड़ा पधारे और कुछ दिन वहीं विराजे। इसी बीच श्री तीजबाई बरड़िया और बाबू धन्नालाल भी आ पहुँचे। दीक्षा लेने की प्रबल भावना व्यक्त की। खंडप—श्री संघ ने सेवा में उपस्थित होकर अपने यहाँ दीक्षा करवाने का अनुरोध किया। तब आपने खंडप की ओर विहार किया। फाल्गुन शु० तृतीया को दीक्षा हुई।

भावकों की इच्छा बड़ा आडम्बर करने की थी पर चरितनायकजी ने मनाई कर दी और सादगी के साथ दीक्षासमारोह सम्पन्न हुआ। दीक्षा के समय माता ने जब आज्ञा प्रदान की तो दर्शकों के नेत्र अश्रुप्लावित हो गये। कोमल बालक को कठोर साधना के पथ का पथिक बनने की अनुमति देने वाली वीरांगना माता की सभी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

बाबू धन्नालाल दीक्षा लेने पर देवेन्द्र मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए। ऊँचा कद, गौर वर्ण, प्रभावशाली चेहरा और लघु वय दर्शनार्थियों को एक निराला

गुरुदेव के साथ हमने हल्दीघाटी देखी और आगे बढ़े तो खमनौर पहुँच गये। वहाँ जैनों की अच्छी आबादी है। गुरुदेव के पधारने से दर्शनार्थियों का मेला लग गया। सेठ डालचन्दजी आदि ने सेवा का लाभ उठाया। वहाँ से विहार करके आप नाथद्वारा पधारे।

दीक्षाप्रसंग—

उदयपुर पहुँचने पर वहाँ के सेठ नन्दलालजी रांका के सुपुत्र श्री नाहरसिंहजी ने संसार से विरक्त होकर संयम धारण करना चाहा। परन्तु पारिवारिक जनों ने जब अनुमति न दी तो स्वयं ही साधुवेष धारण कर लिया और स्वयं ही 'करेमि भंते' का पाठ पढ़ कर छोटी दीक्षा अंगीकार कर ली। उनकी धर्मपत्नी श्री कोयलबाई की दीक्षा धूमधाम से सम्पन्न हुई। कुटुम्बी जनों ने यद्यपि बाधा उत्पन्न की, किन्तु आन्तरिक विरक्ति उत्पन्न हो जाने के पश्चात् किसी को भी गार्हस्थिक बन्धनों में बाँध कर नहीं रक्खा जा सकता। नाहरसिंहजी का दीक्षित नाम श्री शान्ति मुनि रक्खा गया और श्री कोयल बाई श्रीमतीजी के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

दीक्षा के पश्चात् अत्यन्त आग्रह के साथ चौमासे की प्रार्थना की, मगर गुरुदेव ने यही सापेक्ष वचन दिया कि यदि मेवाड़ में रहे तो देखा जायगा और यदि बाहर चले गये तो अन्यत्र कहीं चौमासा होगा।

तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर कांकरोली देवगढ़ होते हुए ब्यावर पधारे। उस समय ब्यावर में पूज्य श्री खूबचन्दजी म० तथा प्रवर्त्तक श्री हजारीमलजी म० विराजमान थे। पारस्परिक स्नेह सम्मेलन अच्छा रहा। पीपलिया बाजार के स्थानक में ठहरे। व्याख्यानों में जनता अच्छी संख्या में उपस्थित होती थी। कुछ दिन विराज कर आप भीमाज की ओर पधारे। खुशालपुरा पधारे तो पीपाड़ भीमाज रायपुर आदि के श्रावक चौमासे की भावना लेकर उपस्थित हुए।

रायपुर में धर्मजाग्रति—

धार्मिक जाग्रति करना ही जैन मुनियों के जीवन का लक्ष्य होता है। जहाँ कहीं धर्म की उन्नति होती दीखती है वे वहीं पहुँच जाते हैं। अनीति अधर्म दुर्व्यसन, कुरूढ़ि आदि अमंगलकर अनिष्टों का दूर करके वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन को अभ्युदय की ओर ले जाने में वे अपने सामर्थ्य की सार्थकता मानते हैं। गुरुदेव इसी मिशन को लेकर भारत के विभिन्न प्रान्तों में विचरण कर रहे थे। धर्म का शंखनाद करते आधी शताब्दी बिता चुके थे। किसी समय का तरुण तपस्वी अब शरीर से वृद्ध दिखाई देता था पर पुरुषार्थ अब भी युवकों को लजाने वाला था।

पचासवाँ चातुर्मास—

समदड़ी का चातुर्मास सानन्द समाप्त करके आप सेवाड़ होते हुए सांडेराव पधारे तो वहाँ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशीरामजी म० आदि सन्तों से मिलाप हुआ। 'स्थानक' शब्द के सम्बन्ध में कुछ चर्चा चली तो पंजाबकेसरीजी को उसका युक्तिसमन्वित अर्थ स्वीकार करना पड़ा। तत्पश्चात् आप सादड़ी पधारे तो वहाँ पंजाबी मुनि भागचन्दजी एवं पं० मुनि श्री त्रिलोकचन्दजी म० का सम्मिलन हुआ। बड़ा स्नेहमय व्यवहार रहा।

चरितनायकजी के सदुपदेश के प्रभाव से श्रावकों में धार्मिक जागृति आई और एक शिक्षासंस्था स्थापित करने का निश्चय किया गया। वही निश्चय आगे चल कर लोंकाशाह जैन गुरुकुल के रूप में कार्यान्वित हुआ।

सादड़ी से विहार कर गुरुदेव राणकपुर होते हुए सेरा प्रान्त में पधारे। जब जब आपका इस प्रान्त में पदार्पण होता एक हलचल-सी मच जाती। जब आप पदराडा पधारे तो उदयपुर से विहार कर महासती श्री सोहनकुँवरजी म० भी वहाँ पधार गईं।

पदराडा में गुरु महाराज ने एक दिन प्रवचन में स्वावलम्बन और स्वाधीनता का महत्त्व समझाया। इस प्रवचन का मेरे चित्त पर गहरा असर हुआ। उस समय मेरे सिर पर लम्बे लम्बे भूरे केश चमक रहे थे। अब तक पाँच बार गुरु महाराज ने मेरा केशलुंचन किया था पर इस बार मैंने इस विषय में स्वावलम्बी होने का निश्चय किया। मैं भस्म लेकर एकान्त में जा पहुँचा और हरी घास की तरह समस्त केशों को उखाड़ कर रख दिया। तब से आज तक मैं स्वयं ही अपना केशलोंच करता हूँ।

पदराडा से गोगुंदा होते हुए आपने हल्दीघाटी का मार्ग पकड़ा। हल्दीघाटी का नाम इतिहास के पन्नों में प्रकाशमान नक्षत्र की तरह चमक रहा है। यह वही हल्दीघाटी है जहाँ अल्पसंख्यक मेवाड़ी शूरवीरों ने विशाल मुगलसेना के साथ महाराणा प्रताप के नेतृत्व में वीरतापूर्वक युद्ध किया था। घाटी की मिट्टी का रंग हल्दी जैसा पीला होने के कारण यह हल्दीघाटी के नाम से प्रसिद्ध है। घाटी का चढ़ाव बहुत नहीं है और न अधिक सघन वृक्षावली ही है। घाटी के ऊपर अब एक साधारण चबूतरा बना है और आड़ के पास महाराणा प्रताप की मूर्ति है। घाटी के दोनों ओर करीब दो-दो मील की दूरी पर ग्राम बसे हैं। कहते हैं वह चबूतरा चेतक का स्मारक है। जो हो, परन्तु यहाँ वीर स्थान में ही मनुष्यों के दिल में वीरत्व की भावना का उदय होता है।

गुरुदेव के साथ हमने हल्दीघाटी देखी और आगे बढ़े तो समनौर पहुँच गये। वहाँ जैनों की अच्छी आबादी है। गुरुदेव के पधारने से दर्शनार्थियों का मेला लग गया। सेठ डालचन्दजी आदि ने सेवा का लाभ उठाया। वहाँ से विहार करके आप नाथद्वारा पधारे।

दीक्षाप्रसंग—

उदयपुर पहुँचने पर वहाँ के सेठ मन्नालालजी रांका के सुपुत्र श्री नजरसिंहजी ने संसार से विरक्त होकर संयम धारण करना चाहा। परन्तु पारिवारिक जनों ने जब अनुमति न दी तो स्वयं ही साधुवेष धारण कर लिया और स्वयं ही 'करेमि भंते' का पाठ पढ़ कर छोटी दीक्षा अंगीकार कर ली। उनकी धर्मपत्नी श्री कोयलबाई की दीक्षा धूमधाम से सम्पन्न हुई। कुटुम्बी जनों ने यद्यपि बाधा उत्पन्न की किन्तु आन्तरिक विरक्ति उत्पन्न हो जाने के पश्चात् किसी को भी गार्हस्थिक बन्धनों में बाँध कर नहीं रक्खा जा सकता। नजरसिंहजी का दीक्षित नाम श्री शान्ति मुनि रक्खा गया और श्री कोयल बाई श्रीमतीजी के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

दीक्षा के पश्चात् अत्यन्त आग्रह के साथ चौमासे की प्रार्थना की, मगर गुरुदेव ने यही सापेक्ष वचन दिया कि यदि मेवाड़ में रहे तो देखा जायगा और यदि बाहर चले गये तो अन्यत्र कहीं चौमासा होगा।

तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर कांकरोली देवगढ़ होते हुए ब्यावर पधारे। उस समय ब्यावर में पूज्य श्री खूबचन्दजी म० तथा प्रवर्तक श्री हजारीमलजी म० विराजमान थे। पारस्परिक स्नेह सम्मेलन अच्छा रहा। पीपलिया बाजार के स्थानक में ठहरे। व्याख्यानों में जनता अच्छी संख्या में उपस्थित होती थी। कुछ दिन विराज कर आप नीमाज की ओर पधारे। सुराणपुरा पधारे तो पीपाड़ नीमाज रायपुर आदि के श्रावक चौमासे की प्रार्थना लेकर उपस्थित हुए।

रायपुर में धर्मजाग्रति—

धार्मिक जागृति करना ही जैन मुनियों के जीवन का लक्ष्य होता है। जहाँ कहीं धर्म की जागृति होती दीखती है, वे वहीं पहुँच जाते हैं। अनीति अधम दुर्व्यसन इत्यादि आदि अधर्मजनक अनिष्टों को दूर करके वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन को अभ्युदय की ओर ले जाने में वे अपने सामर्थ्य की सार्थकता मानते हैं। गुरुदेव इसी मिशन को लेकर भारत के विभिन्न प्रान्तों में विचरण कर रहे थे। धर्म का शंखनाद करते आधी शताब्दी बीता चुके थे। किसी समय का तरुण तपस्वी अब शरीर से वृद्ध दिखाई देता था पर पुरुषार्थ अब भी युवकों को लजाने वाला था।

पचासवाँ चातुर्मास—

समदड़ी का चातुर्मास सानन्द समाप्त करके आप संडर होते हुए सादिराव पधारे तो वहाँ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशीरामजी म० आदि सन्तों से मिलाप हुआ। 'स्थानक' शब्द के सम्बन्ध में कुछ चर्चा चली तो पंजाबकेसरीजी को उसका व्युत्पत्तिजनित अर्थ स्वीकार करना पड़ा। तत्पश्चात् आप सादड़ी पधारे तो वहाँ पंजाबी मुनि भागचन्द्जी एवं पं० मुनि श्री त्रिलोकचन्द्जी म० का सम्मिलन हुआ। बड़ा स्नेहमय व्यवहार रहा।

चरितनायकजी के सदुपदेश के प्रभाव से श्रावकों में धार्मिक जागृति आई और एक शिक्षासंस्था स्थापित करने का निश्चय किया गया। वही निश्चय आगे चल कर लोंकाशाह जैन गुरुकुल के रूप में कार्यान्वित हुआ।

सादड़ी से विहार कर गुरुदेव राणकपुर होते हुए मेरा प्रान्त में पधारे। जब जब आपका इस प्रान्त में पदार्पण होता एक हलचल-सी मच जाती। जब आप पदराड़ा पधारे तो उदयपुर से विहार कर महासती श्री सोहनकुँवरजी म० भी वहाँ पधार गईं।

पदराड़े में गुरु महाराज ने एक दिन प्रवचन में स्वावलम्बन और स्वाधीनता का महत्त्व समझाया। इस प्रवचन का मेरे चित्त पर गहरा असर हुआ। उस समय मेरे सिर पर लम्बे लम्बे भूरे केश चमक रहे थे। अब तक पाँच बार गुरु महाराज ने मेरा केशलोंचन किया था पर इस बार मैंने इस विषय में स्वावलम्बी होने का निश्चय किया। मैं भस्म लेकर एकान्त में जा पहुँचा और हरी घास की तरह समस्त केशों को उखाड़ कर रख दिया। तब से आज तक मैं स्वयं ही अपना केशलोंच करता हूँ।

पदराड़ा से गोगुंदा होते हुए आपने हल्दीघाटी का मार्ग पकड़ा। हल्दीघाटी का नाम इतिहास के पन्नों में प्रकाशमान नक्षत्र की तरह चमक रहा है। यह वही हल्दीघाटी है जहाँ अल्पसंख्यक मेवाड़ी शूरवीरों ने विशाल मुगलदल के साथ महाराणा प्रताप के नेतृत्व में वीरतापूर्वक युद्ध किया था। घाटी की मिट्टी का रंग हल्दी जैसा पीला होने के कारण वह हल्दीघाटी के नाम से प्रसिद्ध है। घाटी का चढ़ाव बहुत नहीं है और न अधिक सघन वृक्षावली ही है। घाटी के ऊपर अब एक साधारण चबूतरा बना है और घोड़े के साथ महाराणा प्रताप की मूर्ति है। घाटी के दोनों ओर करीब दो-दो मील की दूरी पर ग्राम बसे हैं। कहते हैं यह चबूतरा चेतक का स्मारक है। जो हो, परन्तु वहाँ पाँव रखते ही मनुष्यों के दिल में वीरत्व की भावना का उदय होता है।

गुरुदेव के साथ हमने हल्दीघाटी देखी और आगे बढ़े तो खमनौर पहुँच गये। वहाँ जैनों की अच्छी आबादी है। गुरुदेव के पधारने से दर्शनार्थियों का मेला लग गया। सेठ शम्भूचन्दजी आदि ने सेवा का लाभ उठाया। वहाँ से विहार करके आप नाथद्वारा पधारे।

दीक्षाप्रसंग—

उदयपुर पहुँचने पर वहाँ के सेठ मन्नालालजी रांका के सुपुत्र श्री नजरसिंहजी ने संसार से विरक्त होकर संयम धारण करना चाहा। परन्तु पारिवारिक जनों ने जब अनुमति न दी तो स्वयं ही साधुवेष धारण कर लिया और स्वयं ही 'करेमि भंते' का पाठ पढ़ कर छोटी दीक्षा अंगीकार कर ली। उनकी धर्मपत्नी श्री कोयलबाई की दीक्षा धूमधाम से सम्पन्न हुई। कुटुम्बी जनों ने यद्यपि बाधा उपस्थित की किन्तु आन्तरिक विरक्ति उत्पन्न हो जाने के पश्चात् किसी को भी गार्हस्थिक बन्धनों में बाँध कर नहीं रक्खा जा सकता। नजरसिंहजी का दीक्षित नाम श्री शान्ति मुनि रक्खा गया और श्री कायल बाई श्रीमतीजी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

दीक्षा के पश्चात् अत्यन्त आग्रह के साथ चौमासे की प्रार्थना की, मगर गुरुदेव ने यही सापेक्ष वचन दिया कि यदि मेवाड़ में रहे तो देखा जायगा और यदि बाहर चले गये तो अन्यत्र कहीं चौमासा होगा।

तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर कांकरोली देवगढ़ होते हुए ब्यावर पधारे। उस समय ब्यावर में पूज्य श्री खूबचन्दजी म० तथा प्रवर्त्तक श्री हजारीमलजी म० विराजमान थे। पारस्परिक स्नेह सम्मेलन अच्छा रहा। पीपलिया बाजार के स्थानक में ठहरे। व्याख्यानों में जनता अच्छी संख्या में उपस्थित होती थी। कुछ दिन विराज कर आप नीमाज की ओर पधारे। गुलाबपुरा पधारे तो पीपाड़ नीमाज रायपुर आदि के श्रावक चौमासे की प्रार्थना लेकर उपस्थित हुए।

रायपुर में धर्मजाग्रति—

धार्मिक जागृति करना ही जैन मुनियों के जीवन का लक्ष्य होता है। जहाँ कहीं धर्म की उन्नति होती दीखती है वे वहीं पहुँच जाते हैं। अनीति अधम दुर्व्यसन कुरूढ़ि आदि धर्मनाशक अनिष्टों को दूर करके वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन को अभ्युदय की ओर ले जाने में वे अपने सामर्थ्य की सार्थकता मानते हैं। गुरुदेव इसी मिशन को लेकर भारत के विभिन्न प्रान्तों में विचरण कर रहे थे। धर्म का शंखनाद करते आधी शताब्दी बिता चुके थे। किसी समय का तरुण तपस्वी अब शरीर से वृद्ध दिखाई देता था, पर पुरुषार्थ अब भी युवकों को लजाने वाला था।

इस वर्ष रायपुर (मारवाड़) का चौमासा स्वीकार कर आप यहाँ पधारे। शान्ति मुनि का मासखमण तप आषाढ़ शुक्ला तृतीया से ही आरम्भ हो चुका था। पारणा के समय भक्तजनों का जमघट हो गया। दर्शनार्थियों का सुन्दर स्वागत किया गया।

रायपुर के ठाकुर साहब श्री गोविन्दसिंहजी ने महल में व्याख्यान करवाया और पारणा के प्रसंग पर मुनि श्री को राजमहल में ले गये। अनेक भाइयों ने मदिरा मांस के सेवन का तथा शिकार खेलने का त्याग किया।

बिलाड़ा की गायनमण्डली ने आकर धूम मचा दी। श्रीसंघ ने उसका भी समुचित सत्कार किया।

चौमासा सानन्द व्यतीत कर चरितनायकजी ने रायपुर से विहार किया और जूठा, पीपलिया होकर बिलाड़े की ओर पधारे।

इक्यावनवां चातुर्मास—

मरुधरा में कभी-कभी पानी अमृत से भी अधिक मूल्यवान् होता है। बिलाड़ा के मार्ग पर मारवाड़ की बाणगंगा आती है। वहाँ सदैव पानी रहता है, अतएव दूर-दूर से प्यासे हिरण आदि वनचर पशु और विविध प्रकार के विहंगम अपनी प्यास बुझाने का वहाँ पहुँचते हैं। किन्तु हा हन्त, शिकारलोलुप शिकारी लुक-छिप कर उनकी घात में बैठे रहते हैं और अवसर पाकर उनका काम तमाम कर देते हैं। मूक पशु जीवनरक्षा के प्रयास में जीवन से हाथ धो बैठते हैं।

गुरु महाराज वहाँ वृक्षों की छाया में विश्रान्ति के हेतु ठहरे कि झाड़ी में से एक शिकारी निकला। कंधे पर दो नाली बंदूक थी। मुनियों को देखा तो उनके सामने उसका मस्तक झुक गया। तब गुरुदेव ने उससे कहा-भाई इन पशुओं की और मानव की आत्मा में क्या अन्तर है? मनुष्य की तरह यह भी जीवन के अभिलाषी हैं। इन्हें भी सुख प्रिय है वे मरना नहीं चाहते, न दुःख चाहते हैं। प्राणियों के वृहत् समाज में मनुष्य बड़ा भाई है तो पशु-पक्षी उसके छोटे भाई हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य का इनके प्रति क्या यही कर्त्तव्य है कि वह इनका रुधिरपान करे? बेचारे गरीब गूंगे और असहाय जीव हैं। इन्हें सताना योग्य नहीं।

> गरीब को मत सताओ, गरीब रो देगा।
> गरीब की मालिक सुनेगा तो जड़मूल से खो देगा॥

गुरुदेव की वाणी सुनकर शिकारी ने बन्दूक कन्धे से उतार कर नीचे रख दी और अहिंसक प्राणियों का हनन न करने की प्रतिज्ञा

गुरुदेव अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए पीपाड़ पधारे। वहाँ से आसोप पधारने पर श्री रावतमलजी म० ठाणा २ ने आपकी अच्छी सेवा की। कुछ दिन शामिल रहे। तत्पश्चात् आपने नागौर की ओर प्रस्थान किया।

याचनापरीषह—

नागौर के मार्ग में मूंडवा ग्राम आया। यहाँ अग्रवाल और माहेश्वरी भाइयों के घर हैं। जैनों की बस्ती न होने से वहाँ के लोग मुनियों से अपरिचित प्रतीत हुए। रात्रिवास के लिये वहाँ रुकना पड़ा। गुरु महाराज ने हम दो मुनियों को भिक्षार्थ भेजा। घूमते फिरते हम एक बड़ी-सी हवेली के द्वार पर पहुँचे। सेठजी एक ओर कुछ लिख रहे थे। द्वार में पैर रखते ही उन्होंने सिर उठाकर देखा और टोका। दो कदम पीछे हटकर हमने कहा भैया अपरिचित होने से इधर आ निकले। द्वार पर खड़े होकर आवाज लगाना हम जैन मुनियों का आचार नहीं। क्षमा करना हम जा रहे हैं।

सेठ नरम पड़ कर बोले—अच्छा मुनिजी ठहरो, रोटी ला देता हूँ।

हमने कहा हम लोग शुद्ध आहार लेते हैं। कच्चे पानी और हरी सब्जी आदि से अलग रक्खा हुआ भोजन ही हमारे लिये ग्राह्य है। यही देखने के लिये हम लोग भोजनालय के पास परिमित भूमि तक जाते हैं।

सेठ की भावुकता जागी और वह हमें अन्दर ले गये। जो कुछ मिला, लेकर गुरु महाराज की सेवा में पहुँचे। सब घटना सुनाई तो गुरु महाराज ने भगवान् महावीर के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला। फिर आपने बतलाया—जैनधर्म में भिक्षा को महत्त्व दिया गया है और वैदिक संस्कृति में भी भिक्षावृत्ति उपवास के बराबर गिना गया है। यथा—

उपवासात्परं भैक्ष्यम् —वशिष्ठस्मृति

तथा—

भैक्ष्येण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता। —मनुस्मृति

यथासमय नागौर पहुँचे तो श्रीसंघ स्वागतार्थ बड़ी तैयारी के साथ सामने आया।

नागौर में धर्माराधना—

अथारि परमरोसारि, दुष्टहारि य अंतुणो।
नागारीय य विकारीय जोधारीय महता॥

किसी विनोदप्रिय कवि की यह रचना है। किसी समय मारवाड़ में भी यतियों का बोलबाला था। उनके लिए चार नगर विशेष सुखदायी गिने जाते थे—नागौर,

बीकानेर, जोधपुर और मेवाड़। चरितनायकजी इनमें से पहले नगर-नागौर में पधारे थे। श्री संघ में अपार उत्साह का पूर दिखाई दिया। पर्युषण जैसी धर्माराधना होने लगी। कई अठाइयाँ तथा बेला तेला आदि हुए। पौषध करने वालों का झुंड होने लगा। चरितनायकजी के बाजार में सार्वजनिक प्रवचन होते थे।

मर्यादानुसार वहाँ विराजने के बाद कुचेरा की तरफ विहार हुआ। विहार करते समय गुरु महाराज ने धार्मिक दृष्टि से नागौर की ऐतिहासिक परम्परा पर प्रकाश डाला तो दयादान के लिए रकम लिखी गई। सजवाना होकर कुचेरा पधारे। वहाँ कोटासम्प्रदाय के मुनि गोवीदासजी तथा श्री मोहन मुनि विराजमान थे। पानी के प्रभाव से प्रायः सभी मुनि अस्वस्थ हो गये तो श्री मोहन मुनि ने प्रेमपूर्वक परिचर्या की। वहां से बखत् होकर जोधपुर पधारे। तत्पश्चात् वि० सं० २००० का चौमासा पीपाड़ सिटी में हुआ। *सेठ मोतीलालजी आदि भाइयों ने खूब ही श्रद्धा भक्ति प्रदर्शित की। अच्छा धर्मध्यान हुआ। चातुर्मास के पश्चात् जोधपुर की ओर विहार हुआ।

बावनवाँ चातुर्मास—

पीपाड़ और जोधपुर के बीच प्रायः जैनों की बस्ती नहीं है। अतएव स्टेशन पर जाकर विश्राम किया। भिक्षा के लिये दो मील दूर किसानों की ढाणी (छोटे से ग्राम) में गये। किसान अपने घर बन्द कर खेतों में चले गये थे। खाली हाथ लौटना पड़ा। स्टेशनमास्टर के यहाँ कई दिन पहले की सूखी रोटियाँ मिलीं। उन्हीं पर संतोष किया। मुनि ज्ञान रूपी धन से ही संतोष का अनुभव करते हैं।

वहाँ से चल कर सुरपुरा पहुँचे। गुरु महाराज के आदेश से मैं आहार पानी की गवेषणा के लिए चला तो गाँव में एक बुढ़िया ही दिखाई दी। मैं उसी के घर पहुँचा। मुझे देखते ही उसने ऊँची आवाज से रोना शुरू कर दिया तो मैं चकित और विस्मित हो गया। क्षण भर रुक कर मैंने उससे पूछा—माता रोती क्यों हो?

---

*पीपाड़ का कोठारी परिवार हरसोल से आकर यहाँ बसा। यह पू० श्री अमरसिंहजी म० की परम्परा का अनुयायी कहा जाता है। परन्तु उधर अमरसम्प्रदाय के मुनियों का विहार न हुआ। सेठ मोतीलालजी की दादी ने सबसे बाद सिखाया कि अपने परिवार के परम्परागुरु श्री ताराचन्दजी म० हैं। यह सुन सेठ मोतीलालजी सपरिवार स्वामीजी पहुँचे। सम्यक्त्व अंगीकार की। विशेष की प्रभावना की। प्रधानतया आपकी ही भक्ति की प्रेरणा से गुरु म० का यह दूसरी बार चौमासा पीपाड़ में हुआ।

बुढ़िया बोली—मैं तुम्हीं को रोती हूँ।

मैं—माँजी अब कितने पुत्र हैं ?

बुढ़िया—पुत्र-पुत्री तो जन्मे ही नहीं थे,—साधु संन्यासियों ने घर भी चौपट कर दिया। जो गाँव में आते हैं, मेरे घर ही आकर खड़े हो जाते हैं।

मैं उसे आश्वासन देकर तुरन्त चल पड़ा। स्थान पर आने के पश्चात ज्ञात हुआ कि बुढ़िया के पास धन तो है, किन्तु रोटी देना उसके लिये बोटी देने से भी अधिक कष्टकर है। बड़ी कृपण है। हमने सोचा—यह तुच्छ धन मनुष्य को कैसी-कैसी दशा में पहुँचा देते हैं।

विहार करते हुए महामन्दिर होकर जोधपुर पहुँचे तो समाचार मिले कि श्री चान्दमलजी म० की सेवा में एक मुनि की आवश्यकता है। गुरु महाराज ने मुझे मोकलसर जाने का आदेश दिया और मैं यथासमय वहाँ जा पहुँचा। कुछ दिन वहाँ ठहर कर फिर जोधपुर लौट गया। गुरु महाराज जल्दी विहार करके मोकलसर पधारे। तपस्वी श्री चम्पालालजी म० का गत आश्विन मास में स्वर्गवास हो गया था अतः आप एक मास से कुछ अधिक समय तक वहाँ विराजे।

सं० २००१ का चौमासा जोधपुर में हुआ। गुरु महाराज ने मुझे स्वामी चान्दमलजी म० की सेवा में रहने की आज्ञा दी। आप से पृथक् रहने का मेरे लिए यही प्रथम अवसर था और हृदय इसे स्वीकार नहीं कर रहा था तथापि परिस्थिति का ख्याल करके मैंने अनमने भाव से आज्ञा स्वीकार कर ली। आप सावड़ी कल्याणपुर होते हुए जोधपुर पधार गये। दो महीने तक मैं चाव और भाव से सेवा करता रहा मगर भाद्रपद मास में मेरा मन एकदम उचट गया। गुरु महाराज की सेवा में जोधपुर जाने की प्रबल इच्छा हो उठी।

मैंने स्थविर मुनिजी से निवेदन किया तो उन्होंने बड़े प्रेम के साथ समझाया। कई श्रावकों ने भी समझाने का प्रयत्न किया। मगर मैं अपने मन पर नियन्त्रण न कर सका। रेल्वे-मार्ग से सीधा जोधपुर जा पहुँचा। गुरु महाराज ने मुझे स्थिर किया। मैं समझ सका कि मुझसे बड़ी भूल हो गई है, मगर यह तो हो चुकी थी। गुरुदेव ने संघ के समक्ष प्रायश्चित्त दिया और मैंने उसे सहर्ष स्वीकार किया। मैं जोधपुर ही रहा। उस वर्ष वहाँ पं० श्री सहस्रमलजी म० (मंत्री) का भी चौमासा था परन्तु व्याख्यान साथ ही होता था।

चातुर्मास के पश्चात् मुनिराजों ने एक साथ विहार किया। जुलूस बड़ा विराट् बन गया। इससे पहले मुनियों के विहार अलग-अलग होते थे। इस बार सम्मिलित विहार होने के कारण अनूठा वातावरण निर्मित हो गया था। जयघोष होने

से गगनमंडल व्याप्त हो गया था। सर्व मुनिराज कृपामल की हवेली पहुँचे तो विदाई-संदेश देते हुए गुरुदेव ने फर्माया—यह सामूहिक विहार युग को चुनौती है। साम्प्रदायिक संकीर्णता की समाप्ति का पूर्वाभास है। आशा है आप सब भी संकुचित विचारों को त्याग कर हृदय को विशाल बनाएंगे और सम्प्रदाय के स्थान पर धर्म की प्रतिष्ठा करेंगे।

त्रेपनवाँ चातुर्मास—

अब गुरुदेव श्रीमद्भट्टारक वैद्यराज श्री उदयचन्दजी की जो आयाव वाले गुर्दे साहब के नाम से प्रसिद्ध हैं हवेली पधारे तो एक जिज्ञासु माली ने जैनधर्म की प्राचीनता और विशेषता के सम्बन्ध में प्रश्न किया। गुरुदेव ने उत्तर देते हुए फर्माया—सत्य का का दूसरा नाम जैनधर्म है और सत्य शाश्वत होने से जैनधर्म भी शाश्वत है। उसकी आदि नहीं। अतएव वह सनातन धर्म भी है। समय-समय पर होने वाले तीर्थंकर जैनधर्म का पुनः प्रसार करते हैं। इस युग में जो चौबीस तीर्थंकर हुए, उनमें प्रथम ऋषभदेव और अन्तिम महावीरस्वामी थे। भगवान् ऋषभदेव इतिहास की पहुँच से भी बहुत पूर्व हुए हैं। भागवत् में उनका विस्तृत परिचय दिया गया है। वेदों में उनकी स्तुति की गई है।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर हुए। बुद्धदेव उन्हीं के समय हुए। दोनों महापुरुषों का वैदिक धर्म पर बड़ा प्रभाव पड़ा। जैनधर्म और बौद्धधर्म की सहायता से बाद में वैष्णवधर्म और शैवधर्म का उत्थान हुआ। भ० महावीर के उपदेशों से वैदिक ऋषियों के विचारों में परिवर्तन हुआ। वे अहिंसा पर विश्वास करने लगे, इस कारण या जनता का मानस अहिंसा की ओर झुका देख कर उन्होंने पशुबलि करवाना छोड़ दिया। पशु की जगह कोला या कूष्माण्ड चढ़ने लगा। इस प्रकार भगवान् महावीर के प्रभाव से नरबलि और पशुबलि का अन्त हुआ।

गुरुदेव के विस्तृत प्रवचन का यहाँ संक्षिप्त रूप में ही उल्लेख किया गया है। उसे सुन कर श्रोतागण मुक्त कंठ से जैनधर्म का गुणगान करने लगे थे।

सोजतिया दरवाजे के बाहर मालियों के बहुत घर हैं। कहते हैं, जोधपुर में दस हजार घर हैं। प्रसिद्धवक्ता श्रीचौथमलजी म० के उपदेश से प्रभावित होकर वे जैनधर्म के प्रति भक्तिभाव रखते हैं। गुरु महाराज की सेवा में भी माली सुनार मोची तथा पुष्करणा ब्राह्मण आदि प्रायः सभी वर्गों की जनता आया करती थी।

इस प्रकार सफलतापूर्वक जोधपुर से विहार करके आप मोकलसर पधारे। श्रीबागमलजी म० की सेवा की समुचित व्यवस्था की। मैंने स्वामीजी से अन्तःकरण से क्षमायाचना की। उन महानुभाव ने उदारतापूर्वक मुझे क्षमादान दिया।

कुछ दिन विराजने के पश्चात् गुरु महाराज संघ की ओर पधारे। फिर आसपास के क्षेत्रों में भ्रमण करते और जनता को प्रतिबोध देते हुए आपने मेवाड़ में पदार्पण किया। जब आप सायरा पधारे तो उस प्रान्त के झुंड के झुंड नर-नारी दर्शनार्थ आने लगे। उन दिनों सेरा प्रान्त के श्रीसंघ में तड़ें पड़ी हुई थीं और इस कारण वैमनस्य फैल रहा था। गुरु महाराज की इच्छा मालवा की ओर पधारने की थी। मालवा का प्रान्तीय संघ आपका चातुर्मास करवाना चाहता था। किन्तु इस क्षेत्र की अशान्ति का उपशम करना भी आवश्यक प्रतीत हो रहा था।

पदराडा के प्रांगण में आपका प्रवचन बड़ा प्रभावपूर्ण हुआ। आपने बतलाया कि किसी भी धर्म की महत्ता को जनता उसके सिद्धान्तों से नहीं वरन् उसके अनुयायियों के व्यवहार से मापती है। अतः आपका आचरण जैनधर्म की स्थूल कसौटी है। हमारे उपदेश और आपके व्यवहार में सामंजस्य होना चाहिए। यह न हुआ तो हमारे उपदेश उतने कार्यकारी सिद्ध न होंगे। प्राणी मात्र पर मैत्रीभाव रखने का उपदेश देने वाले धर्म के अनुयायी यदि अपने साधर्मियों के प्रति भी प्रेम न रख सकें तो जैन धर्म की महत्ता कैसे बढ़ेगी? धर्म की बात छोड़ भी दी जाय तो आपको वैमनस्य के कारण उत्पन्न होने वाले कषायभाव से कितना कर्मबंध निरन्तर हो रहा है और आपकी अशान्ति किस प्रकार बढ़ रही है, यह सोचना तो आपका कर्त्तव्य है ही। यह दशा देख मेरा हृदय द्रवित हो जाता है। अगर आपमें पारस्परिक प्रेम हो जाय तो आप हमें भी विनति कर सकते हैं।

इस आशय का प्रवचन सुन कुछ लोग आगे आये। पंचायत हुई और वैमनस्य की आग शान्त हो गई। गुरु महाराज ने इस गुरुभक्ति के लिए सेरा प्रान्त को धन्यवाद दिया।

तत्पश्चात् गुरुदेव विरपाल, यशवन्तगढ़ होते हुए, निर्जन वन को पार करके मोमट (वासल) पधारे। अबली पर्वत की गोद में बसे समीजा ग्राम में पहुँच कर गुरुदेव ने फर्माया—यहाँ के नैसर्गिक दृश्य प्रशंसनीय हैं। यहाँ के जागीरदार श्रीकेसरीसिंहजी सपरिवार प्रवचन सुनने आये। पटेल दर्जी कुम्हार प्रजापति और ब्राह्मण आदि समस्त जातियों के लोग व्याख्यान सुनने आते और यथा-शक्ति व्रत-नियम ग्रहण करते थे जिससे वहाँ मुनियों का मन लग गया।

रसालतरु की शीतलता में—

मध्याह्न के दो बजे का समय था। गुरुदेव छोटे-से चबूतरे पर आसीन थे। चहुँ ओर प्रकृति का विराट् वैभव बिखरा पड़ा था। वाटिका छोटी थी पर ऐसा जान पड़ता कि प्रकृति का समग्र सौन्दर्य सिमट कर यहीं एकत्र हो गया है।

विविध प्रकार के वृक्षों की कतारें खड़ी हुई मेवाड़ी वीरों को सलामी दे रही थीं। समीचा की यह शस्यश्यामला भूमि देख कर कविवर पन्त की यह पंक्तियाँ अनायास ही याद हो उठती थीं—

भारतमाता ग्रामवासिनी,
खेतों में फैला है श्यामल,
धूल भरा मैला सा आंचल।

यह वही प्रदेश था जहाँ मेरा शैशव व्यतीत हुआ था। गृहस्थाश्रम के मेरे पुराने वयस्क व्यक्ति वहाँ बैठे थे। गुरु महाराज ने उन कुशलसिंहजी गुलाबसिंहजी आदि भाइयों से कहा—भैया देखो उद्यम करने से भाग्य खुलता है। पुरुषोदय से धन की प्राप्ति और जीवन की उन्नति होती है। तुम्हारे सामने वही केसरीसिंह (हीरा मुनि) बैठा है जो रात-दिन तुम्हारे साथ रहता खेलता और खाता था।

आगत सज्जनों ने मेरी ओर देखा और हर्ष प्रकट किया।

गुरुदेव म्हडोल बागपुरा देवास गोरामा धमधुन्दा आदि क्षेत्रों में धर्म प्रचार करते हुए गोगुन्दा पधारे। सेरा प्रान्त की जनता की प्रबल भावना देख कर मान्देशमा में चौमासा व्यतीत किया। सं० २००२ का यह चौमासा सफलता-पूर्वक सम्पन्न हुआ। श्रावकों का प्रान्तीय सम्मेलन हुआ। खूब धर्मध्यान हुआ। चातुर्माससमाप्ति के पश्चात् जब गुरुदेव ने विहार किया तो बाहर से दो हजार जैन भाई विदाई देने आये। उस समय भी खूब त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

चौपनवाँ चातुर्मास—

चरितनायक प्राणी मात्र के हितैषी कल्याणपथ के निदर्शक, जैनधर्म के प्रबल प्रचारक तथा दीन-हीन जनों के सदा सहायक रहे हैं। अपनी इन्हीं विशिष्टताओं को चरितार्थ करते हुए आपने उदयपुर की ओर विहार किया। घाटी भूताला आदि छोटे-छोटे क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए उदयपुर पधारे और महावीर भवन में विराजे। उदयपुर, ब्यावर आदि क्षेत्रों का संकीर्ण सम्प्रदायवाद स्थानकवासी समाज में प्रसिद्ध है तथापि उदयपुर के दोनों संघ—श्री जवाहरमंडल और श्री महावीरमंडल वाले गुरुदेव की सेवा में प्रेम से आते रहे। महासती श्रीसोहन कुँवरजी म० वहीं पर विराजित होने के कारण कुछ दिन रुक कर मावाणा की ओर प्रस्थान किया।

वह रोटी और छाछ—

लोग शिकायत करते हैं कि हमें अमुक चीज नहीं रुचती अमुक चीज नहीं भाती। कई लोग भोजन सम्बन्धी अरुचि को दूर करने के लिए वैद्यों की सहायता

होते हैं। मगर उन्हें पता नहीं होता कि वे वास्तव में पेट पर अत्याचार करते हैं। जब पेट को भोजन की वास्तविक आवश्यकता होती है तो अरुचती चीज भी रुचिकर हो जाती है। उस समय किसान के घर की रूखी सूखी मोटी रोटी भी षट्रस व्यंजन से कम रुचिकर नहीं होती।

गुरुदेव ने माबाया से विहार किया तो रात्रि में विश्राम के लिये एक मार्ग वर्ती सराय मिली। प्रातःकाल वहाँ से चले तो ग्यारह मील लम्बा रास्ता तय करना था। पहाड़ी रास्ता और उसमें भी मील भर का चढ़ाव था। उस समय गुरुदेव के शरीर में कुछ कमजोरी भी थी। ज्यों-त्यों करके सात मील चले तो मकान पड़ गई। भूख लग आई और प्यास ने गला सुखा दिया। पाँव लड़ खड़ाने लगे। तब मैं कुछ आगे बढ़ कर टेकरी पर चढ़ा। किसानों के कुछ घर दिखाई दिये। गुरु महाराज धीमे-धीमे चले आ रहे थे और मैं उन घरों में जा पहुँचा। ब्राह्मणों और राजपूतों के घर थे। वहां गाय की छाछ और मक्की की रोटी प्राप्त हुई। गुरु महाराज के लिये वह रोटी और छाछ पाकर मुझे इतनी प्रसन्नता हुई कि शब्दों में उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस एक रोटी के आधार से आप एकलिंगजी के मन्दिर तक पधारे।

समय के प्रभाव से उस रोटी की इतनी कीमत बढ़ गई कि गुरु महाराज उसे भूल न सके।

देलवाड़ा और कयोल होते हुए आप ठा० ४ से जन्बोरा पधारे। पचास वर्षों के पश्चात् आपने अपनी जन्मभूमि को पवित्र किया।

प्रेम की लहर उठी—

जन्मभूमि होने पर भी वैराग्य अवस्था में अथवा दीक्षा के समय जन्बोरा श्रीसंघ आपका उपयुक्त सम्मान नहीं कर सका था। आपकी दीक्षा और शिक्षा का सर्व कार्य मारवाड़ में हुआ था। पचास वर्ष पूर्व जब आपने प्रथम बार वहाँ पदार्पण किया तो साम्प्रदायिक भावनाओं के कारण कुछ फीकापन रहा था। इसके अतिरिक्त दूसरा कारण यह भी था कि वहां के दीक्षित हुए और भाई दैवयोगेन पथभ्रष्ट हो गये थे। कोई दूसरे सम्प्रदाय में चले गये तो कोई पुनः संसार की कीचड़ में फँस गये।

मगर इस बार आधी शताब्दी की तपस्या के तेजो सत्व से मंडित चरित नायक ने जन्बोरा में जा सिंहगर्जना की तो जायकर्षण की भावना चौगुनी बढ़ गई। बाजार के मध्य में प्रतिदिन सार्वजनिक व्याख्यान होने लगे। दया

पौषध आदि धर्मक्रियायें खूब हुईं। संघ ने चौमासा करने की भावना करते हुए कहा—यदि आप चौमासा करेंगे तो हम लोग ग्यारह हजार दया-पौषध करेंगे। श्रावक-श्राविकाओं की यह धर्मश्रद्धा देख कर गुरु महाराज को बड़ी प्रसन्नता हुई। स्वधर्मी भाइयों की पारस्परिक सहकारभावना देखकर एक दिन आपने इसी संबंध में प्रवचन किया।

सहकारी भावना--

सहयोग की भावना से ही समाज का जन्म हुआ है। दया-धर्म के प्रादुर्भाव से प्रेम और सहयोग की भावना का उदय होता है। सहकारी-भावना से देश में राष्ट्र में एवं समाज में प्रेम का अखण्ड राज्य स्थापित होता है। अम्बोरा का धर्म-प्रेम देखकर विश्वास हुआ कि सच्चे प्रेम के लिए व्यक्ति सान्निध्य की आवश्यकता नहीं। जैनधर्म का महान् स्याद्वाद सिद्धान्त के आधार पर प्राणी मात्र के प्रति सहयोग की भावना रख सकता है।

प्रेम और सहयोग की भावना का बीजारोपण बाल्यावस्था में ही हो जाना चाहिए। भारतीय परिवारप्रथा सहयोग की शिक्षा का महत्त्वपूर्ण साधन है। अतएव माता-पिता को सावधानी के साथ बालक के चित्त में ऐसे संस्कार डालने चाहिए कि जिससे वे उदार सहिष्णु, सहानुभूतिशील और परोपकारी बनें तथा पारस्परिक सहयोग के आधार पर महान् योजनाओं को कार्यान्वित कर सकें।

पशु-पक्षियों से भी सहयोग का सबक सीखा जा सकता है। दो पहाड़ों के बीच एक नदी बहती थी। गाँव वालों ने आर-पार जाने के लिए लकड़ी का एक पुल बना लिया। उस पर एक ही व्यक्ति आ-जा सकता था। संयोगवश एक बार आमने-सामने आते हुए दो बकरे मिल गये। दोनों के लिए न मुड़ने की जगह थी और न किनारे होकर जाने की। नीचे अथाह जल बह रहा था।

अगर दोनों में सहकार-भावना न होती और संघर्ष होता तो दोनों के प्राण जाने की संभावना थी। अतएव उनमें से एक बैठ गया और दूसरा उसके ऊपर होकर निकल गया।

प्रसन्नता की बात है कि मेवाड़ के कांठे में बसे हुए इस ग्राम में जैनों के सौ घर हैं और उनमें पारस्परिक प्रेम है। मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि आप सब के चित्त निर्मल और उदार रहें। आपकी धर्मभावना बढ़ती रहे और आपस के सहयोग से आप संघ और शासन का विराट यश संसार में प्रसारित करें। इससे आपका भी कल्याण होगा और संघ का भी।

आपके प्रवचनों से जैन-जैनेतर सभी भाई-बहिनों ने खूब लाभ उठाया। आपकी वाणी-गंगा में एक अनूठी पावनी शक्ति थी। उसमें कभी अध्यात्म की लहरी उठती थी तो कभी नीति और कभी धर्म की। जिसने उसमें अवगाहन किया निहाल हो गया।

वम्बोरा से विहार करके आप भिंडर पधारे और फिर कानौड़ डूंगला बड़ी सादड़ी छोटी सादड़ी आदि क्षेत्रों में धर्मजागरणा की। सर्वत्र धर्मध्यान का ठाठ रहा।

मालव देश में प्रवेश—

डग डग रोटी पग पग नीर।
मालव धरती गहन गंभीर।

मालवा का मनुष्य शरीर से सुन्दर, मन से उदार, बात करने में चतुर। मगर कोरा वाक्पटु ही नहीं उसमें माथ ज्ञान और विवेक, तथा श्रद्धा और भक्ति भी होती है।

हमारे चरितनायक जब मन्दसौर पहुँचे तो मालवीय भक्तिभाव के दर्शन हुए। मालवा की भूमि उर्वरा है। उस समय माघ का महीना था। खेत हरे-भरे सुशोभित हो रहे थे। मरुभूमि की तरह विराट् रेगिस्तान वहाँ नहीं है। दूर दूर तक शस्यश्यामला भूमि ही दृष्टिगोचर होती है। यत्र-तत्र आमों के निकुंज अलग ही अपनी विशिष्टता प्रदर्शित कर रहे थे।

मालवा के किसी भी मार्ग से मुनि निकल जाय उसे आहार-पानी की असुविधा नहीं होती। जनपद किसान भी हँस कर सामने आते हैं।

गुरु महाराज ने होली-चौमासा मन्दसौर में ही किया। जनकूपुरा में आपका प्रवचन होता था। कुछ दिन तक खालचीपुरा में भी विराजे। नगर के आसपास दस पुरा हैं। इसी कारण प्राचीन काल में इसे दशपुर कहते थे। यहाँ स्थानकवासी जैनों के करीब ३०० घर हैं।

मन्दसौर से जावरा पधारे तो वहाँ के भाइयों ने भी व्याख्यान से अच्छा लाभ उठाया। रतलाम पधार कर धर्मदास मित्रमंडल के स्थान में ठहरे। यहाँ करीब ६०० स्थानकवासी घर हैं। विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी श्रावक निवास करते हैं, मगर गुरुदेव की सभी ने भक्तिपूर्वक सेवा की। आपकी तटस्थभावना का ही यह प्रभाव था। आपके जीवन को साम्प्रदायिकता ने स्पर्श तक नहीं

कर पाया था। इसी कारण आप निःसंकोच सर्वत्र विचरते थे और सर्वत्र आदरों के भाजन बनते थे।

रतलाम से विहार करके बदनावर होते हुए धार पधार गये। उस समय वहाँ श्री धनचन्द्रजी तथा मूलमुनिजी म० विराजमान थे। साथ ही व्याख्यान हुए। संघ में सराहनीय उत्साह था। वहाँ से आप नालछा पधारे। यह एक छोटा सा ग्राम है, मगर धर्मध्यान और संतसेवा में बड़े नगर की बराबरी करता है।

गुरुदेव खानदेश की ओर बढ़ना चाहते थे मगर समयाभाव आदि कारणों से विचार में परिवर्तन हो गया अतः इन्दौर की ओर पधारे।

इन्दौर में आनन्द की लहर—

इन्दौर में उन दिनों धर्मदासजी म० के स्थविर श्री ताराचन्दजी म० पं० र० मन्त्री मुनि श्री किसनलालजी म० प्रसिद्ध वक्ता श्री सौभाग्यमलजी म० आदि सन्त विराजमान थे। गुरु महाराज के पधारने के समाचार पाकर श्री सौभाग्यमलजी म० अपनी शिष्यमंडली और विशाल जन समूह के साथ दो-तीन मील सामने पधारे। जय-जयकार के तुमुल घोष से दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। महिलाओं के धार्मिक मंगलगीतों ने वातावरण को भक्तिमय बना दिया। शानदार स्वागत हुआ। आप मोरसली गली के स्थानक में विराजे। सेठ पन्नालालजी रामलालजी कीमती बख्तावरमलजी सांड सेठ हमीरमलजी साहब आदि अग्रगण्य श्रावकों की सेवा प्रशंसनीय रही।

श्री ताराचन्दजी म० महास्थविर सन्त थे। चरितनायकजी से दीक्षा में भी बड़े और वय में भी। प्रकृति के अतीव भद्र स्वभाव से अत्यन्त सरल। आप तथा प्रसिद्धवक्ताजी मोरसली के स्थानक में व्याख्यान देने पधारते थे। विशाल स्थानक श्रोताओं से खचाखच भर जाता था।

इन्दौर बम्बई का बच्चा कहलाता है। वहाँ का सट्टा बाजार विश्वविख्यात है। एक दिन न जाने कितने लखपति बनते-बिगड़ते और रोते-हंसते हैं मगर चरितनायकजी की अपूर्व आकर्षक वाणी के प्रभाव से कितने ही सटोरिया सट्टा छोड़कर व्याख्यान में रस लेने लगे। समय-समय सेठ कन्हैयालालजी भंडारी भी चरितनायकजी की सेवा का लाभ लेने आते रहे।

इन्दौर में गुरुदेव ने सट्टे की बुराइयों पर बहुत सुन्दर प्रकाश डाला। कहा—सट्टे के धन में अनीति का पुट है। यह धोखे की टट्टी है। कदाचित् आता और सहसा चला जाता है। सट्टा चित्त को निरन्तर आकुल-व्याकुल बनाये रखता

श्री गणेशमुनिजी म० के दीक्षा समय का चित्र

(१) पूज्य गुरुदेव श्री ताराचन्दजी म० विराजे हैं। (२) मन्त्री श्री पुष्करमुनिजी म०। (३) श्री देवेन्द्रमुनिजी म०। (४) हाथ में पुष्प लिए श्री हीरामुनिजी म० विराजे हैं। (५) श्री गणेश मुनिजी म० दीक्षा पूर्व गुरुश्री के सम्मुख खड़े हैं, इर्दगिर्द में जनता बैठी है।

है। इससे राष्ट्र की कुछ भी समृद्धि की वृद्धि नहीं होती। श्रमजीवी मानवों का न्यायोपात्त धन ही सुखावह हो सकता है आदि।

आपके उपदेश से अनेक सज्जनों ने सट्टे का त्याग किया। दया-पौषध खूब हुए। इसी अवसर पर श्री सौभाग्यमलजी म० के सन्निकट एक वैरागी ने दीक्षा अंगीकार की। हाथी के हौदे दीक्षा-उत्सव हुआ। तत्पश्चात् आपने विहार किया और धार श्रीसंघ की प्रार्थना स्वीकार कर वि० सं० २००१ का चौमासा धार में हुआ।

धार का प्राचीन नाम धारा नगरी है। सुप्रसिद्ध साहित्यरसिक राजा भोज की राजधानी होने का गौरव इसे प्राप्त है। कहते हैं, कवि कालिदास ने भी अपनी काव्यधारा यहाँ प्रवाहित की थी। राजा भोज के समय यहाँ एक विश्वविश्रुत विश्वविद्यालय था जिसमें सहस्रों शिक्षक अध्यापन करते थे। मुसलमानी शासन के काल में विश्वविद्यालय की इमारत मस्जिद के रूप में बदल दी गई जो आज अपने अतीत गौरव के लिए आँसू बहाती-सी खड़ी है।

धार में आज भी गगनचुम्बिनी अट्टालिकाएँ खड़ी हैं। पुष्कल जलपूर्ण जलाशय और हरी-भरी वृक्षावलियाँ नगरी की शोभा बढ़ा रही हैं। नगरी के मध्य में बनियावाड़ी नामक एक राजमार्ग है। वहाँ जैनों की ही बस्ती है और उसके मध्य में स्थानक है। सम्राट अकबर के समय से यह नियम चला आ रहा है कि बकरी बकरा मुर्गा, मछली आदि कोई जानवर मारने-काटने के लिये इस मार्ग से नहीं ले जाया जा सकता। कदाचित् कोई ले जाय तो प्रत्येक जैन को अधिकार प्राप्त है कि वह उसे छुड़ा कर स्थानक में रख ले और फिर यथास्थान भेज दे।

पर्युषपर्व के अवसर पर धार के चौदह तालाबों पर सरकारी पहरेदार तैनात कर दिये जाते हैं और कोई भी व्यक्ति मछली नहीं मार सकता।

धार की चित्रकला सुप्रसिद्ध है। यहाँ मिट्टी की ऐसी-ऐसी मूर्त्तियाँ बनती हैं, जिनकी कीमत पच्चीस पचीस हजार तक होती है।

श्री गणेश मुनिजी—

विषयविकारों से हट कर संयम के मार्ग में अग्रसर होने वाले त्यागी जनों का जीवन जगत् के लिए ज्योतिस्तम्भ है। विदुषी महासती श्री सोहनकुँवरजी म० की सुशिष्या श्री प्रभावतीजी म० का उल्लेख पहले किया जा चुका है। आपने अपने कलेजे के समान प्रिय और सुकोमल पुत्र को भी वय की उम्र में मुनिधर्म में दीक्षित होने की अनुमति देकर अलौकिक मातृत्व का परिपालन किया और फिर स्वयं भी संयम धारण कर लिया।

तीन सतियों की नायिका बन कर श्री प्रभावतीजी म० ने बागपुरा में चौमासा किया। करणपुर निवासी चतुर्भुजजी पोरवाड के पुत्र श्री लालचंदजी की धर्मपत्नी तीजबाई दर्शनार्थ बागपुरा गईं। वहीं पीहर होने से लम्बे समय तक उन्होंने सतीजी की सेवा की। इस समागम के फलस्वरूप तीजबाई का मन संसार के मायाजाल से हट गया। विरक्त होकर रहने लगीं। माताके साथ उनके द्वितीय पुत्र शंकरलाल के मन में भी वैराग्य उत्पन्न हो गया। गुरु महाराज के साथ नौ मास पर्यन्त रहने के बाद धार में दीक्षा ग्रहण करने की भावना व्यक्त की। गुरु महाराज परीक्षा कर चुके थे अतएव उन्होंने दीक्षा देना स्वीकार कर लिया और विजयादशमी का शुभ मुहूर्त निश्चित कर दिया गया।

यथासमय धूमधाम के साथ विजयमुहूर्त में दीक्षासमारोह हुआ। आज्ञा देने वाली मातेश्वरी तीजबाई उस सुअवसर पर उपस्थित थीं। चौदह वर्ष की आयु में भोगोपभोगों के कीचड़ से विमुख होकर मुक्तिमार्ग अपनाने के उत्साह को देख कर जनता बड़ी प्रभावित हुई। लोगों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए धन्य वाद दिया। नवदीक्षित मुनि का नाम श्री गणेश मुनि घोषित किया गया।

दीक्षा-प्रसंग पर धार के श्रावकसंघ ने स्थानक के ऊपर तीन सुवर्णकलश चढ़ाये, जो तीन लोक के जीवों को रत्नत्रय की साधना के लिये आह्वान करते से प्रतीत होते थे।

कुछ समय पश्चात् जबपुर पहुँच कर श्री तीजबाई ने भी महासती श्री प्रभावतीजी म० के निकट संयम अंगीकार कर लिया।

भक्त चम्पालालजी तथा श्रीमानमलजी वकील आदि महानुभावों ने सेवा का खूब लाभ उठाया। चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ।

पचपनवाँ चातुर्मास—

खानदेश की ओर—

गुरुदेव ने चातुर्मास समाप्त होने पर धार से मालवा माडुव की ओर विहार किया। चौमासे में मैं अस्वस्थ रहा था। संग्रहणी के चक्कर में पड़ गया था। दक्षिण की ओर विहार मेरे लिए हितकर नहीं था। अतएव गुरु महाराज से आज्ञापत्र लेकर मैंने मारवाड़ की ओर विहार किया और गुरु महाराज ठाणा ४ आगे बढ़े। आगे जाने पर विन्ध्याचल पर्वत आया। वहाँ का निर्जन और सघन वन पार करने में बहुत ही कठिनाई महसूस हुई। यद्यपि कल-कलनाद करते हुए निर्झर अनायास ही यात्री का मन मोह लेते हैं, तथापि स्वच्छन्द विचरण करते हुए वनराज आदि की गर्जना दिल को दहला भी देती है। परन्तु

जीवन-मरण में समभाव धारण करने वाले एवं समभाव से सुख-दुख का स्वागत करने वाले वीतराग के पथ के पथिक गुरुदेव अपनी शिष्यमण्डली के साथ अग्रसर होते ही गये ।

जब आप सिरपुर पधारे तो सभी मुनि ज्वर के प्रकोप से पीड़ित हो गये। इसका प्रधान कारण पानी का प्रतिकूल होना था। आराम होने पर आगे बढ़े और धूलिया पहुँचे तो श्रीप्रेमचन्दजी तथा श्रीचौथमलजी म० का मिलाप हुआ। विदुषी महासती श्रीसुमतिकुँवरजी म० आदि सतियों ने भी दर्शन किये। व्याख्यान का ठाठ रहा धर्मध्यान अच्छा हुआ अतएव मर्यादानुसार वहाँ ठहरे। यथासमय विहार किया तो लम्बी दूर तक सन्त पहुँचाने आये। गुरुदेव ने मालेगाँव का मार्ग पकड़ा। तुलसीदास ने कहा है—

कोइ चढ़े हाथी घोड़ा, पालकी मंगाय के।
साधु चले पईया पईया, चींटी को बचाय के॥

इस उक्ति के अनुसार गुरुदेव धीमे-धीमे मार्गवर्ती जनता को धर्मबोध देते हुए चल रहे थे।

नाशिक में प्रवेश—

मानव की अनुभूतियों का मूर्तिमान् आधार प्रकृति है। जहाँ निसर्ग का भास्वर वैभव-भण्डार बिखरा पड़ा है, वहाँ आने वाला मानव प्रकृति को अपनी भावनाओं के अनुरूप देखने का प्रयत्न करता है। प्रकृति में अपनी भावना का चित्र देखना मनुष्य का स्वभाव है। सन्त प्रकृति के प्राँगण में रह कर अपने वैराग्य की वृद्धि करता है और रागी-जन राग की सामग्री इकट्ठी कर लेते हैं। चरितनायक एक महान् सन्त होने के कारण प्रकृति से वैराग्य का सबक लेते हुए नाशिक पधारे। आपके पधारने का समाचार नगर में विद्युद्वेग से फैल गया। जैन-जैनेतर जनता कई मील दूर तक स्वागत के लिए आ पहुँची। धूमधाम के साथ आपने स्थानक में प्रवेश किया और प्रासंगिक प्रवचन किया जिसमें नाशिक को स्वास्थ्यकर स्थान बतलाते हुए आन्तरिक स्वास्थ्य के सुधारने पर जोर दिया। आपने फर्माया—बड़े-बड़े श्रीमंत बम्बई से स्वास्थ्य सुधारने के लिए यहाँ आते हैं मगर मानव जीवन की वास्तविक महत्ता तो आत्मिक स्वस्थता प्राप्त करने में है। आत्मिक स्वस्थता का अर्थ है—विषयविकारों से विमुख होकर आत्मा के स्वकीय आनन्दघन स्वरूप में रमण करना। जो मनुष्य इस प्रकार की स्वस्थता जितनी मात्रा में प्राप्त कर लेता है वह उतना ही सुख लाभ करता है। अतएव आप शारीरिक स्वास्थ्य के अतिरिक्त मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य प्राप्त करने का भी प्रयत्न करें।

संघ की आग्रहपूर्ण प्रार्थना स्वीकार कर आपने चौमासे की स्वीकृति प्रदान की और सं० २००४ का चौमासा वहीं व्यतीत हुआ। सेठ चांदमलजी बरमेचा भीकमचन्दजी पारेख मेघराजजी संचेती, हंसराजजी सेठिया खेठमलजी चोरड़िया घेवरचन्दजी सांकला शोभाचन्दजी गुजराती रतनलालजी कोठारी आदि भाइयों ने अच्छी सेवा की। हंसराजजी भीकमचन्दजी की धर्मभावना अनुकरणीय है। त्यागवृत्ति ऊँची है। श्री खेठमलजी की उदारता सराहनीय है। इस चौमासे का समस्त व्यय भार आपने वहन किया।

श्री देवेन्द्र मुनि की अस्वस्थता के कारण गुरु महाराज को भी मास तक यहाँ रहना पड़ा तथापि संघ की श्रद्धा भावना बढ़ती ही रही।

नगर के निकट ही करीब एक मील की दूरी पर पंचवटी नामक प्रसिद्ध स्थान है। कहते हैं, इसी जगह रावण ने सीता का अपहरण किया था। महाराज रामचन्द्रजी ने सीता के अपहरण से व्याकुल और व्यग्र होकर पशु-पक्षियों से सीता के समाचार पूछे थे। आज भी वहाँ वट के पांच वृक्ष खड़े हैं, जो भले ही बाद के हों तथापि पंचवटी संज्ञा की सार्थकता प्रकट करते हैं। वहां गुफाएँ हैं तपोवन है, अनेक तपस्वी और योगी रहते हैं। वहां का सौन्दर्य देखने के लिए दूर-दूर से यात्री आते हैं। स्वास्थ्यसुधार के हेतु श्रीदेवेन्द्र मुनि को साथ लेकर गुरु महाराज उधर घूमने जाया करते थे। मुनिजी का स्वास्थ्य विहार करने लायक हुआ तो आपने बम्बई की ओर विहार कर दिया।

इगतपुरी में श्रीकिसनलालजी म० तथा म० म० श्रीसौभाग्यमलजी म० आदि से मिलाप हुआ। देवलाली के सेठ सहसमलजी गुरु महाराज के प्रति अतीव भक्तिभाव रखते रहे और समय-समय पर सेवा में उपस्थित होते रहे।

सेवा में मेरा पुनरागमन—

धार से विहार कर मैं जब मारवाड़ पहुँचा तो अजीब सूनेपन ने चित्त को घेर लिया। गुरुदेव का वियोग दुस्सह हो गया। किन्तु तत्काल लौट आना संभव न था न वांछनीय ही। अतएव कुछ दिन मारवाड़ में बिताने के बाद मैं चल पड़ा गुरुदेव की सेवा में। नासिक ग्राम में गुरुदेव की चरण छाया पाने में समर्थ हो सका।

यात्रा की आलोचना—

वसे गुरुकुले सिच्चं ।

—उत्तराध्ययन सूत्र

भगवान् का आदेश है कि आत्मकल्याण के अभिलाषी सन्त को सदैव गुरु महाराज के सान्निध्य में निवास करना चाहिए। इसी कारण शिष्य 'अन्ते वासी' कहलाता है।

मुनि के आचार के अनुसार शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने समग्र कार्य कलाप को शुद्ध भाव से गुरु के समक्ष निवेदन कर दे। जैन परिभाषा में इसे आलोचना कहते हैं। गुरु महाराज ने एक दिन प्रातःकाल मेरी मारवाड़ यात्रा का ब्यौरा पूछा। मैंने अपनी स्मृति के अनुसार छोटी-मोटी सभी बातें स्पष्ट बतलाईं जिनका संक्षिप्त सार इस प्रकार था—

"धार से सन्ध्या विहार कर मैं नागदा पहुँचा। प्रतिक्रमण से निवृत्त होकर ध्यान करना चाहा तो मन नहीं लगा। स्वाध्याय में मन को उलझाने का प्रयत्न भी सफल न हुआ। आँखें बंद करके लेटा तो आपकी मूर्ति मेरे नयनों में चमकने लगी। फिर आगे बढ़ा तो रतलाम मन्दसौर, प्रतापगढ़ होकर धरियावद पहुँचा। गोगुंदा के राजमलजी संघवी मेरे साथ थे। अर्थवी का ४८ मील का निर्जन वन पार करने के लिये श्रीसंघ ने दो पुलिस के जवान मेरे साथ भेजे। आगे चल कर केसरियाजी नागपुरा होकर गोगुंदा पहुँचा। वहाँ महासती श्री फूलकुँवरजी तथा श्री शीलकुँवरजी म० विराजमान थीं। वहाँ से भी आगे बढ़ कर श्री नारायणदासजी म० की सेवा में वृंदावे पहुँच गया।

आप से कार्त्तिक पर्यन्त स्वामीजी की सेवा में रहा। चौमासा सादड़ी में बिताया। इस बीच श्री पासीलालजी म० ने मुझे अपनी गोद में लेने का अच्छा प्रयत्न किया। राजकोट से श्री समीर मुनि को इसी निमित्त भेजा।

मैं सादड़ी से आपके आदेशानुसार विहार करके इधर आ रहा था तो मेहसाणा में श्री समीर मुनि मिल गये। बोले—मैं आपके लिये ही मारवाड़ जा रहा था। मैंने उन्हें और पासीरामजी म० को धन्यवाद दिया और आगे चल पड़ा। रास्ते में कुत्ते ने काट लिया। बहुत खून निकला मगर मैं बिना रुके चलता ही रहा। अहमदाबाद में आपका समाचार तार से पाकर आग चला और नड़ीयाद भरौंच सूरत, बेगु और पालघर पहुँचा। आपके इगतपुरी में विराजमान होने का समाचार मिलने पर मैंने पहाड़ी रास्ता पकड़ा। बूरा तजा मगन साथ था। पन्द्रह मील वीरान वन में चलने के बाद मील का एक पर

संघ की आग्रहपूर्ण भावना स्वीकार कर आपने चौमासे की स्वीकृति प्रदान की और सं० २००४ का चौमासा वहीं व्यतीत हुआ। सेठ चांदमलजी बरमेचा भीकमचन्दजी पारेख, मेघराजजी संचेती हंसराजजी सेठिया जेठमलजी चोरडिया पेवरचन्दजी सांखला शोभाचन्दजी गुजराती रतनलालजी कोठारी आदि भाइयों ने अच्छी सेवा की। हंसराजजी भीकमचन्दजी की धर्मभावना अनुकरणीय है। त्यागवृत्ति ऊँची है। श्री जेठमलजी की उदारता सराहनीय है। इस चौमासे का समस्त व्यय भार आपने वहन किया।

श्री देवेन्द्र मुनि की अस्वस्थता के कारण गुरु महाराज को नौ मास तक यहाँ रहना पड़ा तथापि संघ की श्रद्धा-भावना बढ़ती ही रही।

नगर के निकट ही करीब एक मील की दूरी पर पंचवटी नामक प्रसिद्ध स्थान है। कहते हैं, इसी जगह रावण ने सीता का अपहरण किया था। महाराज रामचन्द्रजी ने सीता के अपहरण से व्याकुल और व्यग्र होकर पशु-पक्षियों से सीता के समाचार पूछे थे। आज भी वहां वट के पाँच वृक्ष खड़े हैं जो भले ही बाद के हों तथापि पंचवटी संज्ञा की सार्थकता प्रकट करते हैं। वहां गुफाएँ हैं, तपोवन हैं, अनेक तपस्वी और योगी रहते हैं। यहां का सौन्दर्य देखने के लिए दूर-दूर से यात्री आते हैं। स्वास्थ्यसुधार के हेतु श्रीदेवेन्द्र मुनि को साथ लेकर गुरु महाराज उधर घूमने जाया करते थे। मुनिजी का स्वास्थ्य विहार करने योग्य हुआ तो आपने बम्बई की ओर विहार कर दिया।

इगतपुरी में श्रीकिसनलालजी म० तथा प्र० व० श्रीसौभाग्यमलजी म० आदि से मिलाप हुआ। देवलाली के सेठ सहसमलजी गुरु महाराज के प्रति अतीव भक्तिभाव रखते रहे और समय-समय पर सेवा में उपस्थित होते रहे।

सेवा में मेरा पुनरागमन—

धार से विहार कर मैं जब मारवाड़ पहुँचा तो अजीब सूनेपन ने चित्त को घेर लिया। गुरुदेव का वियोग दुस्सह हो गया। किन्तु तत्काल लौट आना संभव न था न वांछनीय ही। अतएव कुछ दिन मारवाड़ में बिताने के बाद मैं चल पड़ा गुरुदेव की सेवा में। नासिक में गुरुदेव की छत्र छाया पाने में समर्थ हो सका।

उल्लिखित उदाहरण में अहिंसा की महिमा प्रकट की गई है और अहिंसा को मानवधर्म के रूप में चित्रित किया गया है। यद्यपि यहाँ हिंसा को सिंह आदि प्राणियों की प्रकृति कहा गया है, तथापि अगर हम बारीकी से सिंह के स्वभाव का अध्ययन करेंगे तो विदित होगा कि सिंह के मनस्तल की गहराई में भी दया-देवी का वास है। सिंह भी अपनी सन्तति का मानव की तरह ही दयालुता से पालन-पोषण करता है और अपने सजातीय का शिकार नहीं करता। यह उसकी अहिंसाप्रकृति का ही सूचक है। अतएव हमारे विचार से अहिंसा प्राणीमात्र की प्रकृति है, यद्यपि उसका विकास विभिन्न परिस्थितियों में न्यूनाधिक रूप से होता है।

अहिंसा का विधायक रूप दया परोपकार, एवं सहानुभूति आदि कोमल भावनाओं के रूप में व्यक्त होता है। इनके अभाव में अहिंसा जीवन में मूर्त हो ही नहीं सकती। परन्तु तेरापन्थी जैन अहिंसाधर्मी होते हुए भी दया को धर्म नहीं मानते—मरते हुए प्राणी को औषध, आहार, पानी आदि देकर बचाने वाले को पुण्य का नहीं पाप का भागी मानते हैं।

गुरु महाराज जब पालनपुर पधारे तो काठियावाड़ के श्रीसंघ की ओर से उधर विहार करने की प्रार्थना होने लगी। तेरापंथी साधु अपने पंथ का प्रचार करने के लिए मारवाड़ छोड़ कर काठियावाड़ में आ पहुँचे थे। भोले लोग उनके चक्कर में पड़कर दया-दान के विरोधी न बन जाएँ, इसलिए काठियावाड़ में गुरुदेव की उपस्थिति आवश्यक समझी जा रही थी। गुरु महाराज ने संघहित का विचार कर साधुभाषा के अनुसार अपनी स्वीकृति दे दी।

नवसारी में पं० र० श्री पुष्कर मुनिजी और श्री देवेन्द्र मुनिजी आ पहुँचे। सर्व मुनिराज सूरत पधारे। यहाँ पुनः काठियावाड़ का शिष्टमण्डल आया और उसने दयादान के विरोधी प्रचार को रोकने का आग्रहपूर्ण अनुरोध किया। उसी समय श्री पूरणचन्द्रजी म० ने कहा—काठियावाड़ी जनता तेरापंथ की मान्यताओं से अनभिज्ञ है और आप उनकी नस-नस पहिचानते हैं। अतएव आप जनता को सजग और सावधान कीजिए।

गुरुदेव ने परिस्थिति का विचार कर काठियावाड़ पधारने का आश्वासन दे दिया। फिर सूरत से अंकलेश्वर और वहाँ से भड़ौंच की ओर विहार किया। जब तीथोर पधारे तो पता चला कि महिसागर की नदी निरन्तर बहती रहती है और उसे पार किए बिना आगे नहीं बढ़ सकते। गुरु म० आदि सन्त पधारे तो घा-टीन पश्चात् में पानी था। नाविक अपनी नैया ले आया।

सब मुनि विचार-सागर में निमग्न हुए। जैनागमों के प्रामाणिक पाठ स्मृति में उभर आये। जीवन में पहली बार ही यह प्रसंग उपस्थित हुआ था। उनमें

पनवेल में लगभग २५ घर स्था० जैनों के हैं। सेठ रतनचन्दजी वहाँ के प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध दानवीर नागरिक हैं। बड़े निरभिमानी और सेवाप्रिय हैं। उनकी विनम्रता आदर्श है। छोटे संत भी यदि हवेली में पहुँचते हैं तो गद्दी पर से उठकर साथ हो लेते हैं। सामायिक आदि धर्मक्रियाएँ भी प्रेम से करते हैं। श्रीसंघ ने व्याख्यान आदि में अच्छा उत्साह प्रदर्शित किया। जलवायु की दृष्टि से पनवेल उत्तम स्थान है। मासकल्प विराजकर गुरुदेव पुनः बम्बई पधारे। इस बार बम्बई पधारने का प्रयोजन था—मुझे तथा श्री देवेन्द्र मुनि को संस्कृत की वाराणसीय परीक्षा दिलवाना। विभिन्न उप-नगरों में होकर आप कांदावाड़ी पधारे तो वहाँ व्याख्यान पं० श्री प्यारचन्दजी म० तथा श्री पूनमचन्दजी म० आदि सन्तों से मिलाप हुआ। परीक्षा के पश्चात् घाटकोपर पधारने पर आत्मार्थी श्री मोहनऋषिजी म० तथा श्री विनयऋषिजी म० आदि ठा० १७ का स्नेहसम्मेलन हुआ। स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के संगठन के सम्बन्ध में गम्भीर विचार-विनिमय हुआ और आगामी सम्मेलन के लिए योजना सोची गई।

घाटकोपर से पं० र० श्री पुष्कर मुनिजी म० को ठाणा २ से नासिक की ओर भेजा और आप ठा० ३ से विलेपार्ले पधारे। आपके तथा पूनमचन्दजी म० के पधारने का प्रभाव यह हुआ कि वहाँ के श्रीसंघ ने अपने धर्मध्यान के लिये एक बना-बनाया मकान खरीद लिया।

श्री पूनमचन्दजी म० तपस्वी डूँगरसिंहजी म० नवीन मुनिजी अवन्ती मुनिजी ने भी गुरुदेव ठाणा ३ के साथ ही विहार किया।

बम्बई जाने वाले मुनियों के लिए तीन मार्ग हैं। पूना से पनवेल होकर मोटर-सड़क से जाया जा सकता है। नासिक से आने वालों के लिए आगरा रोड प्रसिद्ध है। अहमदाबाद से बड़ौदा तक रेल्वे-मार्ग का अनुसरण करना पड़ता है। प्रायः प्रत्येक स्टेशन पर जैन गृहस्थों की दुकानें मिलती हैं। हाँ रेल्वे की मुरमी गिट्टी अवश्य चलने वालों की सिट्टी भुला देती है। परन्तु गुरु महाराज ने तो बार इसी पथ पर विचरण किया।

सत्तावनवाँ चातुर्मास—

"अहिंसाधर्म महज ऋषियों और महात्माओं का ही नहीं है। वह तो आम लोगों के लिए भी है। जैसा हिंसा सिंहादि पशुओं की प्रकृति का नियम है वैसे ही अहिंसा हम मनुष्यों की प्रकृति का कानून है। पशु की आत्मा सोई हुई है। मानव जागृत है। जिन महात्माओं ने हिंसा में से अहिंसा का नियम ढूँढ निकाला व सब से अधिक प्रतिभाशाली हैं। वीर योद्धा हैं। अहिंसा हिन्दुस्तान की आत्मा है।"

—गांधीजी

उल्लिखित अनुचरण में अहिंसा की महिमा प्रकट की गई है और अहिंसा को मानवधर्म के रूप में चित्रित किया गया है। यद्यपि यहाँ हिंसा को सिंह आदि प्राणियों की प्रकृति कहा गया है, तथापि अगर हम बारीकी से सिंह के स्वभाव का अध्ययन करेंगे तो विदित होगा कि सिंह के अन्तस्तल की गहराई में भी दया-देवी का वास है। सिंह भी अपनी सन्तति का मानव की तरह ही दयालुता से पालन-पोषण करता है और अपने सजातीय का शिकार नहीं करता। यह उसकी अहिंसाप्रकृति का ही सूचक है। अतएव हमारे विचार से अहिंसा प्राणीमात्र की प्रकृति है, यद्यपि उसका विकास विभिन्न परिस्थितियों में न्यूनाधिक रूप से होता है।

अहिंसा का विधायक रूप दया परोपकार, एवं सहानुभूति आदि कोमल भावनाओं के रूप में व्यक्त होता है। इनके अभाव में अहिंसा जीवन में मूर्त हो ही नहीं सकती। परन्तु तेरापन्थी जैन अहिंसाधर्मी होते हुए भी दया को धर्म नहीं मानते—मरते हुए प्राणी को औषध, आहार पानी आदि देकर बचाने वाले को पुण्य का नहीं पाप का भागी मानते हैं।

गुरु महाराज जब पालघर पधारे तो काठियावाड़ के श्रीसंघ की ओर से उधर विहार करने की प्रार्थना होने लगी। तेरापंथी साधु अपने पंथ का प्रचार करने के लिए मारवाड़ छोड़ कर काठियावाड़ में आ पहुँचे थे। भोले लोग उनके चक्कर में पड़कर दया-दान के विरोधी न बन जाएँ, इसलिए काठियावाड़ में गुरुदेव की उपस्थिति आवश्यक समझी जा रही थी। गुरु महाराज ने संघहित का विचार कर साधुभाषा के अनुसार अपनी स्वीकृति दे दी।

नवसारी में पं० र० श्री पुष्कर मुनिजी और श्री देवेन्द्र मुनिजी आ पहुँचे। सर्व मुनिराज सूरत पधारे। यहाँ पुन काठियावाड़ का शिष्टमण्डल आया और उसने दयाधर्म के विरोधी प्रचार को रोकने का आग्रहपूर्ण अनुरोध किया। उसी समय श्री फूलचन्द्रजी म० ने कहा—काठियावाड़ी जनता तेरापंथ की मान्यताओं से अनभिज्ञ है और आप उनकी नस-नस पहिचानते हैं। अतएव आप जनता को सजग और सावधान कीजिए।

गुरुदेव ने परिस्थिति का विचार कर काठियावाड़ पधारने का आश्वासन दे दिया। फिर सूरत से अंकलेश्वर और वहाँ से भड़ौंच की ओर विहार किया। जब तीथोर पधारे तो पता चला कि महिसागर की नदी निरन्तर बहती रहती है और उसे पार किए बिना आगे नहीं बढ़ सकते। गुरु म० आदि सन्त पधारे तो डा-तीन फलांग में पानी था। नाविक अपनी नैया ले आया।

सब मुनि विचार-सागर में निमग्न हुए। जैनागमों के प्रामाणिक पाठ स्मृति में उभर आये। जीवन में पहली बार ही यह प्रसंग उपस्थित हुआ था। उत्सर्ग

पनवेल में लगभग २५ घर स्था० जैनों के हैं। सेठ रतनचन्दजी वहाँ के प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध दानवीर नागरिक हैं। बड़े निरभिमानी और सेवाप्रिय हैं। उनकी विनम्रता आदर्श है। छोटे संत भी यदि हवेली में पहुँचते हैं तो गद्दी पर से उठकर साथ हो लेते हैं। सामायिक आदि धर्मक्रियाएँ भी प्रेम से करते हैं। श्रीसंघ ने व्याख्यान आदि में अच्छा उत्साह प्रदर्शित किया। जलवायु की दृष्टि से पनवेल उत्तम स्थान है। मासकल्प विराजकर गुरुदेव पुनः बम्बई पधारे। इस बार बम्बई पधारने का प्रयोजन था—मुझे तथा श्री देवेन्द्र मुनि को संस्कृत की वाराणसीय परीक्षा दिलवाना। विभिन्न उप-नगरों में होकर आप कांदावाड़ी पधारे तो वहाँ उपाध्याय पं० श्री प्यारचन्दजी म० तथा श्री पूनमचन्दजी म० आदि सन्तों से मिलाप हुआ। परीक्षा के पश्चात् घाटकोपर पधारने पर आसार्यश्री श्री मोहनऋषिजी म० तथा श्री विनयऋषिजी म० आदि ठा० १७ का स्नेहसम्मेलन हुआ। स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के संगठन के सम्बन्ध में गम्भीर विचार-विनिमय हुआ और आगामी सम्मेलन के लिए योजना सोची गई।

घाटकोपर से पं० र० श्री पुष्कर मुनिजी म० को ठाणा २ से नासिक की ओर भेजा और आप ठा० ३ से विलेपार्ले पधारे। आपके तथा पूनमचन्दजी म० के पधारने का प्रभाव यह हुआ कि वहाँ के श्रीसंघ ने अपने धर्मध्यान के लिये एक बना-बनाया मकान खरीद लिया।

श्री पूनमचन्दजी म० तपस्वी हुँगरसिंहजी म० नवीन मुनिजी जयन्ती मुनिजी ने भी गुरुदेव ठाणा ३ के साथ ही विहार किया।

बम्बई जाने वाले मुनियों के लिए तीन मार्ग हैं। पूना से पनवेल होकर मोटर-सड़क से जाया जा सकता है। नासिक से आने वालों के लिए आगरा रोड प्रसिद्ध है। अहमदाबाद से बड़ौदा तक रेल्वे-मार्ग का अनुसरण करना पड़ता है। प्रायः प्रत्येक स्टेशन पर जैन गृहस्थों की दुकानें मिलती हैं। हाँ रेल्वे की पुलीकी गिट्टी अवश्य चलने वालों की सिट्टी भुला देती है। परन्तु गुरु महाराज ने दो बार इसी पथ पर विचरण किया।

सत्तावनवाँ चातुर्मास—

"अहिंसाधर्म महज ऋषियों और महात्माओं का ही नहीं है। वह तो आम लोगों के लिए भी है। जैसा हिंसा सिंहादि पशुओं की प्रकृति का नियम है, वैसे ही अहिंसा हम मनुष्यों की प्रकृति का कानून है। पशु की आत्मा सोई हुई है। मानव जागृत है। जिन महात्माओं ने हिंसा में से अहिंसा का नियम ढूंढ निकाला वे सब से अधिक प्रतिभाशाली हैं और योद्धा हैं। अहिंसा हिन्दुस्तान की आत्मा है।"

—गांधीजी

आकाश गूंजने लगे। बाजार में पहुँचे तो सारा यातायात ठप्प हो गया। पहले से विराजमान मुनियों ने भी सामने आकर समुचित स्वागत किया।

तेरापंथी साधु उस समय लींबड़ी में ही किसी अजैन के घर में टिके हुए थे। धर्म के इस विराट् वैभव को देख कर उन्हें कैसा लगा?

तत्त्वनिर्णय के लिए चुनौती--

गुरु महाराज जिस दिन लींबड़ी पधारे, उसी दिन तेरहपंथी प्रचार के संबंध में विचार हुआ। काठियावाड़ स्था० जैनों का केन्द्र स्थल है। जैनधर्म का प्रचार होना जगत्कल्याण का कारण है, फिर भले ही वह किसी भी सम्प्रदाय अथवा वर्ग के द्वारा हो। परन्तु जैन धर्म के नाम पर धर्मविरुद्ध प्रचार किस प्रकार सहन किया जाय? किन्हीं भी व्यक्तियों के साथ विरोध न होने पर भी जैनधर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध होने वाले प्रचार को रोकना प्रत्येक धर्मप्रेमी का प्रथम कर्त्तव्य है। तेरहपंथी सम्प्रदाय की बहुत सी मान्यताएँ जैनागमों से विपरीत हैं, किन्तु निम्नलिखित मान्यताएँ तो लौकिक दृष्टि से भी विरुद्ध हैं और धर्म को बदनाम करने वाली होने से दुस्सह हैं—

(१) भगवान् महावीर के उपासक होने पर भी उन्हें 'चूका' बतलाना।

(२) शास्त्र का विधान है—'दाणाणं सेट्ठं अभयप्पयाणं।' अर्थात् सब दानों में अभयदान उत्तम है परन्तु तेरहपंथी मरते हुए प्राणी को बचाना एकान्त पाप मानते हैं। किसी मकान में आग लग गई है। मकान का द्वार बाहर से बंद है। कोई पड़ौसी उन बिलबिलाते हुए मनुष्यों की रक्षा के लिए अगर किवाड़ खोल देता है तो उसे अठारह पाप लगते हैं। आग लगाने वाले को एक पाप और जलते प्राणी को बचाने में अठारह पाप!

कोई पड़ौसी या अन्य प्राणी भूख-प्यास से तड़प रहा है, मौत की घड़ियाँ गिन रहा है। ऐसी स्थिति में अगर कोई दयालु उसे अचित्त भोजन-पानी देकर भी बचा लेता है तो वह एकान्त पाप का भागी होता है।

(४) माता-पिता आदि उपकारी जनों की सेवा-शुश्रूषा करना पाप है क्योंकि गृहस्थ मात्र जहर का टुकड़ा है।

(५) तेरहपंथी साधु के सिवाय अन्य किसी भी गृहस्थ या त्यागी को दान देना एकान्त पाप है।

और अपवाद मार्ग पर विचार होने लगा। अन्तत: निर्णय हुआ कि जब जैन्य धर्म आज्ञा देता है तो फिर हिचकिचाहट क्यों करना चाहिए? जैन मुनि महीने में तीन बार नदी पार कर सकता है तो हम तो जीवन में पहली बार ही पार करते हैं।

बस सब मुनि नौका पर आरूढ़ हो गये। नाविक बोला—गुरुजी इसी महीसागर के किनारों पर ही मेरा जीवन व्यतीत हुआ है, परन्तु आज-सा दिन पहले कभी नहीं आया। यह दिन बड़ा मंगलमय है कि सन्तों के दर्शन हुए। मैं बहुतों को पार करता हूँ मगर नहीं जानता कि मेरी नैया कैसे पार होगी?

धीरे-धीरे परले पार पहुँचे। नाविक ने यथाशक्ति नियम अंगीकार किये, जिस प्रकार प्राचीन काल में मच्छीमार ने मुनि से व्रत लिये थे। तत्पश्चात् गुरु महाराज सुखपूर्वक मुनिमण्डली के साथ खंभात पधारे।

खंभात में खंभात सम्प्रदाय के मुनि श्री छोगाजी तथा श्रीछगन मुनिजी विराजमान थे। कुछ दिन वहाँ विराज कर लींबड़ी की ओर विहार किया।

भाल निहाल हुआ—

लींबड़ी के आसपास का प्रदेश भाल प्रान्त कहलाता है। ज्येष्ठ मास में वहाँ की गर्मी मरुभूमि की गर्मी को भी मात करती है। दिन-दिन गर्मी का प्रकोप बढ़ता जा रहा था और धूप अधिकाधिक कठोर होती जा रही थी। ऐसा जान पड़ता था मानो सूरज के साथ षड्यन्त्र करके यह प्रकृति दयाहीनता का प्रदर्शन कर रही है। उस तेज धूप में भी मुनिमंडल जनता की दया के लिए आगे बढ़ा जा रहा था।

गुरु महाराज पाटडीया पधारे तो पूज्य श्रीगुलाबचन्द्रजी महाराज ने अपने दो शिष्यों को सेवा में भेज दिया।

लींबड़ी प्रवेश—

गुरुदेव के नेतृत्व में मुनिमण्डली ने लींबड़ी नगर में प्रवेश किया तो तहलका-सा मच गया। धर्मप्रेमी जनता को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे धर्मपर्यंक दिव्य प्रदीप मिल गया हो। धर्मविरोधी अधकार के तिमिर को दूर करने के लिए दिवाकर का उदय हुआ। जन-जन के बदन पर अपूर्व उल्लास दिखाई देने लगा। उत्साह का सागर उमड़ पड़ा। नगर में सात सौ घर स्थानकवासी जैनों के हैं। घर-घर में अनूठा आनन्द अनुभव किया जाने लगा। विराट् जनसमूह ने नगर के बाहर आकर गुरुदेव की अगवानी की। जय-जयकार के मुखर निनाद से धरती-

आकाश गूंजने लगे। बाजार में पहुंचे तो सारा वातावरण ठप्प हो गया। पहले से विराजमान मुनियों ने भी सामने आकर समुचित स्वागत किया।

तेरापंथी साधु उस समय लींबड़ी में ही किसी अजैन के घर में टिके हुए थे। धर्म के इस विराट् वैभव को देख कर उन्हें कैसा लगा?

तत्त्वनिर्णय के लिए चुनौती--

गुरु महाराज जिस दिन लींबड़ी पधारे, उसी दिन तेरहपंथी-प्रचार के संबंध में विचार हुआ। काठियावाड़ स्था० जैनों का केन्द्र स्थल है। जैनधर्म का प्रचार होना जगत्कल्याण का कारण है, फिर भले ही वह किसी भी सम्प्रदाय अथवा वर्ग के द्वारा हो। परन्तु जैन धर्म के नाम पर धर्मविरुद्ध प्रचार किस प्रकार सहन किया जाय? किन्हीं भी व्यक्तियों के साथ विरोध न होने पर भी जैनधर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध होने वाले प्रचार को रोकना प्रत्येक धर्मप्रेमी का प्रथम कर्तव्य है। तेरहपंथी सम्प्रदाय की बहुत सी मान्यताएँ जैनागमों से विपरीत हैं किन्तु निम्नलिखित मान्यताएँ तो लौकिक दृष्टि से भी विरुद्ध हैं और धर्म को बदनाम करने वाली होने से दुस्सह हैं—

(१) भगवान् महावीर के उपासक होने पर भी उन्हें 'चूका' बतलाना।

(२) शास्त्र का विधान है—'दाणाणं सेट्ठं अभयप्पयाणं।' अर्थात् सब दानों में अभयदान उत्तम है, परन्तु तेरहपंथी मरते हुए प्राणी को बचाना एकान्त पाप मानते हैं। किसी मकान में आग लग गई है। मकान का द्वार बाहर से बंद है। कोई पड़ोसी उन बिलबिलाते हुए मनुष्यों की रक्षा के लिए अगर किवाड़ खोल देता है तो उसे अठारह पाप लगते हैं। आग लगाने वाले को एक पाप और जलते प्राणी को बचाने में अठारह पाप!

कोई पड़ोसी या अन्य प्राणी भूख-प्यास से तड़प रहा है, मौत की घड़ियाँ गिन रहा है। ऐसी स्थिति में अगर कोई दयालु उसे अचित्त भोजन-पानी देकर भी बचा लेता है तो वह एकान्त पाप का भागी होता है।

(४) माता-पिता आदि उपकारी जनों की सेवा-शुश्रूषा करना पाप है; क्योंकि गृहस्थ मात्र जहर का टुकड़ा है।

(५) तेरहपंथी साधु के सिवाय अन्य किसी भी गृहस्थ या त्यागी को दान देना एकान्त पाप है।

और अपवाद मार्ग पर विचार होने लगा। अन्ततः निर्णय हुआ कि जब जैनागम आज्ञा देता है तो फिर हिचकिचाहट क्यों करना चाहिए? जैन मुनि महीने में तीन बार नदी पार कर सकता है तो हम तो जीवन में पहली बार ही पार करते हैं।

बस, सब मुनि नौका पर आरूढ़ हो गये। नाविक बोला—गुरुजी इसी महीसागर के किनारों पर ही मेरा जीवन व्यतीत हुआ है परन्तु आज-सा दिन पहले कभी नहीं आया। यह दिन बड़ा मंगलमय है कि सन्तों के दर्शन हुए। मैं बहुतों को पार करता हूँ मगर नहीं जानता कि मेरी नैया कैसे पार होगी?

धीरे-धीरे परले पार पहुँचे। नाविक ने यथाशक्ति नियम अंगीकार किये, जिस प्रकार प्राचीन काल में मच्छीमार ने मुनि से व्रत लिये थे। तत्पश्चात् गुरु महाराज सुखपूर्वक मुनिमण्डली के साथ खंभात पधारे।

खंभात में खंभात सम्प्रदाय के मुनि श्री छोगाजी तथा श्रीहर्षचन्द्र मुनिजी विराजमान थे। कुछ दिन वहाँ विराज कर लींमड़ी की ओर विहार किया।

भाल निहाल हुआ—

लींबड़ी के आसपास का प्रदेश भाल प्रान्त कहलाता है। ज्येष्ठ मास में वहाँ की गर्मी मरुभूमि की गर्मी को भी मात करती है। दिन-दिन गर्मी का प्रकोप बढ़ता जा रहा था और धूप अधिकाधिक कठोर होती जा रही थी। ऐसा जान पड़ता था मानो सूरज के साथ षड्यन्त्र करके जड़ प्रकृति दयाहीनता का प्रदर्शन कर रही है। उस तेज धूप में भी मुनिमंडल जनता की दया के लिए आगे बढ़ा जा रहा था।

गुरु महाराज पाणसीणा पधारे तो पूज्य श्रीगुलाबचन्द्रजी महाराज ने अपने दो शिष्यों को सेवा में भेज दिया।

लींबड़ी प्रवेश—

गुरुदेव के नेतृत्व में मुनिमण्डली ने लींबड़ी नगर में प्रवेश किया तो तहलका-सा मच गया। धर्मप्रेमी जनता को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पथप्रदर्शक दिव्य प्रदीप मिल गया हो। धर्मविरोधी प्रचार के तिमिर को दूर करने के लिए दिवाकर का उदय हुआ। जन-जन के वदन पर अपूर्व उल्लास दिखाई देने लगा। उत्साह का सागर उमड़ पड़ा। नगर में सात सौ घर स्थानकवासी जैनों के हैं। घर-घर में अनूठा आनन्द अनुभव किया जाने लगा। विराट् जनसमूह ने नगर के बाहर आकर गुरुदेव की अगवानी की। जय-जयकार के तुमुल निनाद से धरती

नगर वढवाण शहर तथा सुरेन्द्रनगर आदि स्थानों में पुन: पुन: होता रहा। धर्मध्यान भी सर्वत्र अच्छा होता रहा।

चूडा के कुछ भाई तेरापंथी प्रचार से प्रभावित हो गये थे इस कारण और श्रीज्ञानचन्द्रजी म० के आग्रह से भी चूडा में चातुर्मास करना स्वीकार किया।

समाज का क्रान्तिकारी कदम—

वि० सं० २००६ का चातुर्मास चूडा (काठियावाड) में किया। तेरापंथी मुनियों का चातुर्मास भी वहाँ था। इससे संभवत: दो वर्ष पूर्व तेरापंथी साधु डूं गरमलजी ने सर्वप्रथम चूडा में चातुर्मास किया था। अतएव वहाँ की जनता उनकी मान्यताओं से अनभिज्ञ थी। कई भाइयों ने उन्हें स्थानकवासी साधु समझ लिया था और संभव है तेरहपंथियों ने भी अपना पूरा और वास्तविक परिचय न दिया हो। उनके कतिपय भक्त अपने खर्च से तेरहपंथी पूज्यजी का आडम्बर दिखलाने के लिए स्था० जैनों को मारवाड ले जाने लगे थे। इस प्रकार छूत की बीमारी फैलती जा रही थी। स्थानकवासी समाज ने उस बीमारी की रोकथाम के सम्बन्ध में गंभीर विचार किया।

काठियावाड में संघ व्यवस्था बड़ी सुन्दर है। जब वहाँ के श्रावकों को तेरापंथी मान्यताओं का जिन्हें तेरापंथी साधु जानबूझ कर पहलेपहल छिपाने का प्रयत्न करते हैं, पता चला तो समाज ने यह फैसला कर लिया कि जो स्थानकवासी तेरहपंथी मत को स्वीकार करेगा उसके साथ रोटी-बेटी व्यवहार नहीं किया जायगा।

सौराष्ट्र के अन्तर्गत झालावाड में मूर्तिपूजकों और स्थानकवासियों में परस्पर विवाहसंबंध नहीं होता। पुरातन समय से यह नियम चला आ रहा है। जब तेरहपंथियों के लिए भी यह नियम लागू किया गया तो खलबली मच गई। इसके साथ ही श्रावक संघ ने स्थानकवासियों को यह आदेश दिया कि तेरहपंथी साधु भिक्षार्थ घर पर आवें तो भिक्षा देना गृहस्थ का कर्त्तव्य है, किन्तु उनके स्थान पर जाकर व्याख्यान न सुनें और न गुरुबुद्धि से उनका सम्मान करें।

इस प्रभावशाली कदम से तेरापंथी साधुओं के मंसूबों पर पानी फिर गया। वहाँ तंबोली और मोची ही उन्हें उपदेश सुनाने को मिले।

गुरु महाराज ने चूडा में जब तेरापंथी मान्यताओं पर प्रकाश डाला और जैनागमों के साथ उनकी असंगति दिखलाई तो बहुत से भाई जो अनभिज्ञता के कारण तेरहपंथी बन गये थे पुन: स्थानकवासी संघ में सम्मिलित हो गये।

स्थानकवासी श्रावकों ने धर्मरक्षार्थ सौराष्ट्र धर्मरक्षकसमिति की स्थापना की। सौराष्ट्र के नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में उसके सदस्य बने। समाज एकदम जागृत हो गया।

(६) कोई गुन्डा किसी की बहू-बेटी के सतीत्व का अपहरण करने पर उतारू है। अगर कोई नरवीर उसकी अक्ल ठिकाने लगाता है और सती की रक्षा करता है तो उस रक्षक को पाप का भागी होना पड़ता है।

इत्यादि मान्यताओं पर शास्त्राधार से विचार करने के लिए तेरहपंथी मुनियों को चुनौती देने का निश्चय किया गया।

नेमिनाथ की भूमि पर नेमिचन्द्र—

सौराष्ट्र की भूमि वह पवित्र भूमि है जो भगवान् नेमिनाथ की चरणरज से पावन बनी है। भगवान् अरिष्टनेमि ने पशु-पक्षियों को मरने से बचाने के लिए राजीमती का ही परित्याग नहीं किया संसार का भी परित्याग कर दिया था। उनके उस असाधारण उत्सर्ग ने समग्र भारत में सनसनी पैदा कर दी थी और लोगों का ध्यान मूक पशुओं की रक्षा की ओर बलात् आकृष्ट किया था। खेद है कि उन्हीं भगवान् नेमिनाथ की भूमि पर आज उनके ही उपदेशों पर पानी फेरने के लिए तेरापंथी साधु नेमिचन्द्रजी आये हैं। वे पशु-पक्षियों को मरने से बचाने में पाप बताने की नापाक प्ररूपणा करते हैं। उनकी बुद्धि को दुरुस्त करने का एक ही अहिंसात्मक तरीका है कि उन्हें शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रित किया जाय। इस उपाय से आमहवश वह न भी समझे तो जनता का भ्रम अवश्य दूर हो जायगा।

जीवदयासंघ के अध्यक्ष ने संघ की बैठक बुलवा कर शास्त्रार्थपत्र छपवाया और जाहिरात कर दी।

पत्र में महास्थविर चरित्रनायकजी का शतावधानी श्रीपूनमचन्द्रजी म० का तथा पण्डितरत्न श्रीपुष्करमुनिजी के नामों का उल्लेख देख तेरहपंथी साधु नेमिचन्द्रजी और धनराजजी सूर्योदय होते ही चुपचाप जीवदी छोड़ कर चलते बने। जनता को शास्त्रार्थ के द्वारा जो सत्य समझाना था वह बिना ही शास्त्रार्थ हुए समझ गई!

तेरापंथी साधुओं के चले जाने के पश्चात् कुछ दिन ठहर कर चरित्रनायकजी ने भी ठा० १४ से विहार किया। सायला में कवि श्रीनानचन्द्रजी म० विराजमान थे। श्री नानचन्द्रजी म० काठियावाड़ी मुनियों में श्रेष्ठ वक्ता और विद्वान् मुनि हैं। आपके साथ तत्त्वचर्चा करने में बहुत आनन्द रहा।

सायला से वढवाण केम्प पधारे तो वहाँ सायला सम्प्रदाय के श्रीकानजी मगनजी मुनि से मिलाप हुआ। पूनमचन्दजी म० ठा० ५, तपस्वी श्रीप्रकाशजी म० ठाणा २ तथा सदानन्दी श्रीछोटालालजी म० ठा० ३ का मिलन बाराबर

नगर, बढवाण शहर तथा सुरेन्द्रनगर आदि स्थानों में पुनः पुनः होता रहा। धर्मध्यान भी सब र अच्छा होता रहा।

चूडा के कुछ भाई तेरापंथी प्रचार से प्रभावित हो गये थे इस कारण और श्रीनानचन्द्रजी म० के आग्रह से भी चूडा में चातुर्मास करना स्वीकार किया।

समाज का क्रान्तिकारी कदम—

वि० सं० २००६ का चातुर्मास चूडा (काठियावाड) में किया। तेरापंथी मुनियों का चातुर्मास भी वहीं था। इससे संभवतः दो वर्ष पूर्व तेरापंथी साधु डू गरमलजी ने सर्वप्रथम चूडा में चातुर्मास किया था। अतएव वहाँ की जनता उनकी मान्यताओं से अनभिज्ञ थी। कई भाइयों ने उन्हें स्थानकवासी साधु समझ लिया था और संभव है तरहपंथियों ने भी अपना पूरा और वास्तविक परिचय न दिया हो। उनके कतिपय भक्त अपने खर्च से तेरापंथी पूज्यश्री का आडम्बर दिखलाने के लिए स्था० जैनों को मारवाड से लाने लगे थे। इस प्रकार छूत की बीमारी फैलती जा रही थी। स्थानकवासी समाज ने इस बीमारी की रोकथाम के सम्बन्ध में गंभीर विचार किया।

काठियावाड में संघ व्यवस्था बड़ी सुन्दर है। जब वहाँ के श्रावकों को तेरापंथी मान्यताओं का जिन्हें तेरापंथी साधु जानबूझ कर पहलेपहल छिपाने का प्रयत्न करते हैं पता चला तो समाज ने यह फैसला कर लिया कि जो स्थानकवासी तरहपंथी मत को स्वीकार करेगा उसके साथ रोटी-बेटी व्यवहार नहीं किया जायगा।

सौराष्ट्र के अन्तर्गत झालावाड में मूर्तिपूजकों और स्थानकवासियों में परस्पर विवाहसंबंध नहीं होता। पुराने समय से यह नियम चला आ रहा है। अब तेरहपंथियों के लिए भी यह नियम लागू किया गया तो खलबली मच गई। इसके साथ ही श्रावक संघ ने स्थानकवासियों को यह आदेश दिया कि तेरहपंथी साधु भिक्षार्थ घर पर आवें तो भिक्षा देना गृहस्थ का कर्त्तव्य है, किन्तु उनके स्थान पर जाकर व्याख्यान न सुनें और न गुरुबुद्धि से उनका सम्मान करें।

इस प्रभावशाली कदम से तेरापंथी साधुओं के मंसूबों पर पानी फिर गया। उन्हें छंबोली और चांदी ही उन्हें उपदेश सुनाने को मिले।

गुरु महाराज ने चूडा में जब तेरापंथी मान्यताओं पर प्रकाश डाला और जैनागमों के साथ उनका असंगति दिखलाई तो बहुत से भाई जो अनभिज्ञता के कारण तेरापंथी बन गये थे पुनः स्थानकवासी संघ में सम्मिलित हो गये।

स्थानकवासी श्रावकों ने धर्मरक्षार्थ सौराष्ट्र धर्मरक्षकसमिति की स्थापना की। सौराष्ट्र के नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में उसके सदस्य बने। समाज एकदम जागृत हो गया।

चूडा में तेरापंथी मुनि केसरीमलजी और वादरमलजी गुरु महाराज के पास क्षमापना के लिए आये। प्रेमपूर्वक बातचीत हुई। वे मिलनसार और शान्तस्वभाव प्रतीत हुए।

संघे शक्तिः कलौ युगे। संघ में बड़ी शक्ति होती है। सौराष्ट्र संघ ने अधर्म के प्रचार पर अंकुश लगा दिया। गुरु महाराज ने जिस उद्देश्य से चूडा में चातुर्मास किया था उसमें आशातीत सफलता प्राप्त हुई, परन्तु आपकी शान्तिप्रियता एवं सन्तजनोचित मृदुता के कारण किसी प्रकार की कटुकता उत्पन्न न हुई। सैद्धान्तिक विरोध के साथ आपने वैयक्तिक विरोध का स्पर्श तक न होने दिया।

तेरहपंथी प्रचारकों ने पानी की तरह पैसा बहाया, मगर उनका मनोरथ पूरा न हो सका। प्रचारकार्य ठप्प हो गया।

सेठ अम्बालाल रतिलाल मगनभाई जगजीवनभाई, हिम्मतलाल रतिलाल गांधी लल्लूभाई नागजी भाई आदि चूडानिवासी भाइयों ने गुरु महाराज की सराहनीय सेवा की। चूडा-चातुर्मास सानन्द समाप्त हुआ।

अट्ठावनवाँ चातुर्मास—

गुरुदेव चूडा से विहार कर लींबडी पधारे और करीब दस दिन वहाँ ठहर कर वढवाण सिटी पधार गये। श्रीपूनमचन्दजी म. तथा नवीन मुनिजी म० का पुनर्मिलाप हुआ। करीब एक हजार श्रावक-श्राविकाओं ने शहर के बाहर आकर स्वागत किया। सार्वजनिक प्रवचन हुए। वहाँ से जोरावरनगर एवं सुरेन्द्रनगर पधारे।

सुरेन्द्रनगर में सिद्धान्तशाला का निरीक्षण करके आपने सन्तोष व्यक्त किया और फर्माया—'सन्तों सतियों आदि के पठन-पाठन की यह व्यवस्था बहुत सुन्दर है। ज्ञान को शास्त्रों में बहुत महत्त्व दिया गया है और आज के युग में तो विद्या का ही बोलबाला है। प्राचीन काल में साधु और श्रावक जगत गुरु से अध्ययन करते थे; अब श्रावकों के लिए धार्मिक पाठशालाएँ चलती हैं। साधु-साध्वियों को भी उससे लाभ उठाने का अवसर मिल जाता है। यह लाभ वांछनीय है।'

मोर्वी राजकोट आदि स्थानों से प्रार्थनाएं आने लगीं मगर खान-पान प्रकृति के अनुकूल न होने के कारण गुरुदेव उन्हें स्वीकार न कर सके।

विहार—

काठियावाड़ से आपने गुजरात की ओर प्रस्थान किया। लखतर पहुँचे। वहाँ दो सौ घर स्था० जैनों के हैं। वहाँ का स्थानक आधुनिक ढंग का बना

सुन्दर बना है। वहाँ की जनता का धर्मोत्साह सराहनीय है। वहाँ से प्रस्थान कर वणी हो कर वीरमगाम पधारे। यहाँ सौ घर स्थानकवासियों के हैं। वहाँ दरियापुरी सम्प्रदाय के पं० मुनि श्री हर्षचन्द्रजी महाराज विराजमान थे। वार्त्तालाप से विदित हुआ कि आप जैनदर्शन के प्रकाण्ड विद्वान शान्तस्वभाव और वैराग्य की मूर्ति हैं। आपसे मिल कर प्रसन्नता हुई। गुरु महाराज सलवाड़ा होते हुए सार्णंद पधारे। यहाँ २२५ स्था० जैनों के घर हैं। प्राचीन स्थानक है। सम्प्रदायवाद तो नहीं पर प्रान्तवाद मौजूद था। गुजरातियों और काठियावाड़ियों में संघर्ष था। किन्तु सन्तों के प्रति समान रूप से सद्भाव देखा गया।

असाता का उदय—

चरित्रनायक अहमदाबाद पधार गये थे। व्याख्यानों की धूम थी। जनता में उत्साह उमड़ रहा था। एक रात्रि में जब सभी सन्त शयन कर रहे थे मुझे स्वप्न आया और स्वप्न कुछ ऐसा था कि मैं सहसा उठ बैठा। मैं यद्यपि फर्श से एक हाथ ऊँचे पाट पर सो रहा था फिर भी उस हड़बड़ में अकस्मात् नीचे गिर पड़ा। पहुँचे की हड्डी टूट गई। वेदना बहुत हुई, किन्तु किसी सन्त के विश्राम में बाधा डालना उचित न समझ कर पुनः उसी पाट पर लेट गया। जागते जागते शेष रात्रि व्यतीत की। चार बजे गुरुदेव ने उठ कर आवाज सुनी और पूछा तो मैंने सारी घटना कह सुनाई।

सूर्योदय होने पर मैं हाडवैद्य के पास ले जाया गया। उसने विश्राम दिखाया कि हड्डी टूट गई है, मगर जुड़ जायगी। कस कर पट्टा बाँध दिया। तीन महीने में आराम हुआ।

मेरे स्वस्थ होने से पहले ही गुरुदेव ने अहमदाबाद से विहार कर दिया। श्रीगणेश मुनि मेरी सेवा में वहीं रहे।

पार्वत्य प्रदेश में प्रचार—

जिसके जीवन में त्याग-वैराग्य की उदात्त भावना मूर्तिमती हो जाती है वह साधक जंगल में मंगल कर देता है, निविड़ अंधकार में अलौकिक ज्योति प्रदीप्त कर देता है और पापपंक में पड़े प्राणियों के उद्धार के लिए अपने सुख-दुःख की परवाह नहीं करता। वह परोपकार को ही आत्मोपकार मान कर इतस्ततः विचरण करता है और जनता को ज्ञान का आलोक प्रदान करता है।

गुरुदेव इसी प्रकार की भावना से प्रेरित होकर वृद्धावस्था में भी उग्रविहार कर देश-देशान्तर की जनता को उद्बोधन कर रहे थे। आप अहमदाबाद से मान्तिज पधारे। इस ओर जैन मुनियों का विचरण कम होता है; अतएव आपके

दर्शन पाकर जैन भाई जैसे कृतार्थ हुए। प्रवचन सुनने के लिए जैन-जैनेतर बहुत लोग आते और मांस-मदिरा आदि अभक्ष्य वस्तुओं के सेवन का त्याग करते। हिम्मतनगर की जनता ने भारी स्वागत किया। पास में प्राचीन राजधानी ईडर है। वहाँ भी आप पधारे।

ईडर पधारने पर विदुषी महासतीजी श्रीशीलकुँवरजी म० श्रीसायरकुँवरजी म० तथा श्रीदयाकुँवरजी म० आदि सतियाँ भी पधार गईं। आत्मसमाधा के प्रखर विद्वान् भोगुभा भाई आदि भी दर्शनार्थ अहमदाबाद से आये। आपके पदार्पण से इस पहाड़ी प्रदेश में बहुत सुन्दर धर्मप्रचार हुआ।

वहाँ से विहार कर आप विजयनगर (पोळावर) पधारे। वहाँ से लेकर ऋषभपुर तक के सभी ग्राम जंगली की गोद में बसे हैं। कहीं-कहीं तो रास्ता इतना बीहड़ है कि रेल और मोटर की बात दूर बैलगाड़ी भी नहीं जा सकती। वहाँ कोई विरला वीर पुरुष ही चल सकता है। वहाँ के ग्रामीणों की भाषा आदिवासियों की भाषा है। परन्तु सदाचार उनको विरासत में मिला है। किसी भी दुर्व्यसन का त्याग कराने में अधिक उपदेश की आवश्यकता नहीं होती थी। उनके लिए सब से बड़ा उपदेश था—निरामिष भोजी होना चोरी न करना राहगीरों को न लूटना आदि।

गुरुदेव के उपदेश सुन कर आदिवासी बहुत प्रभावित हुए। उन्हें उपदेश देते हुए आप बागपुरा (मेवाड़) पधारे। वहाँ के श्रावक आपको लेने के लिए हिम्मतनगर तक आ पहुँचे थे। वे रास्ते भर साथ रहे और उन्होंने हार्दिक गुरु भक्ति का परिचय दिया। इस प्रकार गुरुदेव लम्बा विहार करके पुनः मेवाड़ में पधार गये।

उस समय बागपुरा में श्री सोहनकुँवरजी म० श्रीरंगुकुँवरजी म० विदुषी बालब्रह्मचारिणी श्री शीलकुँवरजी म०, श्रीप्रभावतीजी म० तथा श्रीकुसुमवतीजी म० (सिद्धान्ताचार्या) आदि १६ महासतियाँ विराजमान थीं। गुरुदेव के पधारने की प्रतीक्षा की जा रही थी। जब आप पधार गये तो महाआह्लाद और आस-पास प्रदेश के दर्शनार्थी मानव उमड़ पड़े। अच्छा धर्मप्रचार हुआ। वहाँ के भक्तिप्रिय आगीरदार भी प्रवचनों से लाभ उठाने लगे।

पोळावर से बागपुरा का चालीस मील का रास्ता महास्थविर मुनिराज ने जिस कठिनाई से पार किया उसे तो कोई भुक्तभोगी ही समझ सकता है। वहाँ पानी घी से भी मँहगा रहा। जहाँ पानी इतना मँहगा हो वहाँ भोजन का पूछना ही क्या। मगर व वे महास्थविर कि सदा एक रस ! कभी उदासी नहीं, चिन्ता नहीं। कठिनाइयों को पैदा करना और जीतना उनकी साधना का अंग था।

देहाती जनता के जीवन को उन्नत बनाने को सदैव उन्होंने मुख्य समझा। अपने कष्टों को कर्मनिर्जरा का साधन माना।

कुछ दिन नागपुर विराज कर आप अहमदाबाद होकर जयपुर पधारे।

सेवा में हमारा आगमन—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देवदेव!॥

गुरुदेव के प्रति मेरे हृदय में जैसी श्रद्धा भक्ति और समर्पण की भावना थी प्रतीत होता है उल्लिखित पद्य में उसी का चित्रण किया गया है। वह मेरे माता-पिता थे बन्धु और सखा थे विद्या और संयम-निधि के दातार थे। क्या नहीं थे वह? वे मेरे लिए सभी कुछ थे। यही कारण था कि अस्वस्थता के कारण यद्यपि मुझे विलग होना पड़ा था तथापि मेरा मनमधुकर निरन्तर उनके चरणकमल में ही चलमग्न रहता था। अतएव हाथ ठीक होते न होते ही हम दोनों मुनि अहमदाबाद से चल पड़े और जयपुर में विराजित गुरुदेव की सेवा में आ पहुँचे। गुरुदेव के पूछने पर मैंने अपने विहार का वृत्तान्त उन्हें ब्यौरेवार बतलाया जिसका सार यह था—

फाल्गुन शुक्ला पंचमी को अहमदाबाद से चल कर हम साबरमती कलोल होते हुए पानसर पहुँचे। फिर मेहसाणा ऊंझा और सिधपुर होकर पालनपुर पहुँचे तो वहाँ एक सप्ताह ठहरे। व्याख्यान दिया। तत्पश्चात् रवाना होकर आबू गये। तलहटी के शान्तिआश्रम में विश्राम किया। शिखर पर गये। वहाँ का प्राकृतिक वैभव दर्शनीय है। श्वेताम्बर जैन मन्दिर की कलाकृति भी अपूर्व है। अनेक अन्य स्थान भी देखे। स्थानक में दो रात्रि निवास किया। वहाँ से चलकर सिरोही पहुँचे तो मुनि श्रीफूलचन्दजी और सुमित्रदेवजी से प्रेमपूर्ण मिलाप हुआ। तदनन्तर वामनवाड़ होकर पिंडवाड़ा आये और वहाँ से पर्वतीय प्रदेश में प्रवेश किया। नारस की घाटी में पहुँचने पर एक शस्त्रधारी आदिवासी मिला। उसने कहा—मैं आपके साथ चलूंगा क्योंकि यहाँ यात्रियों के लुटने का भय रहता है। यह कह कर वह साथ हो लिया और लम्बी दूर तक साथ चला।

इससे आगे कुंभारी मण्डरिया पिपलगांव होकर मादड़े पहुँचे और यहाँ कुछ दिन ठहरे। वहाँ से धाम भोंगणा आदि क्षेत्रों में धर्मप्रचारार्थ भ्रमण करते हुए नगड़ुम्बा होकर सम्भार आये और आपकी सेवा में आ पहुँचे।

श्रीगणेश मुनि ने विद्याध्ययन के साथ खूब सेवा की। मेरा हाथ अब पूरी तरह ठीक हो गया है।

श्रावकसंघों की अभ्यर्थना—

गुरु महाराज ने उदयपुर से गोगुन्दा की ओर विहार किया। बागपुरा नान्देशमा एवं गोगुन्दा आदि क्षेत्रों में आपके वचनामृत की तीव्र जिज्ञासा थी। उधर सादड़ीसंघ का भी अत्याग्रह था। सिवानची से भी बार-बार समाचार आ रहे थे। जब आपने गोगुन्दा में पदार्पण किया तो उल्लिखित क्षेत्रों के श्रावक आ पहुँचे। सभी ने आग्रह किया। अन्ततः नान्देशमा की प्रार्थना स्वीकृत हुई।

उदयपुर के समीप नाई ग्राम श्रीसंघ के प्रतिनिधि यशवन्तगढ़ आये और चौमासे की अत्याग्रहपूर्ण प्रार्थना करने लगे। तब गुरु महाराज ने मुझे और श्रीगणेश मुनि को वहाँ चौमासा करने का आदेश दिया।

आषाढ़ मास में पदराड़ (मेवाड़) में उपाध्याय पं० र० श्री आनन्दऋषिजी म० जो उस समय पाँच सम्प्रदायों के प्रधानाचार्य थे आपसे मिलने के लिए पधारे। उस समय श्रमणसंघ के संबंध में गम्भीर विचार विनिमय हुआ। बाहर से दर्शनार्थ श्रावक भी बड़ी संख्या में आ पहुँचे।

वि० सं० २००७ का आपका चातुर्मास नान्देशमा में सानन्द और सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

उनसठवाँ चातुर्मास—

चौमासा समाप्त होने के पश्चात् गुरुदेव विहार करके तिरपाल पधारे। हम दोनों मुनि भी वहीं सेवा में आ पहुँचे। गुरुदेव ने पूछा—स्वतन्त्र चौमासा करने का तुम्हारा यह प्रवास कैसा रहा? नाई संघ का उत्साह कैसा रहा?

मैंने निवेदन किया—हम दोनों ने एक अध्यापक की सहायता से हिन्दी साहित्य का अभ्यास किया। प्रतिदिन जनता को वीतरागवाणी सुनाई। वहाँ का संघ व्यवस्थित है। धर्मक्रिया अच्छी हुई।

तिरपाल से चरितनायकजी ठा० ३ से यशवन्तगढ़ की ओर पधारे और श्रीपुष्कर मुनिजी और देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री की ओर। यशवन्तगढ़ में उस समय वयोवृद्ध श्रीजहरकुँवरजी म० आदि सतियाँ विराजमान थीं और श्रीजहरकुँवरजी लम्बे समय से बीमार थीं। गुरु महाराज स्वयं महासतीजी के स्थान पर पधारे। महासतीजी बहुत दुर्बल हो चुकी थीं। इस अवसर पर आपने

फर्माया—महरकंवरजी के जीवन की ज्योति मन्द पड़ती जा रही है। शक्ति रूप तेल के अभाव में आयु की बत्ती जल रही है। मेरा प्रान्त का यह अपूर्व दीपक कभी भी बुझ सकता है।

पराबस्तगढ़ से गोगुन्दा पधार कर स्थिरवास करने वाली स्थविरा महासती श्री भूलकुंवरजी म० को दर्शन दिये। श्रीसंघ ने हार्दिक श्रद्धाभक्ति प्रकट की। तत्पश्चात् आप उदयपुर पधार गये।

त्रिवेणीसंगम—

उदयपुर के लिए यह कितना महान् सौभाग्य का अवसर था! चरित्रनायक पहले ही उदयपुर को अपने पादपद्मों से पुनीत कर चुके थे। अचानक एक दिन हर्षसमाचार मिला कि ब्यावर की ओर से प्रवर्त्तक श्री हजारीमलजी म० तथा कविसम्राट् उपाध्याय श्रीअमरचन्द्रजी म० आदि आठ सन्त पधार रहे हैं।

समाचार मिलते ही श्रावक-श्राविकाओं के साथ हम दोनों मुनि स्वागतार्थ रवाना हुए। उनकी महिमा से हम कुछ-कुछ परिचित थे; परन्तु दर्शन का सौभाग्य पहली बार ही प्राप्त होने वाला था। वयोवृद्ध श्रीहजारीमलजी म० और उपाध्याय श्री प्रथम बार ही उदयपुर पधार रहे थे।

जनसमूह में अपूर्व उत्साह था गहरी उमंग थी। घर घर में आनन्द की लहरें उठ रही थीं। मुनिराजों का पदार्पण का वह दृश्य स्मरणीय बन गया।

ग्यारहों मुनिराज एक ही स्थान पर पंचायती नोहरे में विराजे। मुनिराजों का यह पारस्परिक स्नेह देखकर स्थानीय संघ के प्रमोद में अत्यधिक वृद्धि हुई। श्रीरतनलालजी मेहता राजमलजी चाफणा आदि शास्त्रज्ञ श्रावकों ने कविजी की उपासना से तत्त्वचर्चा का खूब लाभ लिया। आपके सार्वजनिक प्रवचन भी हुए। मगर आपने जल्दी ही उदयपुर से विहार कर दिया। डबोक में पुनः सम्मिलन हो गया। वहाँ रात्रि में पण्डित मुनि श्रीसुरेशचन्द्रजी का 'दान' विषय पर सुन्दर प्रवचन हुआ। डबोक से कविश्रीजी आदि ने चित्तौड़ की ओर तथा चरित्र-नायकजी ने मार्गा होकर पलाणा की तरफ विहार किया।

पलाणा में महासती श्री अमरकुंवरजी विराजित थीं और बहुत दिनों से गुरुदेव के दर्शन की आशा लगाये थीं। कुछ दिन वहाँ विराज कर आप नाथद्वारा और फिर कांकरोली पधारे। प्रवचन करते हुए आपने फरमाया—आप लोग विशाल सरोवर के किनारे बसे हैं। इस सरोवर से आपने क्या पाठ सीखा है?

श्रीगणेश मुनि ने विद्याध्ययन के साथ खूब सेवा की। मेरा हाथ अब पूरी तरह ठीक हो गया है।

श्रावकसंघों की अभ्यर्थना—

गुरु महाराज ने उदयपुर से गोगुन्दा की ओर विहार किया। नागपुरा नान्देशमा एवं गोगुन्दा आदि क्षेत्रों में आपके वचनामृत की तीव्र पिपासा थी। उधर सादड़ीसंघ का भी अत्याग्रह था। सिवानसी से भी बार-बार समाचार आ रहे थे। जब आपने गोगुन्दा में पदार्पण किया तो उल्लिखित क्षेत्रों के श्रावक आ पहुँचे। सभी ने आग्रह किया। अन्ततः नान्देशमा की प्रार्थना स्वीकृत हुई।

उदयपुर के समीप नाई ग्राम श्रीसंघ के प्रतिनिधि पदराडा आये और चौमास की अत्याग्रहपूर्ण भावना करने लगे। तब गुरु महाराज ने मुझे और श्रीगणेश मुनि को वहाँ चौमासा करने का आदेश दिया।

आषाढ़ मास में पदराड़ (मेवाड़) में उपाध्याय पं० र० श्री आनन्दऋषिजी म० जो उस समय पाँच सम्प्रदायों के प्रधानाचार्य थे आपसे मिलने के लिए पधारे। उस समय श्रमणसंघ के संबंध में गम्भीर विचार विनिमय हुआ। बाहर से दर्शनार्थ श्रावक भी बड़ी संख्या में आ पहुँचे।

वि० सं० २००७ का आपका चातुर्मास नान्देशमा में सानन्द और सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

उनसठवाँ चातुर्मास—

चौमासा समाप्त होने के पश्चात् गुरुदेव विहार करके तिरपाल पधारे। हम दोनों मुनि भी वहीं सेवा में जा पहुँचे। गुरुदेव ने पूछा—स्वतन्त्र चौमासा करने का तुम्हारा यह प्रयास कैसा रहा? नाई संघ का उत्साह कैसा रहा?

मैंने निवेदन किया—हम दोनों ने एक अध्यापक की सहायता से हिन्दी साहित्य का अभ्यास किया। प्रतिदिन जनता को वीतरागवाणी सुनाई। वहाँ का संघ व्यवस्थित है। धर्मक्रिया अच्छी हुई।

तिरपाल से चरितनायकजी ठा० ३ से पदराडा की ओर पधारे और श्रीपुष्कर मुनिजी और देवेन्द्र मुनिजी सादड़ी की ओर। पदराडा में उस समय वयोवृद्ध श्रीछगनकुंवरजी म० आदि सतियाँ विराजमान थीं और श्रीछगनकुंवरजी लम्बे समय से बीमार थीं। गुरु महाराज स्वयं महासतीजी के स्थान पर पधारे। महासतीजी बहुत दुर्बल हो चुकी थीं। उस अवसर पर आपने

बवाली वहाँ से चार मील दूर था। तुरन्त सूचना दी गई। आठ-दस श्रावक तैयारी करके आ पहुँचे। उन्होंने निवेदन किया—आप से चला नहीं जायगा। हम डोली ले आये हैं। आप उसमें विराजिये। हम लोग ले चलेंगे। पर परपीड़ाकातर गुरुदेव ने कहा—नहीं भाई, मैं डोली का उपयोग नहीं करूँगा। साधु आत्मसाधना के लिए साधु बनता है। दूसरों को कष्ट देने के लिए नहीं।

यह कह कर हाथ में लाठी ली और चल दिये। गुरुदेव ने उस अवस्था में भी उस दिन दस मील विहार किया। बवाली जा पहुँचे। वैद्य का इलाज चालू हुआ। सूचना पाते ही पाली के करीब ४२ श्रावक लॉरी लेकर डाक्टर के साथ आये। मंत्री श्रीपुष्कर मुनिजी म तथा श्रीदेवेन्द्र मुनिजी म भी रायपुर से त्वरापूर्ण विहार करके बवाली पहुँच गये।

इलाज से कुछ आराम होने पर आप पाली पधारे। बड़े समारोह के साथ पाली में श्री महावीरजयन्ती मनाई गई। किन्तु पूरी तरह रोग दूर न होते देख आप जोधपुर पधारे। उस समय मुँह से पानी बहुत गिरता था और जीभ लड़खड़ाती थी। प्रवचन करना तो नाडोल से ही छूट गया था मगर धर्म के प्रभाव से विहार नहीं रुका था। सकुशल जोधपुर पधारने पर महारकाचार्य वैद्यराज यति श्री उदयचन्दजी म० चांगोद वालों ने उपचार आरम्भ किया। गुर्दा साहब के साथ आपकी पुरानी प्रीति थी, अतएव औषध में श्रद्धा और स्नेह का पुट होने से जल्दी उसका प्रभाव दिखलाई दिया। चौथे दिन आराम हो गया। मुँह से पानी गिरना बन्द हो गया। दस दिन औषध सेवन करने से खान-पान आदि क्रियाएँ पूर्ववत् चालू हो गईं।

गुरुदेव का पुरुषार्थ एक महान् आदर्श है। ग्यारह वर्षों से घुटने में दर्द चल रहा था। सत्तर वर्ष के लगभग उम्र हो चुकी थी। स्थिरवास करने का समय आ गया था। अहमदाबाद, उदयपुर, सादड़ी, पाली, जोधपुर आदि के भक्त संघों की ओर से पुनः पुनः प्रार्थनाएँ हो रही थीं। मगर गुरुदेव ही थे कि स्थिर वास करने का विचार भी मन में नहीं आने देते थे। वह महाश्रमण सच्चे अर्थ में अप्रतिबद्ध थे। जनता का उद्बोधन देते हुए, धर्मभावना जगाते हुए अप्रतिबद्ध भाव से इतस्ततः परिभ्रमण करना और साधना पथ पर अग्रसर होना ही आपका लक्ष्य था।

गुरुदेव गुर्दा साहब की हवेली में ही बहुत दिनों तक विराजे। आराम होने पर गुर्दा सा० ने कहा—अब आप इच्छानुसार विहार कर सकते हैं। आप की इच्छा होगी तो मैं हाजिर रहूँगा।

सरोवर पानी का संचय करके भूमि को प्रदान करता है, जिससे आसपास का प्रदेश सदा सरसब्ज बना रहता है। लाखों मन अन्न उत्पन्न होता है। सरोवर को करीब दो महीने आमद होती है और दस महीना खर्च ही खर्च होता रहता है। फिर भी वह दान करने में कभी कृपणता प्रदर्शित नहीं करता। फलतः वह वैसे तभी उसमें अथाह जल भरा रहता है। मगर आप जितना धन संचित करते हैं उतना परोपकार में खर्च नहीं करना चाहते। फिर भी धन का अभाव महसूस करते हैं। यह आप की मनोवृत्ति का ही परिणाम है।

राजनगर कांकरोली का तालाब प्रसिद्ध है। उसी को लक्ष्य करके चरितनायक ने उपर्युक्त वाक्य कहे थे।

वहाँ से चारभुजा होते हुए सादड़ी पधारे। व्याख्यान में जनता ने खूब रस लिया। कुछ दिन विराजने के पश्चात आपने पाली की ओर विहार किया।

असाता वेदनीय का उदय

आश्चर्य की बात है कि परोपकारी सदाचारी सन्त जन भी अशुभ कर्मों के घेरे में आ जाते हैं। वस्तुतः पूर्वार्जित कर्म किसी का लिहाज नहीं करते।

गुरुदेव सादड़ी से नाडोल पधारे। रात्रि के आठ बजे का समय था। एक यात्री भाई ने गुरुदेव के समीप आकर कहा—महाराज, आज का साधुसमाज अध्यात्मवाद को छोड़ कर भौतिकवाद की ओर क्यों झुक रहा है ?

गुरुदेव ने हाथ में माला लिये हुए कहा—तू सन्तों पर टीका-टिप्पणी करता है पर स्वयं भगवान् का नाम लेता है या नहीं ? दूसरों की आलोचना करने से कल्याण नहीं होगा। वे जो कुछ करें, तू अपना देख। पैर तले की आग बुझा, पहाड़ बुझाने की फिर सोचना।

करीब घंटे भर वातचीत करके वह भाई चला गया। आपने जाप करना आरंभ किया कि उसी समय मुँह पर लकवे का आक्रमण हो गया। रात्रि में आपने उसका कुछ भी जिक्र न किया। प्रातः पाँच बजे लगभग जैसे-तैसे आप बोले—मेरे मुँह पर कुछ हो गया है। बोलते नहीं बनता।

उस ग्राम में स्थानकवासी जैनों का एक भी घर नहीं था। वहाँ से छः मील विहार करके आगे बढ़े तो एक छोटा-सा गाँव मिला। वहाँ दो घर स्था. जैनों के थे। नौ बजे आहार करने बैठे तो कुछ खाया नहीं गया। तब आप समझ गये कि यह लकवे का प्रकोप है। मैं रोग से अनभिज्ञ था। छोटे मुनि बालक थे। हम सब सोच विचार में पड़ गये।

जवाली वहाँ से चार मील दूर था। तुरन्त सूचना दी गई। आठ-दस श्रावक तैयारी करके आ पहुँचे। उन्होंने निवेदन किया—आप से चला नहीं जायगा। हम डोली से आये हैं। आप उसमें विराजिये। हम लोग ले चलेंगे। पर परीषहजयतर गुरुदेव ने कहा—नहीं भाई, मैं डोली का उपयोग नहीं करूँगा। साधु आत्मसाधना के लिए साधु बनता है। दूसरों को कष्ट देने के लिए नहीं।

यह कह कर हाथ में लाठी की और चल दिये। गुरुदेव ने उस अवस्था में भी उस दिन दस मील विहार किया। जवाली आ पहुँचे। वैद्य का इलाज चालू हुआ। सूचना पाते ही पाली के करीब ४५ श्रावक कारें लेकर डाक्टर के साथ आये। मंत्री श्रीपुष्कर मुनिजी म. तथा श्रीदेवेन्द्र मुनिजी म. भी रायपुर से त्वरापूर्ण विहार करके जवाली पहुँच गये।

इलाज से कुछ आराम होने पर आप पाली पधारे। बड़े समारोह के साथ पाली में श्री महावीरजयन्ती मनाई गई। किन्तु पूरी तरह रोग दूर न होते देख आप जोधपुर पधारे। उस समय मुँह से पानी बहुत गिरता था और जीभ लड़खड़ाती थी। प्रवचन करना तो नाडोल से ही छूट गया था मगर धर्म के प्रभाव से विहार नहीं रुका था। सकुशल जोधपुर पधारने पर भट्टारकाचार्य वैद्यराज यति श्री उदयचन्दजी म० चांदोद वालों ने उपचार आरम्भ किया। गुर्दा साहब के साथ आपकी पुरानी प्रीति थी अतएव औषध में श्रद्धा और स्नेह का पुट होने से जल्दी उसका प्रभाव दिखलाई दिया। चौथे दिन आराम हो गया। मुँह से पानी गिरना बन्द हो गया। दस दिन औषध सेवन करने से खान-पान आदि क्रियायें पूर्ववत् चालू हो गईं।

गुरुदेव का पुरुषार्थ एक महान आदर्श है। ग्यारह वर्षों से घुटने में दर्द चल रहा था। सत्तर वर्ष के लगभग उम्र हो चुकी थी। स्थिरवास करने का समय आ गया था। अहमदाबाद, उदयपुर, सादड़ी पाली जोधपुर आदि के भक्त संघों की ओर से पुनः पुनः प्रार्थनाएँ हो रही थीं। मगर गुरुदेव ही थे कि स्थिर वास करने का विचार भी मन में नहीं आने देते थे। वह महामनस्वी सच्चे अर्थ में 'परिव्राजक' थे। जनता को उद्बोधन देते हुए, धर्मभावना जगाते हुए अप्रतिबद्ध भाव से इतस्ततः परिभ्रमण करना और साधना पथ पर अग्रसर होना ही आपका लक्ष्य था।

गुरुदेव गुर्दा साहब की हवेली में ही बहुत दिनों तक विराजे। आराम होने पर गुर्दा सा० ने कहा—अब आप इच्छानुसार विहार कर सकते हैं। आप स्वेच्छा होगी तो मैं हाजिर रहूँगा।

सरोवर पानी का संचय करके भूमि को प्रदान करता है, जिससे आसपास का प्रदेश सदा सरसब्ज बना रहता है। लाखों मन अन्न उत्पन्न होता है। सरोवर को करीब दो महीने आमद होती है और दस महीना खर्च ही खर्च होता रहता है। फिर भी वह दान करने में कभी कृपणता प्रदर्शित नहीं करता। अतएव जब देखो तभी उसमें अथाह जल भरा रहता है। मगर आप जितना धन संचित करते हैं उतना परोपकार में खर्च नहीं करना चाहते। फिर भी धन का अभाव महसूस करते हैं। यह आप की मनोवृत्ति का ही परिणाम है।

राजनगर कांकरोली का तालाब प्रसिद्ध है। उसी को लक्ष्य करके चरितनायक ने उपर्युक्त वाक्य कहे थे।

वहाँ से चारभुजा होते हुए सादड़ी पधारे। व्याख्यान में जनता ने खूब रस लिया। कुछ दिन विराजने के पश्चात आपने पाली की ओर विहार किया।

असाता वेदनीय का उदय

आश्चर्य की बात है कि परोपकारी सदाचारी सन्त जन भी अशुभ कर्मों के घेरे में आ जाते हैं। वस्तुतः पूर्वोर्जित कर्म किसी का लिहाज नहीं करते।

गुरुदेव सादड़ी से नाडोल पधारे। रात्रि के आठ बजे का समय था। एक यात्री भाई ने गुरुदेव के समीप आकर कहा—महाराज, आज का साधुसमाज अध्यात्मवाद को छोड़ कर भौतिकवाद की ओर क्यों झुक रहा है?

गुरुदेव ने हाथ में माला लिये हुए कहा—तू सन्तों पर टीका-टिप्पणी करता है पर स्वयं भगवान् का नाम लेता है या नहीं? दूसरों की आलोचना करने से कल्याण नहीं होगा। वे जो कुछ करें, तू अपना देख। पैर तले की आग बुझा पहाड़ बुझाने की फिर सोचना।

करीब घंटे भर बातचीत करके वह भाई चला गया। आपने जाप करना आरंभ किया कि उसी समय मुँह पर लकवे का आक्रमण हो गया। रात्रि में आपने उसका कुछ भी जिक्र न किया। प्रातः पाँच बजे लगभग जैसे-तैसे आप बोले—मेरे मुँह पर कुछ हो गया है। बोलना नहीं बनता।

उस ग्राम में स्थानकवासी जैनों का एक भी घर नहीं था। वहाँ से छः मील विहार करके आगे बढ़े तो एक छोटा-सा गाँव मिला। वहाँ दो घर स्था० जैनों के थे। नौ बजे आहार करने बैठे तो कुछ खाया नहीं गया। तब आप समझ गये कि यह लकवे का प्रकोप है। मैं रोग से अनभिज्ञ था। छोटे मुनि बालक थे। हम सब सोच-विचार में पड़ गये।

बबाली वहाँ से चार मील दूर था। तुरन्त सूचना दी गई। आठ-दस श्रावक तैयारी करके आ पहुँचे। उन्होंने निवेदन किया—आप से चला नहीं जायगा। हम झोली ले आये हैं। आप उसमें विराजिये। हम लोग ले चलेंगे। पर परीषहजेता गुरुदेव ने कहा—नहीं भाई, मैं झोली का उपयोग नहीं करूँगा। साधु आत्मसाधना के लिए साधु बनता है। दूसरों को कष्ट देने के लिए नहीं।

यह कह कर हाथ में लाठी ली और चल दिये। गुरुदेव ने उस अवस्था में भी उस दिन दस मील विहार किया। बबाली आ पहुँचे। वैद्य का इलाज चालू हुआ। सूचना पाते ही पाली के करीब ४५ श्रावक लॉरी लेकर डाक्टर के साथ आये। मंत्री श्रीपुष्कर मुनिजी म. तथा श्रीदेवेन्द्र मुनिजी म. भी रायपुर से त्वरापूर्ण विहार करके बबाली पहुँच गये।

इलाज से कुछ आराम होने पर आप पाली पधारे। बड़े समारोह के साथ पाली में श्री महावीरजयन्ती मनाई गई। किन्तु पूरी तरह रोग दूर न होते देख आप जोधपुर पधारे। उस समय मुँह से पानी बहुत गिरता था और जीभ लड़खड़ाती थी। प्रवचन करना तो नाबोल से ही छूट गया था मगर धर्म के प्रभाव से विहार नहीं रुका था। सकुशल जोधपुर पधारने पर भट्टारकाचार्य वैद्यराज यति श्री उदयचन्दजी म० चांदोर वालों ने उपचार आरम्भ किया। गुर्दे साहब के साथ आपकी पुरानी प्रीति थी अतएव औषध में श्रद्धा और स्नेह का पुट होने से जल्दी उसका प्रभाव दिखलाई दिया। चौथे दिन आराम हो गया। मुँह से पानी गिरना बन्द हो गया। दस दिन औषध सेवन करने से खान-पान आदि क्रियाएँ पूर्ववत् चालू हो गईं।

गुरुदेव का पुरुषार्थ एक महान आदर्श है। ग्यारह वर्षों से घुटने में दर्द चल रहा था। सत्तर वर्ष के लगभग उम्र हो चुकी थी। स्थिरवास करने का समय आ गया था। अहमदाबाद, उदयपुर, सादड़ी, पाली, जोधपुर आदि के भक्त संघों की ओर से पुनः पुनः भावनाएँ हो रही थीं। मगर गुरुदेव ही थे कि स्थिरवास करने का विचार भी मन में नहीं आने देते थे। वह महाश्रमण सच्चे अर्थ में 'परिव्राजक' थे। जनता को उद्बोधन देते हुए, धर्मभावना जगाते हुए अप्रतिबद्ध भाव से इतस्ततः परिभ्रमण करना और साधना पथ पर अग्रसर होना ही आपका लक्ष्य था।

गुरुदेव गुर्दे साहब की हवेली में ही बहुत दिनों तक विराजे। आराम होने पर गुर्दे सा० ने कहा—अब आप इच्छानुसार विहार कर सकते हैं। आपकी इच्छा होगी तो मैं हाजिर रहूँगा।

गुरु साहब से छुट्टी मिलते ही आपने पाली की ओर विहार कर दिया। ज्येष्ठ मास की कड़कड़ाती धूप में चल कर पाली पधारे। जोधपुर, सिवाना, पाली एवं सादड़ी की ओर से चौमासे का अनुरोध हुआ किन्तु आपने सादड़ी को समयानुसार उपयुक्त समझ कर स्वीकृति प्रदान की।

चौमासे में एक बार पुनः उसी बीमारी ने सिर उठाया और पैर पर प्रभाव डाला। मगर शीघ्र ही सेठ सागरमलजी जोधपुर जाकर औषध ले आये। गुरु साहब की औषध से बीमारी फिर उपशान्त हो गई।

शिष्टमंडल का आगमन—

उन दिनों स्थानकवासी समाज में पुनः एकता और संगठन की चर्चा थी। यह चर्चा कोरी चर्चा ही न रही थी किन्तु मूर्त रूप धारण करने की तैयारी थी। ब्यावर में पाँच सम्प्रदायों का संगठन हो गया था और पं० र० श्री आनन्दऋषिजी म० उनके आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जा चुके थे। इस आदेश से अनुप्राणित होकर समाज के वरिष्ठ साधु और श्रावक समग्र सम्प्रदायों को संगठित करने का सुहावना स्वप्न देखने लगे थे।

अ० भा० स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेन्स ने यह प्रवृत्ति अपने हाथ में ली। प्रमुख-प्रमुख मुनिराजों की सेवा में शिष्टमंडल पहुँचे। सादड़ी में गुरुदेव की सेवा में भी एक शिष्टमंडल आया। विचार विनिमय हुआ। आपका जीवन तो एकता का प्रतीक था ही अतएव आपने अखिल भारतीय साधुसम्मेलन के आयोजन का प्रबल समर्थन करते हुए फर्माया—"संघ शब्द ही एकता का सूचक है। जिसमें एकता नहीं संगठन नहीं जिनके आचार-विचार में गाढ़ी अनुरूपता नहीं उसे संघ कहना विडम्बना है और संघ समझना आत्मवंचना है। समग्र भारत का स्थानकवासी संघ एक है तो क्यों न हमारी गतिविधि एक हो? क्यों न श्रद्धा-प्ररूपणा एवं और प्रवृत्ति में एकरूपता हो? हमें एक तंत्र में रहना चाहिए और एक सूत्र में बद्ध होना चाहिए। जब हमारे आधारभूत सिद्धान्तों में एकरूपता है तो ऊपरी बातों की असमता का सहज ही मिटाया जा सकता है। हाँ मानसिक उदारता चाहिए, संकीर्ण भावनाएँ दूर होनी चाहिए।

तत्पश्चात् स्थानीय श्रीसंघ को लक्ष्य करके आपने फर्माया—घर बैठे गंगा आ रही है। जोधपुर, पाली और सोजत वाले चाहते हैं कि सम्मेलन उनके यहाँ हो किन्तु सादड़ी में सम्मेलन होना अनेक दृष्टियों से उपयुक्त प्रतीत होता है। प्रान्तीय जैनों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

आपके इन संक्षिप्त वचनों का सादड़ी-संघ पर बाबुसा असर पड़ा। सेठ मनोरथमलजी पूनमिया श्री सवानमलजी सवाईमलजी कुन्दनमलजी पीसूलालजी आदि संघ में प्रमुख महानुभाव थे। सब ने परामर्श करके सम्मेलन के लिए आमन्त्रणपत्र भेज दिया और वही यथासमय स्वीकृत हुआ।

हिन्दी साहित्य की उपाधि परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए श्री देवेन्द्र मुनि को जोधपुर पहुँचना था। मंत्री श्री पुष्कर मुनिजी म० साथ पधारे। गुरु महाराज ठा० ३ से वहाँ विराजमान रहे। जनता की श्रद्धा-भक्ति एवं धर्मप्रीति देख कर गुरुदेव का मन वहाँ लग गया था तथापि किसी एक स्थान पर जम कर रहना आपकी प्रकृति से मेल नहीं खाता था। विहार करने से आपका जीवन पुष्प की तरह खिल उठता था। अतएव किंचित् काल के पश्चात् आपने मनोबल के सहारे से विहार कर दिया।

संकल्पसिद्धि—

शरीर पर बुढ़ापा छा गया था मगर मन और वाणी में यौवन चमकता था यह गुरुदेव के जीवन की विशेषता थी। किसी ने ठीक ही कहा है—

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः

मगर मन सबल है तो सिर सफेद होने मात्र से कोई बूढ़ा नहीं होता। जब आपने सादड़ी से विहार किया तो पौष सुदी की सर्दी का जोर था। हृदय को कम्पित करने वाली शीतल वायु चल रही थी। सादड़ी के आबालवृद्ध सभी सशंक थे कि इस सर्दी में बूढ़े बाबा कैसे विहार कर सकेंगे ! मगर सबल संकल्प के धनी गुरुदेव की एक ही धुन थी—विहार, विहार, विहार।

सादड़ी से चल कर मुंडारा बाली फालना और सविराज आदि क्षेत्रों में विचरण करते हुए तखतगढ़ और फिर आहौर पधारे। श्री पुष्कर मुनिजी म० तथा श्री देवेन्द्र मुनिजी जोधपुर से आहौर पहुँचे।

आहौर से ठा० ५ जालौर पधारे। इस बार के विहार में आपने संघ की एकता को ही अपना मुख्य मिशन बना लिया था। जहाँ पधारे, संगठन का पावन शंख फूँका और एकता का जाप किया। जालौर में आपने कहा था— संगठन की योजना बन रही है। जालौर में स्थानकवासी जैनों के ५०० घर हैं और साधुसमागम कम होता है। ऐसी स्थिति में संघसंगठन अत्यावश्यक है।

आपके इन उपदेशों का बहुत सुन्दर असर हुआ। एकता की भावना सजीव बनी। साधुसम्मेलन की भूमिका सुदृढ़ हुई।

शारीरिक वार्धक्य देखकर रोगों को आक्रमण करने का साहस होने लग था। तथापि मनोबल के सहारे आप उन्हें चुनौती दिये अपने कर्तव्य में संलग्न थे।

सत्तर वर्ष पार कर जाने के पश्चात् भी आपके दाहिने बैल सब मौजूद थे। सुखपूर्वक चुने चने चबा लेते थे। कुछ दाढ़ों के सिवाय बत्तीसी ज्यों की त्यों बनी थी। मगर जालौर में आपकी दाढ़ में दर्द हो गया। उसे निकलवाने से दर्द मिट गया।

जालौर से विहार करके आप मोकलसर और सिवाना पधारे। वहाँ कुछ दिन ठहर कर सादड़ी की ओर विहार किया। किन्तु आहपुरा पहुँचने पर आप ज्वरग्रस्त हो गये। विहार में बाधा पड़ गई, मगर थोड़ा स्वास्थ्य ठीक होते ही आप चल पड़े। दुर्बल स्थिति में विहार करने के कारण सविराम पहुँचने पर स्वास्थ्य गिर गया फिर भी शरीर की परवाह किये बिना आपने विहार जारी रखा जब तक पैर पूरी तरह जवाब न देदें तब तक चलते चलना ही ऐसे आपका निश्चय था।

फालना पधारने पर चारों ओर से मुनियों के आगमन के समाचार आने लगे थे अतएव आप शीघ्रतापूर्वक सादड़ी पधारे। आगन्तुक मुनियों के स्वागत के लिए आप स्वयं पधारकर वात्सल्य का सजीव आदर्श उपस्थित करते थे।

सादड़ी से विहार करते समय लोगों ने कहा था—गुरुदेव! इधर सम्मेलन की तैयारियाँ हो रही हैं और आप बाहर पधार रहे हैं? तब आपने फर्माया था—निष्कारण एक जगह बैठे रहना मैं ठीक नहीं समझता। अभी समय पर्याप्त है। आसपास के क्षेत्रों को स्पर्श कर पुनः सादड़ी लौट आने की मेरी भावना है।

आपका यह संकल्प पूर्ण हुआ। अनेक अड़चनें आने पर भी आप सादड़ी पधार गये।

बृहत्साधुसम्मेलन सादड़ी—

अ० भारतीय बृहत्साधुसम्मेलन अक्षयतृतीया के शुभ दिन आरम्भ हुआ। क्या ही हर्ष और उल्लास का वह प्रसंग था। मानो हजार वर्ष के दुर्भेद्य व्यवधान को चीर कर मानो महावीरयुग आ गया हो। श्रमणगण संगठन की साकार कल्पनायें लिये एकत्र हुए। सभी लोग संगठन के सुन्दर संकल्प के स्वप्न में विचरण कर रहे थे। पैंतालीस हजार के लगभग नर-नारी एकता के पुनीत पर्व का समर्थन करने के हेतु सादड़ी के प्रांगण में उपस्थित थे।

लौंकाशाह गुरुकुल के नव्य भव्य भवन में सभा होती थी। आगन्तुक श्रावक-श्राविकाओं को ठहरने के लिए विशाल लौंकाशाह नगर का निर्माण किया गया था। स्थानकवासी सम्प्रदाय की प्रायः सभी वरिष्ठ विभूतियाँ वहाँ मौजूद थीं। इस विशाल मुनिमण्डल में गुरुदेव ही सबसे बड़े महास्थविर थे, परन्तु आपकी निरभिमान वृत्ति भी उतनी ही बड़ी थी। प्रसंग आने पर आप यही कहते—ज्ञान, ध्यान और तप में मुझसे भी बड़े-बड़े मुनिराज यहाँ विराजमान हैं। मैंने तो केवल सबसे पहले सिर मुड़ाया है।

धन्य महास्थविर! आपकी महानुभावता धन्य है। आपकी इस नम्रता को कोटि-कोटि प्रणाम हैं।

मुनिराजों की सभा में शान्ति के साथ कार्य आरम्भ हुआ। वादविवाद होते संवाद होते अनुकूल-प्रतिकूल संभावनाओं पर विचारविमर्श होते, मगर शान्ति और शिष्टता के साथ। आखिर श्री वर्धमान श्रमणसंघ की स्थापना हुई। संघ का विधान बन गया। विभिन्न सम्प्रदायों का सरिताओं की तरह श्रमणसंघ के महासागर में विलीनीकरण हो गया। पदवीधारी मुनिराजों ने अपनी अपनी पदवियों का परित्याग किया तो ऐसा भास होने लगा कि वीरशासन के उत्कर्ष का मंगलप्रभात हो रहा है। तत्पश्चात् वयोवृद्ध जैनागमवारिधि श्री आत्मारामजी म० आचार्य पं० श्री गणेशीलालजी म० उपाचार्य तथा श्री पं० आनन्दऋषिजी म० प्रधान मन्त्री निर्वाचित हुए। इनके अतिरिक्त १६ विद्वान् मुनिराजों का मंत्रीमण्डल बना जिनमें पं० र० श्री पुष्करमुनिजी महाराज भी थे जो अब भी मंत्रीपद पर हैं।

इस सब कार्रवाई से गुरुदेव को असीम प्रसन्नता हुई। आपने कहा— सादड़ी का हमारा चातुर्मास बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। गोड़वाड़ प्रान्त को ज्ञात हो गया कि स्थानकवासी जैन समाज भी एक प्राणवान् समाज है। इसके अतिरिक्त समाज की बिखरी और पारस्परिक संघर्ष में रत शक्तियाँ संगठित हो गईं। यह बड़े आनन्द का विषय है।

उसी दिन गोधूलिकी मंगलवेला में उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म० आपकी सेवा में प्रतिक्रमण करने की आज्ञा लेने पधारे। उपाचार्यजी ने फर्माया—संघ ऐक्य भावना के प्रभाव से आज हम आपके चरणों में वन्दन करने के लिए आये हैं। गृहस्थाश्रम में मैंने उदयपुर में आपको वन्दना की थी आज पुनः वन्दना का अवसर मिला। इतने दिनों से खड़ी साम्प्रदायिकता की दीवाल टूट कर गिर पड़ी।

सादड़ी श्रीसंघ ने आशातीत सफलता के साथ इस समारोह की सुव्यवस्था की।

शारीरिक दौर्बल्य देखकर रोगों को आक्रमण करने का साहस होने लगा था। तथापि मनोबल के सहारे आप उन्हें चुनौती दिये अपने कर्तव्य में संलग्न थे।

सत्तर वर्ष पार कर जाने के पश्चात् भी आपके दाड़िम जैसे दांत मौजूद थे। सुखपूर्वक चुने चने चबा लेते थे। कुछ दाढ़ों के सिवाय बत्तीसी ज्यों की त्यों बनी थी। मगर जालौर में आपकी दाढ़ में दर्द हो गया। उसे निकलवा देने से दर्द मिट गया।

जालौर से विहार करके आप मोकलसर और सिवाना पधारे। वहाँ कुछ दिन ठहर कर सादड़ी की ओर विहार किया। किन्तु जाडपुरा पहुँचने पर आप ज्वरग्रस्त हो गये। विहार में बाधा पड़ गई मगर थोड़ा स्वास्थ्य ठीक होते ही आप चल पड़े। दुर्बल स्थिति में विहार करने के कारण सहिराव पहुँचने पर स्वास्थ्य गिर गया फिर भी शरीर की परवाह किये बिना आपने विहार जारी रखा जब तक पैर पूरी तरह जवाब न देदें तब तक चलते चलना ही ऐसे आपका निश्चय था।

फालना पधारने पर चारों ओर से मुनियों के आगमन के समाचार आने लगे थे अतएव आप शीघ्रतापूर्वक सादड़ी पधारे। आगन्तुक मुनियों के स्वागत के लिए आप स्वयं पधारकर वात्सल्य का सजीव आदर्श उपस्थित करते थे।

सादड़ी से विहार करते समय लोगों ने कहा था—गुरुदेव! इधर सम्मेलन की तैयारियाँ हो रही हैं और आप बाहर पधार रहे हैं? तब आपने फर्माया था—निष्कारण एक जगह बैठे रहना मैं ठीक नहीं समझता। अभी समय पर्याप्त है। आसपास के क्षेत्रों को स्पर्श कर पुनः सादड़ी लौट आने की मेरी भावना है।

आपका यह संकल्प पूर्ण हुआ। अनेक अड़चनें आने पर भी आप सादड़ी पधार गये।

बृहत्साधुसम्मेलन सादड़ी—

अ० भारतीय बृहत्साधुसम्मेलन अक्षयतृतीया के शुभ दिन आरम्भ हुआ। क्या ही हर्ष और उल्लास का वह प्रसंग था। अढ़ाई हजार वर्ष के दुर्भेद्य व्यवधान को चीर कर मानो महावीरयुग आ गया हो। श्रमणगण संगठन की साकार कामनायें लिये एकत्र हुए। सभी लोग संगठन के सुन्दर संकल्प के स्वागत में विचरण कर रहे थे। पैंतालीस हजार के लगभग नर-नारी जनता के पुनीत यज्ञ का समर्थन करने के हेतु सादड़ी के प्रांगण में उपस्थित थे।

आदर्श सामने रखने वाले गुरुदेव के सामने मेरी एक न चली। आपने बाल-ब्रह्मचारिणी विदुषी महासती श्रीगीगीकंवरजी म० के समीप होने वाली श्रीचन्दनबालाजी तथा श्रीमगनबाई की दीक्षा में सम्मिलित होने के लिए श्री पुष्कर मुनिजी तथा श्री गणेशमुनिजी को तो उदयपुर भेज दिया और आपने ब्यावर की ओर विहार किया।

ब्यावर में उस समय श्रीहजारीमलजी म० आदि सन्त विराजमान थे। व्याख्यान धर्मध्यान आदि का खूब आनन्द रहा। जयपुर-संघ के मन्त्री श्री-गुलाबचन्दजी बामरा आदि श्रावक चौमासे की प्रार्थना करने के लिए आये और आपने साधुमर्यादा के अनुसार जयपुर पधारने की स्वीकृति दे दी।

नसीराबाद पधारने पर मन्त्री मुनि श्रीपन्नालालजी म० आदि से बहुत वर्षों बाद मिलाप हुआ। यह स्नेहसम्मिलन बहुत सुन्दर रहा। नसीराबाद से अजमेर पधारे। वहाँ मन्त्री श्रीहस्तीमलजी म० कवि श्री अमरचन्दजी म० आदि सन्त विराजित थे। सामूहिक व्याख्यान होने से जनता में बड़ा उत्साह था। इस स्नेह सम्मेलन में बहुत आनन्द रहा। एक दिन सहज भावों में श्री-सहमन्त्री हस्तीमलजी महाराज ने कहा—

भारत वर्ष की पुण्यवानी बहुत है। दीर्घ समय से सन्तों का आगमन हो रहा है। आज आपके यहाँ महास्थविर हैं। आज के युग में ६० वर्ष की जिन्दगानी देखने वाले भी कम मानव मिलते हैं। वहाँ आपने ६० वर्ष दीक्षा पर्याय पाली है। संयममय जीवन व्यतीत किया है, और आप पर कृपा कर श्री शास्त्र भी फरमाते हैं। वे शब्द ये हैं।

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो।

महीना भर यहाँ विराजने के बाद किशनगढ़ होते हुए जयपुर पधार गये। दूदू, जयपुर के बीच ४० मील तक जैनों की बस्ती न होने के कारण गुरुदेव को इस विहारयात्रा में काफी कष्ट रहा किन्तु आपने उसकी तनिक भी परवाह न की।

सं० २०१० का चौमासा जयपुर में व्यतीत हुआ। धर्मध्यान-समयानुसार होता रहा। मेरी अस्वस्थता के कारण एक मास अधिक ठहरना पड़ा। मार्गशीर्ष शुक्ला में नवदीक्षित मुनि श्रीभैरू मुनि का अचानक स्वर्गवास हो गया। वह सरलस्वभाव और आत्मार्थी सन्त थे। किसी से सेवा नहीं करवाई। वृद्धावस्था में संयम ग्रहण कर आत्मकल्याण किया और कुल की कीर्ति बढ़ाई।

यथासमय जयपुर से विहार हुआ। यद्यपि जयपुर के श्रावकों ने स्थिरवास के लिए बहुत आग्रह किया, तथापि आपने स्वीकार नहीं किया। तब ४० मील

साठवाँ चातुर्मास—

अढ़ाई हजार वर्ष से चली आती संस्कृति का सादड़ी में पुनरुद्धार हुआ। सम्मेलन के समाप्त होते ही सन्त-सतियों ने सादड़ी के चारों ओर विहार किया। स्थानीय संघ ने गुरुदेव का सादड़ी विराजने का अतीव आग्रह किया परन्तु आपने विहार कर ही दिया। आप संडाला मुँडाला फालना सांडेराव होकर बाड़मेर प्रान्त में पधारे। सं० २००९ का चौमासा सिवाना में हुआ।

दीक्षा समारोह—

मन्दार (जयपुर) निवासी ओसवालजातीय श्री भैरूंमलजी ने बासठ वर्ष की उम्र में संयम ग्रहण करने की अभिलाषा प्रकट की। उनके बड़े भाई और भतीजे ने प्रचुर समझाया, फिर भी उनका संकल्प डिगा नहीं। तब गुरु महाराज ने फर्माया— यदि कोई मुनि सेवा की जिम्मेवरी लें तो मैं आपको दीक्षा दे सकता हूँ। मैंने सेवा में महान् लाभ समझकर जिम्मेवरी ली और कार्तिक शु० ९ के दिन आपकी दीक्षा हो गई।

चातुर्मास के पश्चात गुरुदेव ने ठा० ६ से विहार कर मोकलसर, राखी होते हुए करमावास में पदार्पण किया। श्री नारायणदासजी और श्री प्रतापमलजी म० का मिलाप हुआ। मुझ और श्री भैरू मुनि को नारायणदासजी म० की सेवा में रख कर आप ठा० ४ पाली पधारे। पाली में श्री शार्दूलसिंहजी म० से आपका मिलाप हुआ। कुछ दिनों बाद हम दोनों भी सेवा में आ पहुँचे।

सोजत का मन्त्रीसम्मेलन—

सादड़ी-सम्मेलन के निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए सोजत में मंत्री मुनियों की बैठक का आयोजन किया गया। श्री समर्थमलजी म० व्याख्यान-वाचस्पति श्री मदनलालजी म० तथा कविवर्य श्री अमरचन्दजी म० विशेष रूप से आमन्त्रित किये गये थे। उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म० की अध्यक्षता में मन्त्री सम्मेलन का कार्य हुआ। सोजतसंघ ने सेवा का खूब लाभ उठाया। सचित्ताचित्त सम्बन्धी निर्णय सोजत में हुआ। प्रान्तवार मन्त्रियों का कार्य विभाजन किया गया। तदनुसार श्री पुष्कर मुनिजी म० मेवाड़ और पंचमहाल प्रान्त के मन्त्री नियत हुये।

इकसठवाँ चातुर्मास—

सोजत से गुरुदेव ने विहार किया। उनकी शारीरिक स्थिति को देख कर मैंने भरसक प्रयत्न किया कि आप मारवाड़-मेवाड़ को छोड़ कर कहीं दूर न पधारें; मगर 'चरैवेति चरैवेति' अर्थात् चलते ही चलो चलते ही चलो का

आदर्श सामने रखने वाले गुरुदेव के सामने मेरी एक न चली। आपने बाल-ब्रह्मचारिणी विदुषी महासती श्रीशीलकंवरजी म० के समीप होने वाली श्रीचन्दनबालाजी तथा श्रीमगनबाई की दीक्षा में सम्मिलित होने के लिए श्री पुष्कर मुनिजी तथा श्री गणेशमुनिजी को तो जयपुर भेज दिया और आपने ब्यावर की ओर विहार किया।

ब्यावर में उस समय श्रीहजारीमलजी म० आदि सन्त विराजमान थे। व्याख्यान धर्मध्यान आदि का खूब आनन्द रहा। जयपुर-संघ के मन्त्री श्री-गुलाबचन्दजी बोथरा आदि श्रावक चौमासे की प्रार्थना करने के लिए आये और आपने साधुमर्यादा के अनुसार जयपुर पधारने की स्वीकृति दे दी।

नसीराबाद पधारने पर मन्त्री मुनि श्रीपन्नालालजी म० आदि से बहुत वर्षों बाद मिलाप हुआ। यह स्नेहसम्मिलन बहुत सुन्दर रहा। नसीराबाद से अजमेर पधारे। वहाँ मन्त्री श्रीहस्तीमलजी म० कवि श्री अमरचन्दजी म० आदि सन्त विराजित थे। सामूहिक व्याख्यान होने से जनता में बड़ा उत्साह था। इस स्नेह सम्मेलन में बहुत आनन्द रहा। एक दिन सहज भावों में श्री-सहमन्त्री हस्तीमलजी महाराज ने कहा—

आपके क्षेत्र की पुण्यवानी बहुत है। लम्बे समय से सन्तों का आगमन हो रहा है। आज आपके यहाँ महास्थविर हैं। आज के युग में ६० वर्ष की जिन्दगानी देखने वाले भी कम मानव मिलते हैं। वहाँ आपने ६० वर्ष दीक्षा पर्याय पाली है। संयममय जीवन व्यतीत किया है और आप पर कृपा कर दो शब्द भी फर्माये हैं। वे शब्द ये हैं।

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो।

महीना भर यहाँ विराजने के बाद किशनगढ़ होते हुए जयपुर पधार गये। दूदू जयपुर के बीच ४० मील तक जैनों की बस्ती न होने के कारण गुरुदेव को इस विहारयात्रा में काफी कष्ट रहा किन्तु आपने उसकी तनिक भी परवाह न की।

सं० २०१० का चौमासा जयपुर में व्यतीत हुआ। धर्मध्यान समयानुसार होता रहा। मेरी अस्वस्थता के कारण एक मास अधिक ठहरना पड़ा। मार्गशीर्ष शुक्ला में नवदीक्षित मुनि श्रीमोहन मुनि का अचानक स्वर्गवास हो गया। वह सरलस्वभाव और आत्मार्थी सन्त थ। किसी से सेवा नहीं करवाई। वृद्धावस्था में संयम ग्रहण कर आत्मकल्याण किया और कुल की कीर्ति बढ़ाई।

यथासमय जयपुर से विहार हुआ। यद्यपि जयपुर के श्रावकों ने स्थिरवास के लिए बहुत आग्रह किया तथापि आपने स्वीकार नहीं किया। तब ३० मील

तक जयपुर वालों ने खूब सेवा की। आमेर तक सैकड़ों भाई-बाइयाँ पहुँची। आप शारीरिक स्थिति की उपेक्षा करके भी अलवर की ओर आगे बढ़े।

बासठवाँ चातुर्मास—

महास्थविर महाराज ने जयपुर से विहार किया तो देहली को अपना लक्ष्य बना लिया। वृद्धावस्था में लाठी टेकते टेकते आप ६-७-८-९ १० मील प्रतिदिन चलते और कभी-कभी इससे भी अधिक चलना पड़ता। आपकी यह यात्रा देख कर जैनेतर जनता भी चकित रह जाती थी। आपके चरणों में रह कर मैंने भलीभाँति अनुभव किया कि इतना साहस और इतना कौशल अन्यत्र दुर्लभ है। अस्थिगत वात से घुटने में दर्द था। मील-मील पर विश्राम लेते और घुटना दबा कर फिर आगे की राह लेते। इतनी कठिनाई के बाद बस्ती में पहुँचने पर मुश्किल से पानी मिलता। बाजरा मक्की या जौ के कुछ मोटे रोट मिलते जिन्हें पानी में भिगो-भिगो कर पेट को किराया देते।

प्रश्न हो सकता है—कौनसी वह प्रेरणा थी जो—इस दुर्बलकाय महात्मा को अग्रसर करने के लिए निरन्तर प्रेरित कर रही थी? किस साध्य के लिए यह अप्रतिहत गति से आगे ही आगे बढ़ता जाता था? उनके मन में कोई लौकिक कामना नहीं थी। कर्मों की निर्जरा और शासनप्रभावना के अतिरिक्त और कोई उद्देश्य नहीं हो सकता था।

इस प्रकार उग्र विहार करते हुए आप बैराठ पधारे। किंवदन्ती के अनुसार बैराठ वही विराट नगर है जहाँ पाण्डव गुप्त रूप से रहे थे। बस्ती से एक फर्लांग दूर पाण्डवों की गुफा है। बैराठ के इर्दगिर्द विशाल वन है। विराटकाय पहाड़ खड़े हैं। आगे भयंकर पहाड़ी मार्ग था जहाँ दिन में भी यात्रियों को सिंहगर्जना सुनाई पड़ती है। मगर बैराठ में ही अलवर से कुछ श्रावक आ गये थे और आठ-दस श्रद्धालु भक्त साथ ही चल रहे थे। अलवर तक का वह मार्ग बड़ी कठिनाइयों के साथ पार किया जा सका। मगर गुरुदेव तो आन्तरिक लोक में विचरण करते थे। उन्हें ऐहिक कष्टों का मानों स्पर्श तक नहीं होता था। हम लोग गुरुदेव के अनुपम पुरुषार्थ और साहस को देख कर मगन थे। आपका उत्साह हमारी अन्तरात्मा में अपूर्व बल पैदा कर रहा था।

अन्ततः अलवर पहुँचे तो आपका आत्मबल और तपस्तेज देख जनता धन्य-धन्य करने लगी। अलवर के भाइयों-बाइयों का गहरा भक्तिभाव देखकर आप एक मास से अधिक समय तक वहाँ विराजे। व्या० वा० श्री मदनलालजी म० भी शिष्य वर्ग के साथ पधार गये। उसी अवसर पर जैन सिद्धान्ताचार्य श्री

कुसुमवतीजी महाराज, कैलाशकुँवरजी आदि भी पधार गये थे। खरखर-संघ ने भी आप से स्थिर रूप में वहीं रहने का अनुरोध किया परन्तु आपकी भावना तो विहार करने की ही रहती थी। अतएव सभी मुनियों का एक साथ दिल्ली की ओर विहार हुआ।

फिरोजपुर नगीना होकर आप सोना पधारे तो गाँव के मध्य में एक कुण्ड देखा। उसमें सदैव गर्म गर्म पानी रहता है। गुरुदेव ने समझाया—भूमि के अन्तर्गत औष्ण्य से यह पानी गर्म रहता है। सिद्धान्तानुसार यह जल सचित्त है। इसमें उष्णयोनिक जीव माने जाते हैं।

देहली के प्रांगण में—

आगे चल कर गुड़गांव और महरौली पधारे। फिर चिराग दिल्ली होकर दिल्ली पधार गये। होली चातुर्मास दिल्ली में हुआ।

देहली स्थानकवासी जैनों का एक बड़ा केन्द्र है। चांदनीचौक के मध्य बाजार में एक विशाल भवन है जो महावीर भवन और बारादरी के नाम से प्रसिद्ध है। अढ़ाई हजार मासिक किराये की आय होने पर भी मुनियों के निवास और श्रावकों के धर्मध्यान के लिए पर्याप्त और स्वतन्त्र स्थान है। सब्जी मण्डी और किंग्टी गंज में भी स्थानकों की अच्छी व्यवस्था है।

गुरुदेव दरियागंज से सब्जी मण्डी पधारे, प्रवचन होने लगे। उन्हीं दिनों कविरत्न स्नेहमूर्ति श्री अमरचन्द्रजी म० भी पधार गये। तेरापंथी मुनि श्री नगराजजी भी कविश्री से मिलन पधारे। कुछ दिन वहाँ ठहर कर चांदनी चौक में पदार्पण हुआ। संघ की अभ्यर्थना स्वीकार कर चांदनी चौक में चौमासे की स्वीकृति प्रदान की। श्री पुष्कर मुनिजी म का पोस्टेट-ग्रन्थि का सफलतापूर्वक ऑपरेशन हुआ। चौमासा सानन्द व्यतीत हुआ।

तत्पश्चात् गुरुदेव नयी दिल्ली पधारे। अब तो वहाँ सुन्दर जैन भवन कान्फ्रेन्स की ओर स खरीद लिया गया है और सन्तों के लिए भी वह सुविधा जनक है, परन्तु उस समय कोई धर्मस्थानक नहीं था अतः आप सेठ विलायती रामजी की कोठी में विराजे। जनता भक्तिपूर्वक प्रवचन सुनने के लिए आने लगी।

नेहरू मिलन—

ता० ४ दिसम्बर को शिष्य मण्डली सहित गुरुदेव श्री मदनलालजी म० आदि सम्प्रदाय तथा मूर्तिपूजक आचार्य श्री विजयेन्द्र सूरिजी आदि श्री गुलाबचन्दजी जैन के साथ पं० नेहरूजी की कोठी पर पहुँचे। नेहरूजी ने सामने आकर

स्वागत किया। यथास्थान बैठने पर गुलाबचन्दजी ने मुनिराजों का परिचय दिया। फिर उन्होंने २०० वर्ष पूर्व लिखित रुपहरी कला से परिपूर्ण उत्तराध्ययन सूत्र आदि दिखलाये।

तत्पश्चात् गुरुदेव ने फर्माया—'जोधपुर के महाराज मानसिंहजी ने एक बार कहा—एक बूँद में असंख्य जीव होने की जैन मान्यता गप्प है। उन्हें उत्तर देने के लिए जैन मुनि ने यह चित्र बनाया था। इसमें चने की दाल जितने स्थान में १०८ हाथियों के चित्र हैं।' यह कह कर आपने नेहरूजी को वह चित्र दिखलाया।

नेहरूजी यह कलाकृतियाँ देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् भगवान महावीर के जीवन और अहिंसा सिद्धान्त के महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए महावीर जयन्ती की सार्वजनिक छुट्टी पर बल दिया गया। नेहरूजी ने उचित आश्वासन दिया। ४५ मिनिट के वार्तालाप के पश्चात् मुनिमण्डली विदा हुई। पण्डितजी श्रीमती इन्दिरा गाँधी और उनके पुत्र संजय गाँधी ने नमस्कार मुद्रा में विदाई दी।

श्रीमान रतनलालजी सा० पारिख, बनारसीदास प्रेमचन्दजी ओसवाल कपूरचन्दजी सा० सुराना आनन्दराजजी सा० सुराना कपूरचन्दजी बोथरा लाला कुन्दनलालजी महताबचन्दजी गुलाबचन्दजी आदि देहली के महानुभावों ने सेवाधर्म का खूब लाभ उठाया।

कुछ दिन देहली के विभिन्न उपनगरों में विराज कर आपने विहार कर दिया। बहादुरपुर पहुँचे तो जैनों का एक भी घर न होने से बड़ी दिक्कत रही। भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ रामकृष्णजी डालमिया की पत्नी श्रीदिनेशनन्दिनीजी ने आकर गुरुदेव के दर्शन किये और मिष्टान्न की प्रभावना की। फिर पलवल बनचारी कोसी होकर वृन्दावन पधार गये। वृन्दावन में नाना वेषधारी साधु सन्तों का जमघट रहता है। उनके बड़-बड़े अखाड़े हैं। वहाँ का जलवायु और प्राकृतिक सौन्दर्य आकर्षक है। वहाँ से चल कर पाथर्डी बोर्ड की सिद्धान्त प्रभाकर परीक्षा देने के हेतु मैं और गणेश मुनिजी मथुरा ठहर गये और गुरुदेव आगरा पधार गये।

आगरा में मुनि मिलन—

उस समय आगरा में स्थविर पं० र० मन्त्री मुनि श्रीपृथ्वीचन्दजी म० श्रीश्यामलालजी म० श्रीज्ञानमुनिजी श्री श्रीचन्दजी म० तथा श्रीकीर्तिमुनिजी म० विराजमान थे। सिकन्दरा तक लोहामंडी आगरा के श्रावकगण सम्मुख आये। मुनिराज भी काफी दूर तक लिवाने पधारे। समारोह के साथ गुरुदेव ने लोहामंडी के जैनस्थानक में पदार्पण किया। स्वागत गानों का ठाठ लग गया। वहाँ

से मानपाड़ा पधारे तो वहाँ भी धर्मध्यान की धूम रही। साहित्यरत्न मुनि श्रीसुरेशचन्द्रजी म० शास्त्री एवं सुबोध मुनिजी भी मानपाड़ा पधार गये। महीने भर का यह सन्तसमागम बड़ा ही आनन्ददायक रहा। जिस प्रकार आगरे का ताजमहल शरदपूर्णिमा की निरभ्र रजनी में स्फटिक की तरह चमचमाता है, उसी प्रकार इन मुनिराजों के विमल हृदय भी सात्विक स्नेह से चमकते हैं।

आगरासंघ जीवदया के लिए सतर्क रहता है। यमुना के तट पर वहाँ एक स्थान है जहाँ पक्षियों की रक्षा की जाती है। गुरुदेव उस पक्षीघर को देखने पधारे और जीवदया-भावना की सराहना की।

जब आपने आगरा से विहार किया तो श्रीसुरेश मुनिजी आदि चार सन्त चार मील तक पहुँचाने पधारे। आगरा के श्रावकों की धर्मप्रीति और गुरुभक्ति देख गुरु महाराज सन्तुष्ट हुए।

राजस्थान की ओर—

आगरा से भरतपुर होकर आगे विहार किया तो चलते-चलते पैर लड़खड़ाने लगे। लोहड़ीगंज पहुँचने पर चलना कठिन हो गया। जयपुर-संघ को दोसा पधारने का समाचार मिला तो श्रीसंघ के प्रमुख जन उपस्थित हुए। किसी प्रकार धीमे-धीमे चल कर आप जयपुर पधारे।

जयपुरसंघ की जनरलसमिति ने प्रस्ताव स्वीकृत करके महास्थविर महाराज से स्थिरवास की पुनः प्रार्थना की। घुटने में दर्द था और चलने की शक्ति नहीं थी। फिर भी आपने कार्तिकी पूर्णिमा तक विराजने की स्वीकृति दी। आगे के लिए वचनबद्ध न हुए। इस प्रकार आपका सं० २०१२ का चौमासा जयपुर में हुआ।

जयपुर-चातुर्मास अत्यन्त आनन्ददायक रहा। सौभाग्य से उस वर्ष कविवर श्रीअमरचन्द्रजी म० ठाणा ३ और श्री हजारीमलजी म० श्रीफतहचन्दजी म० श्रीमधुकरजी तथा श्रीकन्हैयालालजी म० 'कमल' आदि ठा० ६ का चौमासा भी जयपुर में ही हुआ। समस्त मुनिमण्डली एक ही जगह—लालभवन में ठहरी। तत्वचर्चा आदि का बड़ा व्यासंग रहा। सभी मुनियों का पारस्परिक स्नेह एक स्पृहणीय आदर्श बन कर रह गया। कविजी के सर्वांग-सम्पन्न महान् व्यक्तित्व को निकट से परखने का अच्छा अवसर मिला। हृदय ने कहा—यह एक महान् विभूति है। महास्थविरजी म० के प्रति कविरत्न उपाध्याय श्रीअमरचन्द्रजी म० की हार्दिक श्रद्धा एवं भक्ति थी। वे अपने पीयूषवर्षी प्रवचनों में प्रायः महास्थविरजी म० को याद कर लिया करते थे।

स्वागत किया। यथास्थान बैठने पर गुलाबचन्दजी ने मुनिराजों का परिचय दिया। फिर उन्होंने ४०० वर्ष पूर्व लिखित रुपहरी कला से परिपूर्ण उत्तराध्ययन सूत्र आदि दिखलाये।

तत्पश्चात् गुरुदेव ने फर्माया—'जोधपुर के महाराज मानसिंहजी ने एक बार कहा—एक बूँद में असंख्य जीव होने की जैन मान्यता गप्प है। उन्हें उत्तर देने के लिए जैन मुनि ने यह चित्र बनाया था। इसमें चने की दाल जितने स्थान में १०८ हाथियों के चित्र हैं। यह कह कर आपने नेहरूजी को वह चित्र दिखलाया।

नेहरूजी यह कलाकृतियाँ देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् भगवान महावीर के जीवन और अहिंसा सिद्धान्त के महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए महावीर जयन्ती की सार्वजनिक छुट्टी पर बल दिया गया। नेहरूजी ने उचित आश्वासन दिया। ४५ मिनिट के वार्तालाप के पश्चात् मुनिमण्डली विदा हुई। पण्डितजी, श्रीमती इन्दिरा गाँधी और उनके पुत्र संजय गाँधी ने नमस्कार मुद्रा में विदाई दी।

श्रीमान रतनलालजी सा० पारिख बनारसीदास प्रेमचन्दजी ओसवाल कपूरचन्दजी सा० सुराना आनन्दराजजी सा० सुराना कपूरचन्दजी बोथरा, लाला फूलचन्दजी मेहताबचन्दजी गुलाबचन्दजी आदि देहली के महानुभावों ने सेवाधर्म का खूब लाभ उठाया।

कुछ दिन देहली के विभिन्न उपनगरों में विराज कर आपने विहार कर दिया। बहादुरपुर पहुँचे तो जैनों का एक भी घर न होने से बड़ी दिक्कत रही। भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ रामकृष्णजी डालमिया की पत्नी श्रीदिनेशनन्दिनी ने आकर गुरुदेव के दर्शन किये और मिष्ठान्न की प्रभावना की। फिर पलवल बनचारी मोखला, कोसी होकर वृन्दावन पधार गए। वृन्दावन में नाना वेषधारी साधु सन्तों का जमघट रहता है। उनके बड़े-बड़े अखाड़े हैं। यहाँ का जलवायु और प्राकृतिक सौन्दर्य आकर्षक है। वहाँ से चल कर पाथर्डी बोर्ड की सिद्धान्त प्रभाकर परीक्षा देने के हेतु मैं और गणेश मुनिजी मथुरा ठहर गये और गुरुदेव आगरा पधार गये।

आगरा में मुनि मिलन—

उस समय आगरा में स्थविर पं० र० मन्त्री मुनि श्रीपृथ्वीचन्दजी म०, श्रीश्यामलालजी म० श्रीनानकमुनिजी श्री श्रीचन्दजी म० तथा श्रीकीर्तिमुनिजी म० विराजमान थे। मिष्ठान्न तक लोहामंडी आगरा के श्रावकगण सम्मुख आये। मुनिराज भी काफी दूर तक लिवाने पधारे। समारोह के साथ गुरुदेव ने लोहामंडी के जैनस्थानक में पदार्पण किया। व्याख्यानों का ठाठ लग गया। यहाँ

से मानपाड़ा पधारे तो वहाँ भी धर्मध्यान की धूम रही। साहित्यरत्न मुनि श्रीसुरेशचन्द्रजी म० शास्त्री एवं सुबोध मुनिजी भी मानपाड़ा पधार गये। महीने भर का यह शान्तसमागम बड़ा ही आनन्ददायक रहा। जिस प्रकार आगरे का ताजमहल शरदपूर्णिमा की निरभ्र रजनी में स्फटिक की तरह चमचमाता है, उसी प्रकार इन मुनिराजों के विमल हृदय भी सात्विक स्नेह से चमकते हैं।

आगरासंघ जीवदया के लिए सतर्क रहता है। यमुना के तट पर वहाँ एक स्थान है जहाँ पक्षियों की रक्षा की जाती है। गुरुदेव उस पक्षीघर को देखने पधारे और जीवदया-भावना की सराहना की।

जब आपने आगरा से विहार किया तो श्रीसुरेश मुनिजी आदि चार सन्त चार मील तक पहुँचाने पधारे। आगरा के श्रावकों की धर्मप्रीति और गुरुभक्ति देख गुरु महाराज सन्तुष्ट हुए।

राजस्थान की ओर—

आगरा से भरतपुर होकर आगे विहार किया तो चलते-चलते पैर लड़खड़ाने लगे। लालसोटगंज पहुँचने पर चलना कठिन हो गया। जयपुर-संघ को दौसा पधारने का समाचार मिला तो श्रीसंघ के प्रमुख जन उपस्थित हुए। किसी प्रकार धीमे-धीमे चल कर आप जयपुर पधारे।

जयपुरसंघ की जनरलसमिति ने प्रस्ताव स्वीकृत करके महास्थविर महाराज से स्थिरवास की पुनः भावना की। घुटने में दर्द था और चलने की शक्ति नहीं थी। फिर भी आपने कार्त्तिकी पूर्णिमा तक विराजने की स्वीकृति दी। आगे के लिए वचनबद्ध न हुए। इस प्रकार आपका सं० २०१२ का चौमासा जयपुर में हुआ।

जयपुर-चातुर्मास अत्यन्त आनन्ददायक रहा। सौभाग्य से उस वर्ष कविवर श्रीअमरचन्द्रजी म० ठाणा ३ और श्री हस्तीमलजी म० श्रीफतहचन्दजी म० श्रीमधुकरजी तथा श्रीकन्हैयालालजी म० 'कमल' आदि ठा० ६ का चौमासा भी जयपुर में ही हुआ। समस्त मुनिमण्डली एक ही जगह—लालभवन में ठहरी। तत्त्वचर्चा आदि का बड़ा आनन्द रहा। सभी मुनियों का पारस्परिक स्नेह एक स्पृहणीय आदर्श बन कर रह गया। कविजी के सर्वांग-समृद्ध महान् व्यक्तित्व को निकट से परखने का अच्छा अवसर मिला। हृदय ने कहा—यह एक महान् विभूति है। महास्थविरजी म० के प्रति कविरत्न उपाध्याय श्रीअमरचन्द्रजी म० की हार्दिक श्रद्धा एवं भक्ति थी। वे अपने पीयूषवर्षी प्रवचनों में प्रायः महास्थविरजी म० को याद कर लिया करते थे।

जयपुर वर्षावास के मधुर क्षणों में प्रवचन करते हुए ता० २०-६-५५ को आपने पर्युषणपर्व के प्रसंग पर कहा— 'आज पर्युषणपर्व है। उपस्थित सज्जन सामूहिक प्रतिक्रमण करेंगे। उसके पश्चात् सभी परस्पर मिलकर क्षमत् क्षमापना करेंगे। मैं साधारण बच्चों का भी सम्मान करता हूँ और तरुण तथा वृद्धों का भी हृदय से सम्मान करता हूँ मेरे अन्दर और कोई चीज रही हो पर मैंने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से किसी को नहीं नापा है। तो मैं विचार कर रहा था कि शुद्ध भावना दया और स्नेह की धारा हमारे महास्थविर श्रीताराचन्दजी म० की छत्र छाया में सानन्द बहती रहे।

ता० ४-७-५५ को प्रवचन करते हुए आप श्री ने कहा—'चातुर्मास आगया है, वर्षावास के लिए संयोग से बड़े बड़े मुनिराज आपके यहाँ पधारे हैं। महास्थविरजी म० कितने शान्तमूर्ति हैं कितने मधुर हैं कितना प्रेम और स्नेह का साक्षात् रूप आपका जीवन है।'

इस प्रकार जयपुर वर्षावास के प्रवचनों में प्राय: महास्थविरजी म० का नाम अत्यन्त आदर स्नेहपूर्वक मधुर ध्वनि के गुञ्जार में गुञ्जरित कर ही देते थे।

जयपुर में भीनासर-सम्मेलन में सम्मिलित होने की प्रार्थना करने के लिए प्रतिनिधिमण्डल आया तो गुरुदेव ने फर्माया—'शासन के उत्कर्ष के प्रत्येक प्रयास में मेरा समर्थन है। स्वास्थ्य अनुकूल रहा और दूसरी कोई बाधा उपस्थित न हुई तो पुष्कर मुनिजी को भेजने का भाव है।

चौंसठवाँ चातुर्मास—

उस समय भीनासर-सम्मेलन की जोरदार तैयारियाँ हो रही थीं। चौमासा समाप्त होते ही गुरुदेव ने विहार कर दिया। दूसरी रात्रि में श्रीदेवेन्द्र मुनि के पेट में दर्द उठा। डाक्टरों ने देख कर अपेण्डिक्स की बीमारी बतलाई। तब विवश होकर पुन: लालभवन में लौटना पड़ा।

कविजी म० का मोतियाबिन्दु का ऑपरेशन होना था। वह हुआ किन्तु पूर्ण विश्रान्ति लेने से पूर्व ही आपको भीनासर की ओर विहार करना पड़ा। बाद में श्रीदेवेन्द्र मुनिजी का अपेण्डिक्स का ऑपरेशन हुआ। इस गड़बड़ में चार मास व्यतीत हो गये। सम्मेलन का समय जयपुर में ही व्यतीत हो गया। श्रीगणेश मुनि को पुराना जुकाम था। आपका भी उपचार हुआ। इस प्रकार विघ्नों के कारण विहार न हो सका। बालब्रह्मचारिणी विदुषी श्रीशीलकुँवरजी म० ठाणा ४ भी पधार गये थे।

अचानक हमला—

आषाढ़ वदि ११ को मध्याह्न का समय था। गुरुदेव माला फेर कर निवृत्त हुए। विदुषी महासती श्रीसोहनकुंवरजी म० आदि सतियाँ शास्त्रज्ञा भी सिरे बाड़ सकलेषा के साथ पधारी थीं और शास्त्रश्रवण प्रारम्भ हुई ही थी कि गुरुदेव को अकस्मात् पेशाब की आशंका हुई। उठ कर भीतर गये तो प्रयत्न करने पर भी पेशाब न उतरा। दो-तीन घंटे बाद डाक्टर ने आकर जो नली डाली तो रक्त ही रक्त आया। दूसरे डाक्टर की सहायता ली गई तो कुछ पेशाब आया मगर कुछ घंटों बाद पुनः वही स्थिति हो गई। दोबारा वही डाक्टर आये तो रक्त के अतिरिक्त पेशाब तनिक भी न आया। इस दुस्सह वेदना के प्रसंग पर भी महावीर के महान् सेनानी गुरुदेव जरा भी क्षुब्ध या विचलित न हुए।

जयपुर-संघ में इस घटना से खलबली-सी मच गई। मास्टर सौकी और डाक्टर जी० सी० शर्मा आये। उन्होंने प्रयत्न किया किन्तु पेशाब न आया। सब आपने कहा—'स्वामीजी के लिए खतरे का प्रसंग है। अभी अभी ऑपरेशन करवा लिया जाय तो संभव है स्थिति नियन्त्रण में आ जाय।' संघ ने परामर्श कर ऑपरेशन का निर्णय कर लिया। लालभवन में ही ऑपरेशन हुआ और स्वास्थ्य सुधार की ओर झुका।

कुछ दिन बाद डाक्टर शर्मा ने दूसरी बार प्रोस्टेट का ऑपरेशन किया। उस समय आपकी स्थिति अति गम्भीर हो गई। तीन दिन पहले से पानी और औषध के सिवाय खाना-पीना बन्द कर दिया था। ऑपरेशन का दिन आया तो रक्तचाप अधिक बढ़ जाने के कारण ऑपरेशन न हो सका। छह दिन पश्चात् उसी तैयारी के साथ पुनः ऑपरेशन हुआ। रक्तसंचार सौ से भी कम हो गया। यह देख डाक्टर हतोत्साह हो गये और हमारी आशा का भी धागा टूट गया। मगर आयु का धागा न टूटा था।

कई डाक्टर परिचर्या में लगे। कितने ही घन्टों के बाद गुरु महाराज सावधान हुए। होश में आने पर हमारा जी में जी आया। धीमे-धीमे आपको आराम होने लगा।

एक दिन डाक्टर ने पाड़ हलने के लिए कहा तो बाड़ से बाहर आ कर आप घूमने लगे। धीरे-धीरे शक्ति आ गई और लालभवन में पधार गये। आपको स्वस्थ देख मुनिमंडल और श्रावकसंघ को अतीव प्रसन्नता हुई। श्रीपन्नालालजी स्वरूपचन्दजी चोरड़िया गुलाबचन्दजी घोसड़ा भंवरलालजी बाठड़ा मोहनलाल भाइ प्रेमराजी मेहता लक्ष्मणजी सुराना रतनलालजी सलवाना आदि महानुभावों ने बहुत सेवा का लाभ उठाया।

—

प्रधानमंत्रीजी का प्रेम—

श्रमणसंघ के प्रधानमंत्री मुनि श्रीमदनलालजी म० का उस वर्ष जयपुर में चातुर्मास था। आप जब से पधारे, महास्थविरजी की खूब सेवा करते रहे। अस्वस्थता में समय-समय पर पधारते रहते। लालभवन में लौटने पर बहुत सेवा करते। महास्थविरजी भी आप सभी सन्तों की सद्भावना की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे।

अन्तिम जीवनज्योति—

उदेति सविता ताम्र-स्ताम्र एवास्तमेति च ।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च, महतामेकरूपता ॥

रवि का रंग उदय और अस्त के समय एक-सा दृष्टिगोचर होता है। इसी रूपक को महापुरुषों ने अपने जीवन का अंग बना लिया है। वे जीवन के उदय अस्त काल में अपनी समता का परित्याग नहीं करते।

मानवदेह विश्व की सब से बड़ी सम्पत्ति है। कुबेर के भण्डार से भी बहुमूल्य। यही मुक्ति का द्वार है। इसे प्राप्त कर महापुण्यवान् पुरुष अपने भविष्य को मंगलमय बनाने का पुनीत प्रयास करते हैं। हमारे चरित्रनायकजी का समग्र जीवन इसी सत्य को पवित्र झांकी उपस्थित करता है।

उल्लिखित बीमारी के पश्चात् गुरुदेव की प्रकृति में कुछ परिवर्तन-सा दिखाई देने लगा। अब रात-दिन में १२ घन्टे माला फेरने में ही व्यतीत करते। आवश्यक वार्तालाप और क्रियाकलाप के अतिरिक्त सारा समय वे मौनसाधना में ही व्यतीत कर रहे थे। मगर अपना प्रतिलेखन आदि कार्य स्वयं ही करते थे। मेरी प्रार्थना पर आपने फर्माया था—"मैं जब तक अपना काम करता रहूँगा तब तक प्रमाद और आलस्य से बचा रहूँगा। जब नहीं बनेगा तो आप ही छूट जायगा और तुम्हीं को करना पड़ेगा।" आहार करने की पूर्वव्यवस्था जीवन के अन्तिम दिवस तक आपने स्वयं ही की। शारीरिक दुर्बलता होने पर भी न जाने उनमें कहाँ से मानसिक सबलता फूट पड़ी थी। इतना उत्साह कैसे उत्पन्न हो गया था।

कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी का दिन आया। माला फेर कर और प्रतिलेखनादि क्रियाओं से निवृत्त होकर जंगल पधारे। मैंने लक्ष्य किया—आज गुरुदेव की चाल अपेक्षाकृत धीमी है। फिर भी मन में कोई आशंका उत्पन्न न हुई। लौटते समय मैंने सहजभाव से कहा—'गुरुदेव अब आपका पकना शरीर पर

बलात्कार करना जैसा है।' तब आपने फर्माया—'शरीर को खूब रगड़ा है। आखिर है भी यह किस काम का ? इसका जितना सदुपयोग हो सके, कर लेना ही उचित है। आखिर तो छूटने को है। जयपुर से विहार करने पर ठीकठाक हो जायगा।'

मध्याह्न के पश्चात् उसी दिन गोगुन्दा से वयोवृद्ध महासती श्रीफूलकुँवरजी म० के स्वर्गवास का तार मिला। तार का समाचार सुन कर आप उदास और गम्भीर हो गये। मैंने निवेदन किया—गुरुदेव महासतीजी की उम्र ८८ वर्ष की हो चुकी थी। १४ सतियों का परिवार वह छोड़ गई हैं। संथारे के साथ स्वर्गवास किया है। आप चिन्ता करके अपने स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव न पड़ने दें।'

तत्पश्चात् आप प्रधानमन्त्रीजी म० के पास पहुँचे और बोले—कल मैं भी व्याख्यान में आऊँगा और स्वर्गीय फूलकुँवरजी महासतीजी को श्रद्धांजलि दूँगा। वह हमारे सतीसमाज में सब से बड़ी थीं।

आहार के समय स्वयं मांडला बिछाया पानी रक्खा और अपना आसन बिछाया। पाँच सन्तों ने नित्यवत् आहार किया।

हृदयविदारक घड़ियाँ—

आह ! कितनी बड़ी विडम्बना ! जिस उमरते उत्साह से लेखनी ने एक महान् दिव्य पुरुष के जीवन का क्रमिक उत्कर्ष चित्रित किया उसी को अब उसके जीवन की अन्तिम स्थिति अंकित करनी होगी ? लेखनी यहाँ विराम चाहती है। हाथ शिथिल पड़ रहे हैं। कलेजा कराहता है। हृदय धड़कता है। परमाराध्य की वह मंगलमयी मूर्ति दृष्टि के सम्मुख आ खड़ी होती है। किन्तु यह कठोर कर्त्तव्य भी निभाना ही पड़ेगा।

गुरुदेव ने पानी लेने को हाथ बढ़ाया कि वह शून्य हो गया। छह वर्ष के पश्चात् पक्षाघात का पुनः प्रहार हुआ और इस बार आधा अंग शून्य हो गया।

गुरुदेव ने उसी समय कहा—मेरी आयु का अन्त आ गया है। संथारा कराओ। प्रधानमन्त्रीजी को बुलाओ।

थोड़ी देर मौन धारण करने के पश्चात् बोले—शिष्यो ! सब हिलमिल कर प्रेम पूर्वक रहना। मेरे नाम को यशस्वी बनाना।

थोड़ी देर रुक कर पुनः बोले—त्याग-वैराग्य से जीवन को खूब चमकाना। सुख शान्तिपूर्वक रहना। धर्म को दिपाना।

उसी समय महासती श्री सोहनकुँवरजी प्रभावतीजी आदि आ पहुँचीं। क्षमा का आदान-प्रदान किया।

प्रधानमंत्रीजी का प्रेम—

श्रमणसंघ के प्रधानमंत्री मुनि श्रीमदनलालजी म० का उस वर्ष जयपुर में चातुर्मास था। आप जब से पधारे, महास्थविरजी की खूब सेवा करते रहे। अस्पताल में समय-समय पर पधारते रहते। लालभवन में लौटने पर बहुत सेवा करते। महास्थविरजी भी आप सभी सन्तों की सद्भावना की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे।

अन्तिम जीवनज्योति—

> उदेति सविता ताम्र-स्ताम्र एवास्तमेति च।
> सम्पत्तौ च विपत्तौ च, महतामेकरूपता॥

रवि का रंग उदय और अस्त के समय एक-सा दृष्टिगोचर ह
रूपक को महापुरुषों ने अपने जीवन का अंग बना लिया है। वे
अस्त काल में अपनी समता का परित्याग नहीं करते।

मानवदेह विश्व की सब से बड़ी सम्पत्ति है। इसे
बहुमूल्य। यही मुक्ति का द्वार है। इसे प्राप्त कर महापुरुष
को मंगलमय बनाने का पुनीत प्रयास करते हैं। हमारे
जीवन इसी सत्य की पवित्र झांकी उपस्थित करता है

अस्थिलित बीमारी के पश्चात् गुरुदेव की
दिखाई देने लगा। वह रात-दिन में १२ घन्टे
आवश्यक वार्तालाप और क्रियाकलाप के
में ही व्यतीत कर रहे थे। मगर अपना
मेरी प्रार्थना पर आपने फर्माया था—
तक प्रमाद और आलस्य से बचा
जायगा और तुम्ही को करना पड़ेग
अन्तिम दिवस तक आपने स्वयं
उनमें कहीं से मानसिक
प्रसन्न हो गया था।

कार्तिक शुक्ला
क्रियाओं से निवृत्त हो
पास अपेक्षाकृत धीमी है। कि
समय मैंने सहजभाव से

उपसंहार

★

विराट् साधना की झाँकी

अमरगच्छ के अमरकीर्ति पट्ट पर एक योगी आसीन हुआ और ६४ वर्ष जितने दीर्घ काल पर्यन्त स्व-पर कल्याण की साधना में निरत रह कर यकायक चल पड़ा। परमपूज्य गुरुदेव का जीवन अनमोल हीरे की तरह चमकदार रहा। हजारों नहीं लाखों भव्यात्माओं के जीवन में उस हीरे का प्रकाश पड़ा। आलोक का यह पुञ्ज स्वर्ग को आलोकित करने चल दिया।

चारित्रबल—

चरितनायक ने दसवें वर्ष में प्रवेश करते ही परिपूर्ण चारित्र अंगीकार किया। अपना तारुण्यकाल योगनिष्ठ श्री[illegible]मलजी म० की सेवा में व्यतीत किया। किसी भी प्रकार का अवांछनीय व्यसन उनके पास भी न फटक सका। आपने दीर्घ जीवनकाल में अफीम सूंघनी सुपारी चाय आदि किसी भी वस्तु को व्यसन रूप में ग्रहण नहीं किया। सन्त जनोचित उदात्त भावों में सदा रमण किया।

दयालुता—

गुरुदेव दया के सागर, करुणा के भंडार थे। दीन-दुखी को देख उनका हृदय दया से द्रवित हो जाता था। दयालु इतने कि आसपास में कोई बालक रोता और देर हो जाने पर भी चुप न होता तो स्वयं उसे देखने आ पहुँचते। सम्पर्क में आने वाले उस दयासागर का स्मरण करके आज भी अश्रुपात करते हैं।

थोड़ी देर की विश्रान्ति के पश्चात् संथारे की मांग करने पर प्रधानमन्त्रीजी महाराज ने संथारा करा दिया। प्रतिक्रमण सुनने की अभिलाषा प्रकट की तो आपने प्रतिक्रमण सुनाया। गुरुदेव बोले—'प्रतिक्रमण चालो सुनावो।'

बस यही गुरुदेव के अन्तिम उद्गार थे। इसके बाद जिह्वा लड़खड़ाने लगी।

उस समय हमारे हृदय पर क्या बीत रही थी सो कौन कह या लिख सकता है? हम सब विवश, लाचार थे। गुरुदेव को भयानक वेदना थी। द्रुत गति से कम्पन हो रहा था। अर्धांग शून्य था। शरीर प्रस्वेद से तर था और हम आकुल-व्याकुल होते हुए भी कुछ कर नहीं सकते थे। कर्मविपाक के आगे मानव का सामर्थ्य कितना नगण्य है! धन-जन का अहंकार कितना बड़ा पागलपन है, यह सत्य उस समय मूर्तिमान् हो रहा था।

रात्रि का समय था अतः कुछ भी उपचार नहीं हो सकता था। मंगलपाठ सुनाने के सिवाय हम कुछ भी सेवा नहीं कर सके।

श्वास का वेग बढ़ता जा रहा था। प्रत्येक तीन घंटे के बाद श्वास की ध्वनि में परिवर्तन होरहा था। धीरे-धीरे श्वास की शक्ति भी क्षीण हो गई। तिहत्तर वर्ष और एक मास पूरा हो गया। मिनिट चले गये और अब सैकिंड ही शेष रह गये थे।

कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी का प्रभात आ गया। घड़ी ने पांच टंकोरे लगाये। बस सिद्धियोग और ब्राह्म मुहूर्त में गुरुदेव के दोनों नेत्र अकस्मात् प्रस्फुटित हुए। उनमें से बिजली की सी चमक निकली और फिर सब शान्त। स्वर्गीय ज्योति स्वर्ग की ओर चली गई। एक प्रखर तेजस्वी जीवन का अन्त हुआ।

चारों ओर हाहाकार मच गया। विद्युद्वेग से नगर में यह दुःसंवाद फैल गया। नर नारियों का भारी जमघट हो गया। सब सभ्र सब शोकाकुल सब विषण्ण और उदास! कितने ही भक्त फूट-फूट कर रोने लगे।

हम लोग गुरुदेव के निर्जीव देह को छोड़ दूर हट गये। गुरुवियोग का मार्मिक प्रहार दुस्सह प्रतीत होने लगा। जिस महात्मा ने मुक्तिमार्ग पर लगाया ज्ञानलोचन का दान दिया सदा वात्सल्य का अमृत पिलाया जिसकी वरद छत्र-छाया में संयमजीवन का निर्वाह हुआ उनके वियोग से हम अनाथ हो गये।

लाल भवन के चौक में पट्ट पर आसीन उस लाश में भी एक अनूठा आकर्षण था। भव्य आकृति गौर वर्ण उन्मीलित नेत्र! जैसे कोई विराट् पुरुष युवावस्था में संसार से विमुख होकर आ रहा हो। यह दृश्य देख एक बार मैं सिहर उठा। मेरा धैर्य शोक के प्रबलतम आघात से चूर-चूर हो गया।

कैसा मनहूस दिन था वह! गुरुदेव की वह सौम्य आकृति आँखों से ओझल ही न होती थी। लाल भवन का कण-कण जैसे खाने को दौड़ रहा था। समुदाय के बीच भी भार सूनापन अनुभूत होता था।

उपसंहार

★

विराट् साधना की झांकी

अमरगच्छ के अमरकीर्ति पट्ट पर एक योगी आसीन हुआ और ६४ वर्ष जितने दीर्घ काल पर्यन्त स्व-पर कल्याण की साधना में निरत रह कर अचानक चल पड़ा। परमपूज्य गुरुदेव का जीवन अनमोल हीरे की तरह चमकदार रहा। हजारों नहीं लाखों भव्यात्माओं के जीवन में उस हीरे का प्रकाश पड़ा। आलोक का वह पुञ्ज स्वर्ग को आलोकित करने चल दिया।

चारित्रबल—

चरितनायक ने दसवें वर्ष में प्रवेश करते ही परिपूर्ण चारित्र अंगीकार किया। अपना तारुण्यकाल योगनिष्ठ श्रीजेठमलजी म० की सेवा में व्यतीत किया। किसी भी प्रकार का अवांछनीय व्यसन उनके पास भी न फटक सका। अपने दीर्घ जीवनकाल में अफीम सुँघनी सुपारी चाय आदि किसी भी वस्तु का व्यसन रूप में ग्रहण नहीं किया। सन्त जनोचित उदात्त भावों में सदा रमण किया।

दयालुता—

गुरुदेव दया के सागर, करुणा के भंडार थे। दीन-दुखी को देख उनका हृदय दया से द्रवित हो जाता था। दयालु इतने कि आसपास में कोई बालक रोता और देर हो जाने पर भी चुप न होता तो स्वयं उसे देखने जा पहुँचते। सम्पर्क में आने वाले उस दयासागर का स्मरण करके आज भी अश्रुपात करते हैं।

थोड़ी देर की विश्रान्ति के पश्चात् संथारे की मांग करने पर प्रधानमन्त्रीजी महाराज ने संथारा करा दिया। प्रतिक्रमण सुनने की अभिलाषा प्रकट की थी आपने प्रतिक्रमण सुनाया। गुरुदेव बोले—'प्रतिक्रमण बोलो सुनायो।'

बस यही गुरुदेव के अन्तिम उद्‌गार थे। इसके बाद जिह्वा लड़खड़ाने लगी।

उस समय हमारे हृदय पर क्या बीत रही थी सो कौन कह या लिख सकता है? हम सब विवश, लाचार थे। गुरुदेव को भयानक वेदना थी। तुम गति से कम्पन हो रहा था। अर्धांग शून्य था। शरीर प्रस्वेद से तर था और हम व्याकुल-व्याकुल होते हुए भी कुछ कर नहीं सकते थे। कर्मविपाक के आगे मानव का सामर्थ्य कितना नगण्य है! धन-जन का अहंकार कितना बड़ा पागलपन है, यह सत्य उस समय मूर्तिमान् हो रहा था।

रात्रि का समय था अतः कुछ भी उपचार नहीं हो सकता था। मंगलपाठ सुनाने के सिवाय हम कुछ भी सेवा नहीं कर सके।

श्वास का वेग बढ़ता आ रहा था। प्रत्येक तीन घंटे के बाद श्वास की ध्वनि में परिवर्तन होरहा था। धीरे-धीरे श्वास की शक्ति भी क्षीण हो गई। तिहत्तर वर्ष और एक मास पूर्ण हो गया। मिनिट चले गये और अब सैकिंड ही शेष रह गये थे।

कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी का प्रभात आ गया। घड़ी ने पांच टंकोरे बजाये। उस सिद्धियोग और ब्राह्म मुहूर्त में गुरुदेव के दोनों नेत्र अकस्मात् प्रस्फुटित हुए। उनमें से बिजली की सी चमक निकली और फिर सब शान्त। स्वर्गीय ज्योति स्वर्ग की ओर चली गई। एक प्रखर तेजस्वी जीवन का अन्त हुआ।

चारों ओर हाहाकार मच गया। विद्युद्वेग से नगर में यह दुःसंवाद फैल गया। नर-नारियों का भारी जमघट हो गया। सब उदास सब शोकाकुल सब विषण्ण और उदास! कितने ही भक्त फूट-फूट कर रोने लगे।

हम लाग गुरुदेव के निर्जीव देह को छोड़ दूर हट गये। गुरुवियोग का मार्मिक प्रहार दुस्सह प्रतीत होने लगा। जिस महात्मा ने मुक्तिमार्ग पर लगाया ज्ञाननयन का दान दिया सदा वात्सल्य का अमृत पिलाया जिसकी वरद छत्र-छाया में संयमजीवन का निर्वाह हुआ उनके विछोह से हम अनाथ हो गये।

लाल भवन के चौक में पट्ट पर आसीन उस शव में भी बड़ा अमूठा आकर्षण था। भव्य आकृति, गौर वर्ण उन्मीलित नेत्र! जैसे कोई विराट् पुरुष युवावस्था में संसार से विमुख होकर जा रहा हो। यह दृश्य देख एक बार मैं विह्वल हो उठा। मेरा धैर्य शोक के प्रबलतम आघात से चूर-चूर हो गया।

कैसा मनहूस दिन था वह! गुरुदेव की वह सौम्य आकृति आँखों से ओझल ही न होती थी। लाल भवन का कण-कण जैसे खाने को दौड़ रहा था। समुदाय के लोग भी घोर सूनापन अनुभव होता था।

श्रद्धांजलि-अर्घ्य

सम्पादक—
श्रीगणेश मुनिजी साहित्यरत्न

आन्तरिक व्यक्तित्व—

गुरुदेव के विराट्तर आन्तरिक व्यक्तित्व का परिचय शब्दों से नहीं दिया जा सकता। वह सरलता कोमलता क्षमा उदारता भद्रता और सौजन्य के भण्डार थे। हृदय का कोना-कोना वात्सल्य से सराबोर था। अपने प्रतिद्वंद्वियों के प्रति भी बड़े उदार और क्षमाशील। परिचित हो या अपरिचित सबके प्रति स्नेह का अस्खलित प्रवाह बहता था उनके हृदयसरोवर से। इसी विशिष्टता की बदौलत आपने फटे हृदयों को सांधा उद्दों को मिटाया और विद्वेष के दावानल की जगह प्रीति की पावन मंदाकिनी बहाई। आपके सर्वांग पूर्ण महान् व्यक्तित्व ने ऐसा अनिर्वचनीय प्रभाव उत्पन्न कर दिया था कि मनुष्य सामने आते ही श्रद्धा-भक्ति से नम्र बन जाता था। जहाँ आप विराजते आनन्द का शीतल मन्द सुगन्ध पवन प्रवाहित होने लगता। पापी जन भी आपके सानिध्य से पुनीत भावनाओं के अधिकारी बने। आप वह पावनी गंगा थे कि मनुष्यों के आन्तरिक कल्मष को धो देते। ऐसा समृद्ध व्यक्तित्व क्वचित् कदाचित् ही उपलब्ध होता है। वास्तव में गुरुदेव जगद्बन्धु महापुरुष थे। उनके परम पवित्र जीवन की यह संक्षिप्त-सी कहानी युग-युग में महावीर के प्रत्येक सेनानी का पथ प्रदर्शन करेगी।

—: श्रद्धांजलियाँ :—

महासन्त

[जिनागमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर साहित्यरत्न आचार्यसम्राट श्री १००८ श्री श्री आत्मारामजी म०]

सन्त मानवता के साकार रूप हैं। संयम और संस्कृति के समुज्ज्वल प्रतीक हैं। भूले भटके राहियों के लिये प्रकाश-स्तंभ हैं। प्रेम और करुणा की सतत प्रवाहित होने वाली मंदाकिनी हैं। वर्तमान अणुयुग की चीत्कार एवं हाहाकार के स्थान पर प्रेम और समभाव की साधना के अमर सन्देशवाहक हैं। सत्य अहिंसा क्षमा शान्ति और संयम सदाचार आदि की भव्य-भव्य कमनीय भावनाओं का आदर्श मूर्तरूप सन्त हैं।

श्रमण संघ के श्रद्धेय महास्थविर श्रीताराचन्दजी म० जैन समाज के चमकते उज्ज्वल समुज्ज्वल तारे थे। वे एक परमादर्श सन्त थे। समाज में उनका बड़ा गौरव था प्रभाव था वर्चस्व था। जिस रूप में एक महान् सन्त का जीवन होना चाहिये वैसा ही जीवन स्थविरजी महाराज का था। यद्यपि मेरा उन से अधिक सम्पर्क नहीं रहा तथापि जब मेरी धुंधली-सी स्मृति उस अतीत के सुनहले प्रभात में जाती है तो मुझे सहसा स्मरण हो आता है कि मैंने उस महापुरुष को अजरामर पुरी (अजमेर) के प्रांगण में होने वाले साधु-सम्मेलन में देखा था।

स्थविरजी महाराज प्रकृति से एक भद्र सन्त थे। उनकी कथनी और करणी में एकता था। आचार और विचार से उनका जीवन मंजा हुआ था। निरभिमानता सरलता, नम्रता एवं मधुरता आपके जीवन धन की अनमोल मणियाँ थीं।

दीर्घकाल तक संयम साधना में घूम कर आपने समाज की जो अनुपम सेवाएँ की वे स्तुत्य एवं महान् हैं। आपके त्याग प्रधान जीवन की जन जन के मन मन के कण कण में अमिट छाप है। आपके स्वर्गवास से जैन समाज को एक बहुत बड़ी क्षति पहुँची।

मैंने उनको जीवन के सन्ध्याकाल में देखा है। सन्ध्याकाल में प्रभास्वर भास्कर भी प्रभाहीन हो जाता है किन्तु उन वन्दनीय महास्थविर की संयम प्रभा इस सन्ध्याकाल में भी चमकती रही अधिकाधिक देदीप्यमान होती रही। शरीर अवश्य जर्जर हो चुका था किन्तु अन्तरात्मा सबल भी सुदृढ़ थी।

आज व हमारी चर्म चक्षुओं के सामने नहीं रहे किन्तु उनके तप और त्याग का उज्ज्वल प्रकाश अब भी हमारे अन्तस्थ चक्षुओं के सामने चमक दमक रहा है। मैं आशा करता हूँ उनकी मधुर स्मृति हमें युग युग तक संयम जीवन के लिए मंगलमय प्रेरणा देती रहेगी। सच्चा साधु मर कर भी अमर होता है।

मैं श्रद्धा के मधुर क्षणों में उस विराट आत्मा के प्रति भावाञ्जलि अर्पण करता हूँ। उनके जीवन की मधुर सुवास मेरे मन के कण कण को आज भी सुवासित कर रही है। मेरे पर उनकी एक महान् सद्गुरु जैसी स्नेह, सरस कृपा दृष्टि रही है। मैं उसे भूल यह असंभव है आज भी और फिर कभी भी।

श्रमणसंघ के महास्थविर

[उपाध्याय पं० रत्न श्रीहस्तीमलजी म०]

स्वर्गीय श्रद्धेय श्रीताराचन्द्रजी म० श्रमणसंघ के महास्थविर संत थे। आप श्री से सादड़ी सम्मेलन में तथा उसके पूर्व भी मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। आप मारवाड़ के प्रसिद्ध आचार्य पूज्य अमरसिंहजी म० के भूतपूर्व सम्प्रदाय के प्रमुख संत थे। आपका जीवन बड़ा सरल और श्रमशील था। करीब ६४ वर्ष के लम्बे दीक्षित और वृद्ध हो कर भी आप उत्साह में तरुणों का शिक्षा देने वाले थे। संतों पर वात्सल्यता ऐसी अनूठी थी कि रात्रि का छोटे मोटे सब सन्तों को संभाल कर आप फिर शयन करते थे। सन्तों को प्रेम और आचार की शिक्षा देने में उनका बड़ा रस था।

श्रमणसंघ में आपका बड़ा गौरव था। आपके स्वर्गवास से संघ में बड़ी क्षति पहुँची है। हम स्वर्गस्थ आत्मा की चिरशान्ति की कामना करते हैं और श्रीपुष्कर मुनिजी आदि मुनि मण्डल के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

अर्चना का अर्घ्य

[ले०—प्रधानमन्त्री वाचस्पति श्रीमदनलालजी महाराज]

किसी वृद्ध पुरुष की छाया जब कभी अन्तर्हित हो जाती है तो एक अभाव महान बन कर चित्त पर बैठ जाता है। आजीवन संयम साधना में जल जल कर जो निर्धूम अग्नि की तरह प्रकाशमान हो उठते हैं उन तपःपूत महामुनियों के जीवन का अमन्द विमल आलोक हम पर जितना अधिक बरसता रहे उतना हमारा पथ प्रशस्त रहेगा। अभी अभी एक पुण्यज्योति महास्थविर श्रीताराचन्दजी म० हमारे सामने से ओझल हो गये हैं। उनकी लम्बी संयमयात्रा हमारे लिये स्पृहणीय है। उनके चेहरे की शांत सरलता आज भी स्मृतिपथ पर थिरक रही है।

ऐसी महान् विभूतियों से वंचित होना हमारे लिये वह असंभावित क्षति है जिसकी पूर्ति असंभव है। मैं उस परम पुनीत आत्मा की अन्तिम विदा के उपलक्ष में अपने हृदय की आस्थाओं से अर्चना का अर्घ्य दे रहा हूँ।

मर कर भी अमर

[ले० उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्दजी म०]

श्रद्धेय महामान्य स्थविर पुंगव श्रीताराचन्द्रजी म० त्याग वैराग्य की जीवित मूर्ति थे क्षमा और शान्ति के महासागर थे और थे श्रुति धर्म के उज्ज्वल प्रतीक। उनकी साधुत्वयात्रा सरल बाल्यकाल से प्रारम्भ हुई और महा [illegible] के पथ पर अग्रसर होती हुई वृद्धावस्था के अन्तिम वर्षों तक बड़े ही शानदार ढंग से पहुँची। इस बीच में तरुणाई की आंधियाँ आईं तूफान आए किन्तु वह महापुरुष उन पर विजय पर विजय प्राप्त करता रहा अपने पथ से हटा नहीं डिगा नहीं लड़खड़ाया नहीं।

मेरे तरुणप्राण मस्तिष्क को उनकी सहज सरलता ने प्रभावित किया है। उन से वार्तालाप करते समय आनन्द मिलता था प्रसन्नता होती थी। कभी कभी तो उनकी अलंकारहीन किन्तु सुमधुर भद्रवार्ता में साधुता के दिव्य भाव छलक छलक आते थे। उनके पास त्याग था किन्तु वैराग्य का गर्व नहीं। जो था वह सहज था अकृत्रिम था स्वच्छ था निश्छल था। [illegible] जीवन की जितनी सीमा थी उन्होंने अपने को सदा उससे सीमित ही व्यक्त किया। मानव जीवन की उस दुर्बलता से उन्होंने अपने को सतत बचाये रखा जो अपने व्यक्तित्व की सीमाओं को लांघ कर भी अपने को दूर दूर तक अभिव्यक्त करने के लिए अनेकेन प्रकारेण छटपटाया करती है।

मुनिजी म० जैसी विभूतियें छोड़ गये हैं, यह आपकी ही महान् साधना का शुभ फल है। आपका यह शिष्यमण्डल ज्ञानदर्शन और चारित्र की आराधना द्वारा फलता फूलता रहे, इस शुभ कामना द्वारा मैं अपनी लेखनी को विश्राम दे रहा हूँ।

मेरी कोटिश: वन्दना

[प्रदेश मन्त्री पं० श्रीपुष्कर मुनिजी म०]

रात्रि का समय है, चारों ओर गहन अन्धकार है। हाथ भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। उस समय एक यात्री विकट घाटियों में से गुजर रहा है। उसके हाथ में एक जाज्वल्यमान प्रदीप है, प्रकाश पुंज है, जिससे वह अपने गन्तव्य स्थान की ओर तेजी से बढ़ रहा है किन्तु उसी समय उमड़ घुमड़ कर घनघोर घटायें आती हैं, तूफान आता है, आंधी आती है, हवा का झोंका आता है और वह जाज्वल्यमान प्रदीप एक क्षण में बुझ जाता है, उस समय उस यात्री की क्या दशा होती है यह तो प्रत्येक मानव कल्पना कर सकता है।

ठीक यही दशा वर्तमान श्रमणसंघ की हुई है। वह इस समय विकट विचार-विथियों में से पार हो रहा था कि महास्थविरजी म० रूपी प्रकाशपुंज बुझ गया।

स्थविर साधारण साधक नहीं होता वह महान् साधक होता है। उसका जप तप त्याग-वैराग्य और ज्ञानदर्शन तथा चारित्र उत्कृष्ट होता है। एतदर्थ जैनागमों ने उसे भगवान् का महत्त्वपूर्ण पद प्रदान किया है। उसे भगवान के समान वन्दनीय, अर्चनीय और पूजनीय माना है।

महास्थविरजी म० ऐसे ही महापुरुष थे। उनकी सरलता सरसता निष्कपटता करुणा सहानुभूति सराहनीय थी। व ज्ञान, दीक्षा और वयस्थविर थे किन्तु उसका उन्हें अभिमान नहीं था घमण्ड नहीं था। लोकैषणा नहीं थी और था उन में मात्सर्य का अभाव। उनका हृदय इतना निश्छल इतना मधुर और इतना आकर्षक था कि विरोधी व्यक्ति भी उनके संपर्क में आकर आनन्द का अनुभव करता तथा विरोध को भुला देता।

मुझे सौभाग्य से ही उस महाप्रभु के चरणकमलों की सेवा का दीर्घ सुअवसर प्राप्त हुआ है। उस समय मैंने देखा उस महाप्रभु का जो संसार के प्रपंचों से अलग-थलग रहता था। एकान्त शान्त स्थान में बैठ कर जप करता था दिनभर श्रम करता था। और निर्लेप नारायण बन कर रहता था। वह जैसा विचारता था और वैसा बोलता था वैसा ही करता था। उसकी मन वाणी

सुगन्धित पुष्प

[पं० रत्न मन्त्री श्रीप्रेमचन्दजी म० 'शेरे पंजाब']

जुड़ेंगे हर बरस मेले, शहीदों के मजारों पर ।
धर्म पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।।

श्रद्धेय परम पुनीत श्रीताराचन्दजी म० का जीवन ज्योतिर्मय विकसित, त्याग-तप एवं विश्वप्रेम की सुवासना से सुवासित एक अनूठा पुष्प था। आपने नव वय जैसी खेलने कूदने क्रीडांगण में क्रीड़ा करने की लघु वय में ही इस मायामय भौतिक संसार का परित्याग कर भगवती दीक्षा धारण की। यह आपके जीवन की एक अलौकिक सुन्दर झाँकी है। हे महामुने! जैसा आपका नाम था वैसा ही आपका काम था। प्रकृति ने आपको सूर्य चन्द्र ग्रह-नक्षत्र की संज्ञा न देकर तारा और चन्द्र की नाम संज्ञा से विभूषित किया तो यह ठीक ही किया। क्योंकि सूर्य ग्रह नक्षत्र का तो एक-एक ही रूप है। यह दोनों रूप लघु और गुरुत्व के बोधक हैं। शास्त्रीय दृष्टि से ज्योतिष मण्डल में तारा सब से छोटा और चन्द्र को सब से बड़ा माना है।

ठीक आपके जीवन में भी ये दोनों रूप ओतप्रोत थे। जहाँ आपका जीवन निरभिमानता और बड़प्पन की महत्वाकांक्षा से रहित तारा की भाँति छोटा-सा प्रतीत होता था वहाँ ज्ञानदर्शन और चारित्र आदि गुणों से चन्द्र की भाँति महान् था। आकाशगत तारा और चन्द्र तो रात्रि काल से ही संसार को प्रकाशित करते हैं परन्तु आप तो अनूठे तारा-चन्द्र थे जो रात्रि और दिवस दोनों काल में अपने अलौकिक आत्मप्रकाश से प्रकाशित रहते थे। आपके आत्मीय दिव्य प्रकाश से प्रकाश प्राप्त कर अनेक भव्यात्माओं ने अपने अन्धकारमय जीवन को प्रकाशित किया और सद्मार्गानुयायी बन कर अपना जीवन सफल बनाया। आप हृदय के दयालु एवं भद्र थे आपने अपने साधु जीवन को ६४ वर्ष के दीर्घकाल तक निष्कलंक एवं सुन्दर रूप से पालन किया।

यह आपके संयम जीवन की दीर्घ यात्रा आपके साहस और दृढ़ विश्वास का द्योतक है। हे स्वर्गस्थ महात्मन्! यद्यपि भौतिक शरीरापेक्षा से आप आज हमारे मध्य नहीं हैं, परन्तु आपकी गुणगाथायें तो आज भी इस विश्व में अमर रूप में विचरण कर रही हैं और भविष्य में करती रहेंगी। आपके गुण वर्णन इस तुच्छ रसना के बलबूते की बात नहीं है।

हे महामहिम! आप अपने दीप्त सुयोग्य शिष्य मन्त्री श्रीपुष्कर मुनिजी म० श्रीहीरा मुनिजी म०, साहित्यरत्न श्रीदेवेन्द्र मुनिजी म० साहित्यरत्न श्रीगणेश

मुनिजी म० जैसी विभूतियें छोड़ गये हैं यह आपकी ही महान् साधना का शुभ फल है। आपका यह शिष्यसम्पन्न ज्ञानदर्शन और चारित्र की आराधना द्वारा फलता फूलता रहे, इस शुभ कामना द्वारा मैं अपनी लेखनी को विश्राम दे रहा हूँ।

मेरी कोटिशः वन्दना

[श्रद्धेय मन्त्री पं० श्रीपुष्कर मुनिजी म०]

रात्रि का समय है, चारों ओर गहन अन्धकार है। हाथ भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। उस समय एक यात्री विकट घाटियों में से गुजर रहा है। उसके हाथ में एक जाज्वल्यमान प्रदीप है, प्रकाश पुंज है, जिससे वह अपने गन्तव्य स्थान की ओर तेजी से बढ़ रहा है किन्तु उसी समय उमड़ घुमड़ कर घनघोर घटायें आती हैं, तूफान आता है, आंधी आती है, हवा का झोंका आता है और वह जाज्वल्यमान प्रदीप एक क्षण में बुझ जाता है, उस समय उस यात्री की क्या दशा होती है यह तो प्रत्येक मानव कल्पना कर सकता है।

ठीक वही दशा वर्तमान श्रमणसंघ की हुई है। वह इस समय विकट विचार-वीथियों में से पार हो रहा था कि महास्थविरजी म० रूपी प्रकाशपुंज बुझ गया।

स्थविर साधारण साधक नहीं होता वह महान् साधक होता है। उसका जप तप त्याग-वैराग्य और ज्ञानदर्शन तथा चारित्र उत्कृष्ट होता है। एतदर्थ जैनागमों ने उस भगवान् का महत्वपूर्ण पद प्रदान किया है। उसे भगवान के समान वन्दनीय अर्चनीय और पूजनीय माना है।

महास्थविरजी म० ऐसे ही महापुरुष थे। उनकी सरलता सरसता निष्कपटता करुणा सहानुभूति सराहनीय थी। व ज्ञान, दीक्षा और वयस्थविर थे किन्तु उसका उन्हें अभिमान नहीं था घमण्ड नहीं था। लोकैषणा नहीं थी और था उन में मात्सर्य का अभाव। उनका हृदय इतना निश्छल इतना मधुर और इतना आकर्षक था कि विरोधी व्यक्ति भी उनके संपर्क में आकर आनन्द का अनुभव करता तथा विरोध को भुला देता।

मुझे सौभाग्य से ही उस महाप्रभु के चरणकमलों की सेवा का दीर्घ सुअवसर प्राप्त हुआ है। उस समय मैंने देखा उस महाप्रभु को जो संसार के प्रपंचों से अलग-थलग रहता था। एकान्त शान्त स्थान में बैठ कर जप करता था दिनभर श्रम करता था। और निर्लेप नारायण बन कर रहता था। वह जैसा विचारता था और जैसा बोलता था वैसा ही करता था। उसकी मन वाणी

और कर्म में एकरूपता एकतानता और एकनिष्ठा थी। उसका आकार भेष या विचार भेष या और थी उसमें त्याग की चमक तथा वैराग्य की दमक।

मैं उस महाप्रभु के चरणों में समक्ति भाव से कोटिशः वन्दन करता हुआ भावभरी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

जीवन के वे मधुर क्षण

[ले० प० श्री सुरेशचन्द्रजी म० 'शास्त्री']

खुशनुमा दुनियाँ में वोह हजारत वा मीनार हैं।
रोशनी से जिनकी मल्लाहों के बेड़े पार हैं॥

जब मुझे सहसा संघ के महाभाग्य सन्त श्रीताराचन्द्रजी म० के स्वर्गवास की सूचना मिली तो हृदय को एक जबरदस्त धक्का लगा और पिछले आठ साल की यादें एक के बाद एक स्मृति में घूम गईं।

काल का प्रवाह कितनी तीव्र गति से बह जाता है। सं० २००७ का ब्यावर का चातुर्मास। उसके बाद वीर भूमि मेवाड़ के आँखों देखे वे पर्वतीय दृश्य! देवगढ़ नाथद्वारा होते हुए उदयपुर पहुँचने पर जयजयकार के साथ भव्य स्वागत! उस तूफानी यात्रा की झांकी अब भी आँखों में घूम जाती है कभी-कभी।

सर्वप्रथम उदयपुर में ही वयोवृद्ध श्रद्धेय श्रीताराचन्द्रजी म० के पुण्य दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था इन पंक्तियों के लेखक को। उस प्रथम परिचय में ही उनके मधुर स्वभाव बाल-सुलभ सरल प्रकृति और मिष्ट एवं स्पष्ट भाषिता से उनके समग्र व्यक्तित्व की रेखायें मेरे मन के परदे पर खिंच गई थी। मन अपने आप में बोल उठा था इस महान् सन्त के अन्दर एक महान् आत्मा निवास करती है।

उदयपुर में वह पहला ही दिन था। दोपहर का आहार करके बैठे ही थे कि इतने में वहाँ के दो चार जाने माने श्रावक अपना अपना आसन लेकर आ पहुँचे। वन्दन किया और बैठ गये।

उधर से समाज का वह महान् सन्त भी हाथ में लाठी लिए अपनी कुटिया से बाहर निकला और अपनी कड़कती हुई आवाज में बोला—श्रावकजी! भां, अब मौका मिल गया है आपको! आप करते थे कि, कविजी के पधारने पर

हम यह पूछेंगे, वह पूछेंगे! अब खूब खुलकर पूछ लीजिये जो भी आपको पूछना है। मैं भी आ पहुँचा हूँ आपकी चर्चा वार्ता सुनने के लिये। इतना कह कर वे एक आसन पर खिंचकर बैठ गये।

मैंने देखा—उनकी वाणी में ओज था भाषा में स्पष्टता थी और चेहरे पर सरलता नाच रही थी।

लगभग दो अढाई घंटे तक वह ज्ञान-गोष्ठी चलती रही। वह महान् सन्त श्रद्धा में डूब डूब कर ज्ञान की मस्ती में झूम झूम कर उस ज्ञान चर्चा में रस लेता रहा। मैं देख रहा था कि आगम ज्ञान की गहराइयों के नये नये तथ्य सुनकर बीच-बीच में उस महान् सन्त का चेहरा खिल उठता था और आँखों में प्रसन्नता की एक नयी चमक झलक जाती थी। ज्ञान गोष्ठी के सम्पन्न होने पर उन्होंने अपनी भावप्रवण भाषा में कहा—भाई कविजी तो कविजी ही हैं। सन्त तो बहुत देखे हैं, पर कविजी जैसा सुलझे विचारों का विद्वान और मधुरभाषी सन्त आज एक ही देखा है! जैसा नाम सुना था उससे भी बढ़कर निकले यह सा!

उनके दर्शन करने का यह प्रथम ही अवसर था! इतने महान् होते हुए भी वह बार बार आते और हम छोटे मुनियों से भी सहज विनम्र भाषा में पूछते—मुनिजी! किसी बात की तकलीफ मत मानना, जिस चीज की जरूरत हो बिना संकोच के कह देना। उनके इस आत्मीयता और स्नेह से भरे व्यवहार को देखकर मैं गद्गद हो जाता और उनके चरणों में बैठ कर अपने आपको धन्य धन्य समझता! कितनी मधुरता एवं सरसता थी उनके जीवन में। जीवन के वे मधुर क्षण अब भी आँखों में तैर रहे हैं।

\+ + + + +

गुलाबपुरे में कुछ महाश्रमणों का एक छोटासा सम्मेलन होने जा रहा था। श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव कविजी को भी उसमें सम्मिलित होना था। इसलिये उस समय हम कुछ जल्दी में थे। उदयपुर में केवल एक सप्ताह ठहर कर हमने चित्तौड़ की ओर कदम बढ़ाये। ज्यों ही हम डबोक पहुँचे तो देखा वीरशासन का महान् सेनानी अपनी शिष्यमण्डली के साथ अगवानी करने के लिये तैयार हैं। डबोक उनका एक तरह से अपना निजी क्षेत्र था। वहाँ पर उन्होंने जिस मधुरता सरसता और आतिथ्यभावना का सक्रिय परिचय दिया वह कभी भुलाया नहीं जा सकता।

रात का भाषण-मंच का दायित्व अपने राम का पूरा करना था। अपने दायित्व का निर्वाह करने के लिये ज्योंही मैं पहुँचा तो देखा वह महान् सन्त पहले ही वहाँ विराजमान हैं। अत्यन्त स्नेह से मुझे अपने पास बिठाया और फिर अपनी आरदार भाषा में मुझ अकिंचन का भाव भरा परिचय दिया और

और क्रम में एकरसता एकतानता और एकनिष्ठा थी। उसका आकार श्रेष्ठ था विचार श्रेष्ठ था और थी उसमें त्याग की चमक तथा वैराग्य की दमक।

मैं उस महाप्रभु के चरणों में समक्ति भाव से कोटिशः वन्दन करता हुआ भावभरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

जीवन के वे मधुर क्षण

[प्रो० प० श्री सुरेशचन्द्रजी म० 'शास्त्री']

खुशनुमा दुनियाँ में मोह शबाब सा मीनार है।
रोशनी से जिनकी मल्लाहों के बेड़े पार हैं॥

जब मुझे सहसा संघ के महामान्य सन्त श्रीताराचन्द्रजी म० के स्वर्गवास की सूचना मिली तो हृदय को एक जबरदस्त धक्का लगा और पिछले आठ साल की बातें एक के बाद एक स्मृति में घूम गई।

काल का प्रवाह कितनी तीव्र गति से बह जाता है। सं० २००७ का ब्यावर का चातुर्मास। उसके बाद वीर भूमि मेवाड़ के आँखों देखे वे पर्वतीय दृश्य! देवगढ़ नाथद्वारा होते हुए उदयपुर पहुँचने पर जयजयकार के साथ भव्य स्वागत! उस तूफानी यात्रा की झाँकी अब भी आँखों में घूम जाती है कभी-कभी।

सर्वप्रथम उदयपुर में ही वयोवृद्ध श्रद्धेय श्रीताराचन्द्रजी म० के पुण्य दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था इन पंक्तियों के लेखक को। उस प्रथम परिचय में ही उनके मधुर स्वभाव बाल-सुलभ सरल प्रकृति और मिष्ट एवं स्पष्ट भाषिता से उनके समग्र व्यक्तित्व की रेखायें मेरे मन के परदे पर खिंच गई थी। मन अपने आप में बोल उठा था इस महान् सन्त के अन्दर एक महान् आत्मा निवास करती है।

उदयपुर में वह पहला ही दिन था। दोपहर का आहार करके बैठे ही थे कि इतने में वहाँ के दो चार आते जाते श्रावक अपना अपना आसन लेकर आ पहुँचे। वन्दन किया और बैठ गये।

उधर से समाज का वह महान् सन्त भी हाथ में लाठी लिए अपनी कुटिया से बाहर निकला और अपनी कड़कती हुई आवाज में बोला—आपको जी! अब मौका मिल गया है आपको! आप कहते थे कि, कविजी के पधारने पर

हम यह पूछेंगे वह पूछेंगे। अब खूब खुलकर पूछ लीजिये जो भी आपको पूछना है। मैं भी आ पहुँचा हूँ आपकी चर्चा वार्ता सुनने के लिये। इतना कह कर वे एक आसन पर अंचकर बैठ गये।

मैंने देखा—उनकी वाणी में ओज था, भाषा में स्पष्टता थी और चेहरे पर सरलता नाच रही थी।

लगभग दो अढ़ाई घंटे तक यह ज्ञान-गोष्ठी चलती रही। वह महान् सन्त श्रद्धा में डूब डूब कर ज्ञान की मस्ती में झूम झूम कर उस ज्ञान चर्चा में रस लेता रहा। मैं देख रहा था कि आगम ज्ञान की गहराइयों के नये नये तथ्य सुनकर बीच-बीच में उस महान् सन्त का चेहरा खिल उठता था और आँखों में प्रसन्नता की एक नयी चमक मलक आती थी। ज्ञान गोष्ठी के सम्पन्न होने पर उन्होंने अपनी भावभरी भाषा में कहा—भाई कविजी तो कविश्री ही हैं। सन्त तो बहुत देखे हैं, पर कविश्री जैसा सुलझे विचारों का विद्वान और मधुरभाषी सन्त आज एक ही देखा है! जैसा नाम सुना था उससे भी बढ़कर निकले यह तो!

उनके दर्शन करने का यह प्रथम ही अवसर था! इतने महान् होते हुए भी वह बार बार आते और हम छोटे मुनियों से भी सहज विनम्र भाषा में पूछते—मुनिजी! किसी बात की तकलीफ मत मानना जिस चीज की जरूरत हो बिना संकोच के कह देना। उनके इस आत्मीयता और स्नेह से भरे व्यवहार को देखकर मैं गद्‌गद हो जाता और उनके चरणों में बैठ कर अपने आपको धन्य धन्य समझता! कितनी मधुरता एवं सरसता थी उनके जीवन में। जीवन के वे मधुर क्षण अब भी आँखों में तैर रहे हैं।

\+ \+ \+ \+ \+

गुलाबपुरे में कुछ महाश्रमणों का एक छोटासा सम्मेलन होने जा रहा था। श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव कविजी को भी उसमें सम्मिलित होना था। इसलिये उस समय हम कुछ जल्दी में थे। उदयपुर में केवल एक सप्ताह ठहर कर हमने चित्तौड़ की ओर कदम बढ़ाये। ज्यों ही हम बड़ाक पहुँचे, तो देखा वीरशासन का महान् सेनानी अपनी शिष्यमण्डली के साथ अगवानी करने के लिये तैयार हैं। बड़ाक उनका एक तरह से अपना निजी क्षेत्र था। वहाँ पर उन्होंने जिस मधुरता सरसता और आतिथ्यभावना का सक्रिय परिचय दिया वह कभी भुलाया नहीं जा सकता।

रात को भाषण-मंच का दायित्व अपने राम का पूरा करना था। अपने दायित्व का निर्वाह करने के लिये ज्योंही मैं पहुँचा तो देखा वह महान् सन्त पहले ही वहाँ विराजमान हैं। अत्यन्त स्नेह से मुझे अपने पास बिठाया और फिर अपनी आत्मीय भाषा में मुझ अकिंचन का भाव भरा परिचय दिया और

और कम में एकरूपता एकतानता और एकनिष्ठा थी। उसका आकार श्रेष्ठ था विचार श्रेष्ठ था और थी उसमें त्याग की चमक तथा वैराग्य की दमक।

मैं उस महाप्रभु के चरणों में सभक्ति भाव से कोटिशः वन्दन करता हुआ भावभरी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

जीवन के वे मधुर क्षण

[ले० प० श्री सुरेशचन्द्रजी म० 'शास्त्री']

खुशनुमा दुनियाँ में वोह इजात का मीनार हैं।
रोशनी से जिनकी मल्लाहों के बेड़े पार हैं॥

जब मुझे सहसा संघ के महाप्राण सन्त श्रीताराचन्द्रजी म० के स्वर्गवास की सूचना मिली तो हृदय को एक जबरदस्त धक्का लगा, और पिछले आठ साल की बातें एक के बाद एक स्मृति में घूम गई।

काल का प्रवाह कितनी तीव्र गति से बह जाता है। सं० २००७ का ब्यावर का चातुर्मास। उसके बाद वीर भूमि मेवाड़ के आँखों देखे वे पर्वतीय दृश्य! देवगढ़ नाथद्वारा होते हुए उदयपुर पहुँचने पर जयजयकार के साथ भव्य स्वागत! उस तूफानी यात्रा की झांकी अब भी आँखों में घूम जाता है कभी-कभी।

सर्वप्रथम उदयपुर में ही वयोवृद्ध श्रद्धेय श्रीताराचन्द्रजी म के पुण्य दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था इन पंक्तियों के लेखक को। उस प्रथम परिचय में ही उनके मधुर स्वभाव बाल-सुलभ सरल प्रकृति और मिष्ट एवं स्पष्ट भाषिता से उनके सभाव्य व्यक्तित्व की रेखायें मेरे मन के परदे पर खिंच गई थी। मन अपने आप में बोल उठा था इस महान सन्त के अन्दर एक महान आत्मा निवास करती है।

उदयपुर में वह पहला ही दिन था। दोपहर का आहार करके बैठे ही थे कि इतने में वहाँ के दो चार जाने माने श्रावक अपना अपना आसन लेकर आ पहुँचे। वन्दन किया और बैठ गये।

उधर से समाज का वह महान सन्त भी हाथ में लाठी लिए अपनी कुटिया से बाहर निकला और अपनी कड़कती हुई आवाज में बोला—श्रावकजी! जो अब मौका मिल गया है आपको! आप कहते थे कि, कविजी के पधारने पर

हम यह पूछेंगे वह पूछेंगे ! अब खूब खुलकर पूछ लीजिये जो भी आपको पूछना है। मैं भी आ पहुँचा हूँ आपकी चर्चा वार्ता सुनने के लिये। इतना कहकर वे एक आसन पर अंचकर बैठ गये।

मैंने देखा—उनकी वाणी में ओज था, भाषा में स्पष्टता थी और चेहरे पर सरलता नाच रही थी।

लगभग दो अढ़ाई घंटे तक यह ज्ञान-गोष्ठी चलती रही। वह महान् सन्त श्रद्धा में डूब डूब कर ज्ञान की मस्ती में झूम झूम कर उस ज्ञान चर्चा में रस लेता रहा। मैं देख रहा था कि आगम ज्ञान की गहराइयों के नये नये तथ्य सुनकर बीच-बीच में उस महान् सन्त का चेहरा खिल उठता था और आँखों में प्रसन्नता की एक नयी चमक झलक आती थी। ज्ञान गोष्ठी के सम्पन्न होने पर उन्होंने अपनी भावप्रवण भाषा में कहा—भाई कविजी तो कविजी ही हैं। सन्त तो बहुत देखे हैं, पर कविजी जैसा सुलझे विचारों का विद्वान और मधुरभाषी सन्त आज एक ही देखा है ! जैसा नाम सुना था उससे भी बढ़कर निकले यह तो !

उनके दर्शन करने का यह प्रथम ही अवसर था ! इतने महान् होते हुए भी वह बार बार आते और हम छोटे मुनियों से भी सहज विनम्र भाषा में पूछते—मुनिजी ! किसी बात की तकलीफ मत मानना जिस चीज की जरूरत हो बिना संकोच के कह देना। उनके इस आत्मीयता और स्नेह से भरे व्यवहार को देखकर मैं गद्गद् हो जाता और उनके चरणों में बैठ कर अपने आपको धन्य धन्य समझता ! कितनी मधुरता एवं सरसता थी उनके जीवन में। जीवन के वे मधुर क्षण अब भी आँखों में तैर रहे हैं।

+ + + + +

गुलाबपुरे में कुछ महाश्रमणों का एक छोटासा सम्मेलन होने जा रहा था। श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव कविजी को भी उसमें सम्मिलित होना था। इसलिये उस समय हम कुछ जल्दी में थे। उदयपुर में केवल एक सप्ताह ठहर कर हमने चित्तौड़ की ओर कदम बढ़ाये। ज्यों ही हम डबोक पहुँचे तो देखा वीरशासन का महान् सेनानी अपनी शिष्यमण्डली के साथ अगवानी करने के लिये तैयार हैं। डबोक उनका एक तरह से अपना निजी क्षेत्र था। वहाँ पर उन्होंने जिस मधुरता सरसता और आतिथ्यभावना का सक्रिय परिचय दिया वह कभी भुलाया नहीं जा सकता।

रात को भाषण-मंच का दायित्व अपने राम का पूरा करना था। अपने दायित्व का निवाह करने के लिये ज्योंही मैं पहुँचा तो देखा वह महान् सन्त पहले ही वहाँ विराजमान हैं। अत्यन्त स्नेह से मुझे अपने पास बिठाया और फिर अपनी जोरदार भाषा में मुझ अकिंचन का भाव भरा परिचय दिया और

पन्द्रह बीस मीनिट तक पहले स्वयं भाषण दिया। बहुजन की गन्ध उनको छू तक न गई थी। इस ढलती हुई अवस्था में भी उनकी इस क्रियाशीलता और सरसता को देख कर मैं भाव विभोर हो उठा। मन की भाषा में मैंने कहा—इस चेतनशील जीवन में एक महान् व्यक्तित्व हिलोरें ले रहा है। आज भी वह मधुर हृदय आँखों में नाच रहा है। कितने मधुर थे जीवन के वे क्षण।

\+ + + + +

सं० २०११ में अलवर का वर्षावास पूर्ण करके भरतपुर, मथुरा होता हुआ ज्योंही हाथरस पहुँचा था यह पुनीत समाचार सुन कर तन मन नयन प्रसन्नता से नाच उठे कि यही श्रमणसंघ के महानायक वयोवृद्ध सन्त श्री ताराचन्द्रजी म० अपने शिष्य समुदाय के साथ दिल्ली से आगरा पधारने वाले हैं। कहाँ उदयपुर और कहाँ दिल्ली और आगरा कहाँ यह वृद्ध शरीर और कहाँ पैदल यह यात्रा। देख सुनकर आश्चर्य में रह गया। अगर पहले पहुँच कर मैं उस महान् सन्त का स्वागत करके मन के अरमान न निकाल सका इसका मन में बड़ा ही रंज रहेगा।

आगरे में उस महान् सन्त के पुण्य दर्शन करके रोम रोम पुलकित हो गया। उनकी जो सविशेष कृपा दृष्टि रही उसकी मधुर स्मृति कभी धुंधली नहीं पड़ सकती। उनके अत्यन्त निकट परिचय में रहकर मैंने उस महान् सन्त के जीवन में एक जीवित-जाग्रत पौरुष के दर्शन किये। सचमुच वह महाश्रमण श्रम की साक्षात् मूर्ति था। इस अवस्था में प्रायः श्रमण दूसरों पर एक भार बन जाता है। श्रम से जी चुराता है हाथ पैर हिलाने में अपना अगौरव समझता है। परन्तु उस महाश्रमण के अन्दर पुरुषार्थ गहरी अंगड़ाई ले रहा था। श्रम करने में दरअसल उन्हें आनन्दानुभूति होती थी। आहार पानी आने से लगभग आध घंटा पहले वह महाश्रमण अपने आसन से उठ जाता था। भूमि का मार्जन-परिमार्जन करके स्वयं अपने हाथ से झोलका बिछाता एक एक पात्र का निरीक्षण करके रखता पानी तथा इतर साधन-सामग्री जुटाता और फिर आहार की प्रतीक्षा में घूमता रहता या बैठ जाता। बिना श्रम किये उस महान् सन्त का मन संतोष न पाता था। इसे कहते हैं जिन्दगी की जिन्दादिली। इसे कहते हैं श्रमणत्व का गहरा रंग।

आगरे से भरतपुर की ओर प्रस्थान करते समय मैंने देखा कि वे थोड़ी दूर चलकर बैठ जाते थोड़ा दम लेते और फिर चल पड़ते। एक जगह जरा-सी शक्ति बटोरने के लिये जब वे बैठे, तो चरण-संवाहन करते हुए मैंने नम्र निवेदन किया महाराज! अब तो शरीर बहुत थक गया है। इसलिये कहीं एक स्थान पर ही विराजमान हो जांय तो अच्छा है। बड़ा कष्ट होता होगा ऐसी स्थिति में तो।

मेरी मुग्ध बात को सुनकर चेहरे पर मुस्कराहट खेल गई और फिर अपनी लड़खड़ाती हुई आवाज में बोले—सुरेश मुनिजी ! इन लड़खड़ाते पैरों से ही जयपुर दिल्ली और आगरा देख लिया है और फिर मारवाड़ की ओर चल पड़ा हूँ। जब तक शरीर चलता है, चल रहा हूँ। क्यों कहीं एक जगह बैठ कर समाज पर व्यय का भार बनूँ। पानी बहता ही अच्छा संत चलता ही अच्छा।

मैंने मन ही मन कहा इस वृद्ध अवस्था में भी—कितनी ललक है इस जीवन में ! गति ही जीवन है—और अगति ही मृत्यु है—का कैसा भव्य साक्षात्कार है इनके मन प्राण में ! इनके जीवन का कण-कण शतमुख होकर कवि की भाषा में बोल रहा है—

"दरिया की जिन्दगी पर, सदके हजार जाने।
मुझको नहीं गवारा, साहिल की मौत मरना ॥"

उस महान् सन्त का वह तेजस्वितापूर्ण स्वर अब भी मेरे अन्तरतर में गूँज रहा है। कितने मधुर थे जीवन के वे क्षण !

संयम का देवता

[श्री मिश्रीमलजी म० शास्त्री—न्यायतीर्थ 'मधुकर']

भारतवर्ष संतों की जन्मभूमि है। समय-समय पर यहाँ अनेक संतों ने अवतरित होकर अपने उज्ज्वलतम व्यक्तित्व के द्वारा जन-जीवन के कण-कण में आध्यात्मिकता का आलोक प्रसारित किया है। जिससे आज भी भौतिक भक्ति के युग में आध्यात्मिक ज्योति जगमगा रही है।

स्वर्गीय श्रद्धेय श्री ताराचन्द्रजी म० एक महान् उदारचेता संत रत्न थे। उनके हृदय में उदारता थी भावों में गंभीरता थी और वाणी में माधुर्य था। उनका जीवन पूर्ण स्वावलम्बी था—"स्वतन्त्रता ही जीवन है परतन्त्रता ही मृत्यु है।" यह उक्ति उनके जीवन में पूर्ण चरितार्थ हुती थी। सम्मिश्ट में शाम्य अन्त्यावस्था होने के बावजूद भी वे प्रत्येक कार्य अपने हाथों करना पसंद करते थे।

जैन श्रमण की साधना में लुंचन का गहरा महत्त्व है। वह एक प्रकार से साधक की कसौटी है। लुंचन करना भी अपने आप में एक महान कला है। महास्थविरजी म० इस कला के पूर्ण ज्ञाता थे। मुझे स्मरण है कि मेरे श्रद्धेय गुरुदेव जोरावरमलजी म० का सं० १९७६ का वर्षावास पाली में था और साथ में महास्थविरजी म० का भी। उस समय मेरी नन्हीं-सी उम्र थी और उसी वर्ष मेरी दीक्षा हुई थी, अतः मेरा प्रथम लुंचन महास्थविरजी म० के कर-कमलों से ही

पन्द्रह बीस मीनिट तक पहले स्वयं भाषण दिया। बचपन की गन्ध उनका छू तक न गई थी। इस ढलती हुई अवस्था में भी उनकी इस क्रियाशीलता और सरसता को देख कर मैं भाव विभोर हो उठा। मन की भाषा में मैंने कहा—इस चेतनशील जीवन में एक महान् व्यक्तित्व हिलोरें ले रहा है। आज भी वह मधुर दृश्य आँखों में नाच रहा है। कितने मधुर थे जीवन के वे क्षण।

\+ + + + +

सं० २०११ में अलवर का वर्षावास पूर्ण करके भरतपुर, मथुरा होता हुआ ज्योंही हाथरस पहुँचा तो यह पुनीत समाचार सुन कर तन, मन नयन प्रसन्नता से नाच उठे कि वही श्रमणसंघ के महानायक वयोवृद्ध सन्त श्रीताराचन्द्रजी म० अपने शिष्य समुदाय के साथ दिल्ली से आगरा पधारने वाले हैं। कहाँ उदयपुर और कहाँ दिल्ली और आगरा कहाँ यह वृद्ध शरीर और कहाँ पैदल पद यात्रा। देख सुनकर आश्चर्य में रह गया। अगर पहले पहुँच कर मैं उस महान् सन्त का स्वागत करके मन के अरमान न निकाल सका, इसका मन में बड़ा ही खेद रहेगा।

आगरे में उस महान् सन्त के पुण्य दर्शन करके रोम रोम पुलकित हो गया। उनकी जो सविशेष कृपा दृष्टि रही उसकी मधुर स्मृति कभी धुंधली नहीं पड़ सकती। उनके अत्यन्त निकट परिचय में रहकर मैंने उस महान् सन्त के जीवन में एक जीवित-जाग्रत पौरुष के दर्शन किये। सचमुच वह महाश्रमण श्रम की साक्षात् मूर्ति था। इस अवस्था में प्रायः श्रमण दूसरों पर एक भार बन जाता है। श्रम से जी चुराता है, हाथ पैर हिलाने में अपना अगौरव समझता है। परन्तु उस महाश्रमण के अन्दर पुरुषार्थवाद गहरी अंगड़ाई ले रहा था। श्रम करने में परमसत्य उन्हें आनन्दानुभूति होती थी। आहार पानी आने से लगभग आध घंटा पहले वह महाश्रमण अपने आसन से उठ जाता था। भूमि का मार्जन-परिमार्जन करके स्वयं अपने हाथ से झोंपड़ा बिछाता एक एक पात्र का निरीक्षण करके रखता पानी तथा इतर साधन-सामग्री जुटाता और फिर आहार की प्रतीक्षा में घूमता रहता या बैठ जाता। बिना श्रम किये उस महान् सन्त का मन संतोष न पाता था। इसे कहते हैं जिन्दगी की जिन्दादिली। इसे कहते हैं श्रमणत्व का गहरा रंग।

आगरे से भरतपुर की ओर प्रस्थान करते समय मैंने देखा कि वे थोड़ी दूर चलकर बैठ जाते थोड़ा दम लेते और फिर चल पड़ते। एक जगह अपनी शक्ति बटोरने के लिए जब वे बैठे, तो चरण-संवाहन करते हुए मैंने नम्र निवेदन किया महाराज! अब तो शरीर बहुत थक गया है। इसलिये कहीं एक स्थान पर ही विराजमान हो जाँय तो अच्छा है। बड़ा कष्ट होता होगा ऐसी स्थिति में तो।

आदर्श विभूति

[ले० तपस्वी श्री श्रीचन्द्रजी म० आगरा]

श्रद्धेय महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी म० समाज की एक आदर्श विभूति थे। मैंने आपके जीवन में साक्षात जीते जागते पुरुषार्थ के दर्शन किये। वृद्धावस्था एवं बीमारी के समय भी आप श्री को इतना लम्बा विहार करते हुए देखकर व सुनकर मन-मस्तिष्क श्रद्धा से झुक जाता था। आप श्री का संयमी जीवन बहुत ही उच्चकोटि का रहा है।

ऐसे महान् सन्त के दिवंगत होने के समाचार सुनकर हृदय में वज्र सा आघात लगा और बहुत जल्दी ही सारे संघ में यह दुःखद समाचार फैल गया। इस शोक संवाद से श्रद्धेय मन्त्री प्रवर श्रीपृथ्वीचन्द्रजी म० एवं पं० श्यामलालजी म० आदि सन्तों ने सार्यकाल का आहार नहीं किया। आहार करते भी तो कैसे सब के मन में महास्थविरजी म० का वियोग खटक रहा था उनकी दिव्य भव्य मंजु मूर्ति प्रतिक्षण आँखों के सामने परिलक्षित हो रही थी।

श्रद्धेय महास्थविरजी म० नाम से तारा थे परन्तु गुणों की दृष्टि से ज्योतिर्मय चन्द्र थे जिनके प्रभा से सारा संघ जगमगा रहा था, परन्तु उस महा नक्षत्र के अस्त होते ही स्थानकवासी समाज में अन्धेरा छा गया। वह आदर्श विभूति विलुप्त हो गई। दिवंगत पुनीत आत्मा को सदा के लिये परम शांति की प्राप्ति हो यही हमारी मंगल कामना।

वे श्रमण संघ के ताज थे।

[मधुर व्याख्यानी—पं० श्री सुदर्शन मुनिजी म० दिल्ली]

तार के द्वारा अभी महास्थविर श्री ताराचन्द्रजी म० के स्वर्गवास के दुःखद समाचार प्राप्त हुए। श्रमण संघ ने सचमुच ही अपने ताज के हीरे को खो दिया है।

उनका समजीवन संयम साज से सजा हुआ था। जीवराज की महान् करुणा से व अमर गये थे। आशा था कि अभी उस महान् आत्मा के पुनः दर्शन होंगे किन्तु यह तो मन की मन में रह गई।

वे वृद्ध होते हुए भी जवानों से बढ़ कर आगे थे। हर बात में आगे थे। उनकी मोहनी मूर्ति आज हमारे सामने नहीं रही है। लेकिन उनके आदर्श जीवन को देखा तो सचमुच हम सबके सामने है और रहेगी।

हुआ। संयम करने की वह अद्भुत क्षमता अन्य सन्तों में मुझे कम देखने को प्राप्त हुई।

मैंने आप श्री के जीवन को अत्यन्त सन्निकट से देखा है, आप के प्रति मेरी महान् श्रद्धा है उनके चरणों में अपनी ओर से तथा श्रद्धेय मन्त्री श्री हजारीमलजी म० की ओर से श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

संयम और संस्कृति के अवतार

[पं० श्रीविजय मुनिजी म० साहित्यरत्न]

भारतीय संस्कृति में सन्त जीवन को एक महान् आदर्श रूप में माना जाता है। संयम और संस्कृति की धाराओं में प्रवहमान सन्तजीवन व्यक्ति समाज और राष्ट्र के लिए वरदान रूप सिद्ध होता है।

परम श्रद्धेय महास्थविर श्रीताराचन्दजी म० का जीवन एक महान् पवित्रतम जीवन था। श्रमणसंघ के समस्त सन्तों में वे महास्थविर पदविभूषित थे। हृदय से सरल, बुद्धि से विवेकप्रवण और आचरण से वे कठोर थे। संयम और संस्कृति के संगमस्थल थे।

मैंने अपने जीवन में सर्वप्रथम उनके दर्शन उदयपुर में किए थे। किन्तु वहाँ विशेष परिचय नहीं हो सका। फिर सादड़ी सम्मेलन में और सोजत सम्मेलन में भी उनके मधुर दर्शनों का लाभ मिला।

जयपुर के विगत वर्षावास में और बाद में भी दीर्घकाल तक महास्थविरजी म० की पवित्र सेवा का लाभ मिला।

मानवता के साकार रूप संयम और संस्कृति के समुज्ज्वल प्रतीक, स्नेह, सहानुभूति और मधुरिमा के अवतार तथा सन्त जीवन के उच्चादर्श के रूप में वे सदा काल चिरस्मरणीय बने रहेंगे।

आज वे भौतिक रूप में हमारे सम्मुख नहीं रहे हैं परन्तु सद्गुणों के रूप में आज भी वे हम से विलग नहीं है। वस्तुतः महास्थविरजी म० अपने दिव्य गुणों से आज भी जन-जीवन में पवित्रता के आदर्श हैं।

श्रद्धेय महास्थविरजी म० के योग्यतम शिष्य पंडितरत्न मन्त्री श्रीपुष्कर मुनिजी म० अपने गुरुदेव के जीते जागते महान् संस्मारक हैं। आशा है, भविष्य में आप भी संस्कृति और संयम के समुज्ज्वल प्रतीक के रूप से समाज का नेतृत्व करते रहेंगे।

वर जीवन में नई उमंग, नई तरंग उत्पन्न करता है। वह विषमता के स्थान पर समता की प्रतिष्ठा करता है। बहिर्मुखी चित्त वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाता है। तड़क-भड़क जोश-खरोश को मिटाकर आध्यात्मिक सौन्दर्य की निष्ठा उत्पन्न करता है, एतदर्थ ही महास्थविरजी म० एकान्त शांत स्थान में बैठकर जप करते थे ध्यान करते थे। प्रति दिन ग्यारह बारह घंटे व जप साधना में लगाते थे। जीवन की अन्तिम घड़ियों तक वे जप करते रहे।

साधक की साधना तभी पूर्ण सफल होती है जब उसके जीवन में सरलता होती है। कपटपूर्ण जीवन व्यक्ति के विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण नहीं कर सकता। महान् बनने के लिए उच्चतम आदर्शों का उपदेष्टा बनना आवश्यक नहीं। आवश्यक है उन विचार और उन्नत सिद्धान्तों से जीवन को ओतप्रोत करना मन वाणी और कर्म में समानता करना। महास्थविरजी म० के जीवन की सफलता का यह एक महान रहस्य है कि उनके जीवन में एकरूपता थी एक महानता थी।

जैनागमों में समाधिमरण का जितना सूक्ष्म विवेचन और विशद विश्लेषण किया है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। समाधिमरण जीवन की सफलता का माप दण्ड है। आध्यात्मिक सम्पत्ति का प्रतीक है, अमरत्व के प्रशस्त सिंहासन को प्राप्त करने का एक सुन्दर साधन है। जीवन का यह सुनहला अवसर महान् भाग्य शाली आत्माओं को ही प्राप्त होता है।

राजस्थान की राजधानी जयपुर में उस महासन्त ने कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी के दिन पाँच बजे रुकचाप होते ही संथारा व क्षमत-क्षमापना का प्रतिक्रमण सुना और प्राची से सहस्र रश्मि के उदय होने से पूर्व ही वह महा निर्वाण के पथ पर बढ़ गया। उस महासन्त की इस अवस्था को देखते ही कवि की वाणी गगनमण्डल में गूंज उठी —

> तू चुप है लेकिन सदियों तक,
> गूँजेगी सदाए साज तेरी।
> दुनियाँ को अन्धेरी रातों में,
> ढारस देगी आवाज तेरी॥

श्रद्धा के दो पुष्प

[मुनि श्रीभाईदासजी म०]

जैन संस्कृति व्यक्तिपूजा में नहीं गुण पूजा में विश्वास लेकर चली है। सद्गुणों का आराधक तथा दिव्य गुणों का साधक ही यहाँ पूजित एवं श्रद्धेय

आराध्य देव

[श्री देवेन्द्र मुनिजी म० "साहित्य रत्न"]

हमेशा के लिए जिन्दा नहीं, इस दौरे फानी में।
मेहर बनकर अजब चमके जो अपनी जिन्दगानी में॥

सन्त रत्न ने अपनी आलौकिक प्रतापपूर्ण प्रतिभा और उज्ज्वलतम व्यक्तित्व के द्वारा जिस प्रशस्त पथ का निर्माण किया है, उसका सार्वकालिक महत्त्व है। जिसकी गौरव गरिमा पौर्वात्य ही नहीं प्रतिभासम्पन्न पाश्चात्य दार्शनिक भी गाते रहे हैं।

सन्त राष्ट्र की महान् सम्पत्ति है, जिसकी प्रेरणाशील वाणी ने जन मानस में शान्त रस की शीतल मन्दाकिनी प्रवाहित की। जिसकी आगरुकता ने समत्व की साधना का रसस्रोत बहाया।

महास्थविर श्रद्धेय श्री ताराचन्द्रजी म० ऐसे ही दृष्टि सम्पन्न ध्यारवेता सन्त रत्न थे। जिन्होंने नौ वर्ष की नन्हीं-सी वय में परम पूज्यनीय आचार्य श्री पूनमचन्द्रजी म० के पास दीक्षित होकर अपने आचार विचार के द्वारा अध्यात्म की उच्च भूमिका प्राप्त की। आपने व्यक्तित्व के बल पर साधना के बल पर, भावुक भक्तों को ही नहीं विशिष्ट विज्ञों को भी अपनी ओर आकर्षित किया।

जिस समय आप राजस्थानी भाषा में अत्यन्त परिष्कृत और परिमित शब्दों में शास्त्रीय तत्त्वों के गूढ़तम रहस्य समुद्घाटन करते तो श्रोता झूम उठते थे।

आपकी वक्तृता की धारा अविच्छिन्न रूप से हृषीकेश में बहती हुई बसन्त कालीन धारा के समान थी। उसमें समुद्र की लहरों का तूफानीपन नहीं था और न कर्णकटु शब्दों का प्रयोग ही। आप अपनी बात इस प्रकार कहते थे कि श्रोताओं के कर्ण कुहरों में होकर वह उनके हृदय के अन्तस्तल को छूरा करती थी। कभी-कभी विषय का सरल सरल और सुबोध बनाने के लिए माय' लोक-कथाओं का लोक कहावतों का प्रयोग करते थे। जिसे सुनकर हँसी के फव्वारे छूट जाते थे।

श्रमण का जीवन पूर्ण स्वावलम्बी होता है। उसे स्वतन्त्र स्वतन्त्र होकर ही संयम साधना तप आराधना और मनोरंजन करने में आनन्द अनुभव होता है, परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ कर नहीं। महास्थविरजी म० का जीवन पूर्ण स्वावलम्बी जीवन था। वे पौरुष की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। अपने ही हाथों से अपना प्रत्येक काय करना उन्हें पसन्द था।

भरे थे वे गुण। वे आचार से सरल थे। विचार से सरल और व्यवहार से भी। जहाँ सरलता है वहाँ सरसता भी है और जहाँ सरसता है वहाँ स्वच्छता भी है। उस महान् साधक के जीवन में मैंने तीनों का संगम देखा।

× × × × ×

वे ज्येष्ठ थे। ज्येष्ठता वय से नहीं होती होती है ज्ञान से, ध्यान से, संयम और सदाचार से आत्मिक गुणों के विकास से और विकास ही तो जीवन है न? एवं ज्येष्ठता का मापदण्ड भी तो विकास से ही है। विकासहीन जीवन जो हिमालय होते हुए भी सागर है। सूर्य होते हुए भी पश्चिम है। आकाश होते हुए भी पाताल है। श्रेष्ठ होते हुए भी ज्येष्ठता से वंचित है। तभी तो 'बिहारी' जैसे महाकवि भी अपनी अमर वाणी में उद्घोष कर गये हैं—

बड़े न हूजे गुणन बिन बिरुद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे को कनक, गहनो घड्यो न जाय॥

परन्तु वे जेष्ठ थे गुणों से आत्म विकास से जीवन के अभ्युदय से।

× × × × ×

वे स्थविर थे। शास्त्रों में स्थविर एक नहीं अपितु तीन-तीन प्रकार के बतलाये हैं। (१) वयस्थविर (२) दीक्षास्थविर (३) ज्ञानस्थविर। वे वय स्थविर तो थे ही पर दीक्षा और ज्ञान स्थविर भी थे। संयम के पथ चलते हुए महामार्ग पर वे अपने मुस्तैदी कदम एक नहीं अनेकों चौसठ-चौसठ वर्ष पर्यन्त बढ़ाते रहे।

बाल्यकाल की भोली-भाली रातें। यौवन के जोश और वेगपूर्ण दिवस। तथा प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था के अनुभवी क्षण उस साधना में ही व्यतीत हुए हैं जिसे मोक्ष का सच्चा मार्ग कहा जाता है। जिसे भगवतप्रस्पित सद्धर्म के नाम से आंका जाता है। जिसे 'श्रमण भगवन्त' के नाम से पुकारा जाता है। तब वे दीक्षा स्थविर मी थे यह निर्विवाद है।

वे स्थविर थे ज्ञान में। जिनके मुस्तैदी कदम सतत् साधना के पथ पर बढ़ते रहे हैं। व क्या कभी ज्ञान में पीछे रह सकते हैं? यह प्रश्नचिह्न ही व्यर्थ है। उनका जीवन ज्ञान की उस अनुपम साधना का केन्द्र ही रहा है। तब भला ज्ञान स्थविर होने में क्या शेष रहता है?

\+ + + + +

वे महान् थे। महत्ता के मापदण्ड उनका शरीर या आयु ही नहीं थे। अपितु उनके मनसा वाचा और कर्मणा तीनों ही में महत्ता का दीपदान होता

होता है। गुणविशिष्ट व्यक्ति ही वस्तुतः जन मन में अपना विशेष स्थान बनाता है।

श्रद्धेय महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी म० सद्गुणों की साकार मूर्ति थे। मधुरभाषी मृदुल सद्व्यवहार और निरन्तर सत्त्व चिन्तन करते रहना यह सन्त जीवन का मुख्य ध्येय है। महास्थविरजी म० अपने इन्हीं दिव्यगुणों का संबल एवं पाथेय लेकर अपनी संयमयात्रा में सतत गतिशील रहे हैं।

पुरातन सन्तपरम्परा में वे एक बजोड़ कड़ी तथा अपूरणीय स्थान के अभ्यासक कहे जा सकते हैं।

आज वे अपने पार्थिव शरीर से भले ही हमारे मध्य में न रहे हों परन्तु अपने सद्गुणों से आज भी वे हमें आलोकित कर रहे हैं। तथाभूत दिव्य-पुरुष समाज और राष्ट्र की विशेष थाती रहे हैं।

महास्थविर पदविभूषित श्रद्धेय श्रीताराचन्द्रजी म० के मैंने अनेकों बार दर्शन करने का सौभाग्य अधिगत किया है। जब कभी भी मैं उनके श्रीचरणों में बैठा हूँ तब मुझे वहाँ स्नेह एवं सद्भावना का अमृत लाभ ही मिला है।

मैं अपनी ओर से श्रद्धेय पुरुष के श्रीचरणों में विनम्रभाव से श्रद्धा के दो पुष्प समर्पित करता हूँ।

वे क्या थे ?

[श्री मुनि श्री कीर्तिचन्द्रजी म० 'यश']

उनके विषय में क्या लिखूँ ? कि वे क्या थे ? उनके जीवन की परिभाषा होना कठिन है और कठिन है उस महान् जीवन को चित्रित करना। मैं कोई ऐसा चितेरा भी तो नहीं हूँ। फिर कैसे करूँ चित्रित उस महान् जीवन को ?

× × × × ×

फिर भी कुछ कहना तो है ही। चाहे असफलता ही क्यों न हस्तगत होवे। उनके चरणों में श्रद्धा के कुछ पुष्प तो चढ़ाने ही हैं। फिर भले ही वे गन्धहीन मुर्झाए हुए, अस्त-व्यस्त भिन्न श्रेणी के ही क्यों न हों ?

× × × × ×

वे श्रेष्ठ थे ! श्रेष्ठ ! जी हाँ श्रेष्ठता उनके कण-कण में थी। श्रेष्ठता के वे अनन्य पुजारी थे। पर वह श्रेष्ठता है क्या वस्तु ?

श्रेष्ठता ! हाँ सरलता उच्चता सरसता ये श्रेष्ठता के पर्यायवाची हैं न ? हाँ तो उस महान् साधक के आचार में विचार में और व्यवहार में कूट कूटकर

गरे थे ये गुण। वे आचार से सरल थे। विचार से सरल और व्यवहार से भी। जहाँ सरलता है वहाँ सरसता भी है और जहाँ सरसता है वहाँ रुक्ता भी है। उस महान् साधक के जीवन में मैंने तीनों का संगम देखा।

× × × × ×

वे ज्येष्ठ थे। ज्येष्ठता वय से नहीं होती होती है ज्ञान से, ध्यान से संयम और सदाचार से आत्मिक गुणों के विकास से और विकास ही तो जीवन है न? एवं ज्येष्ठता का आधार भी तो विकास से ही है। विकासहीन जीवन तो हिमालय होते हुए भी सागर है। सूर्य होते हुए भी पश्चिम है। आकाश होते हुए भी पाताल है। श्रेष्ठ होते हुए भी ज्येष्ठता से वंचित है। तभी तो 'बिहारी जैसे महाकवि भी अपनी अमर वाणी में उद्घोष कर गये हैं—

बड़े न हूजे गुणन बिन विरुद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे को कनक, गहनो घड्यो न जाय॥

परन्तु वे श्रेष्ठ थे गुणों से आत्म विकास से जीवन के अभ्युदय से।

× × × × ×

वे स्थविर थे। शास्त्रों में स्थविर एक नहीं अपितु तीन-तीन प्रकार के बतलाये हैं। (१) वयस्थविर (२) दीक्षास्थविर (३) ज्ञानस्थविर। वे वय स्थविर तो थे ही पर दीक्षा और ज्ञान स्थविर भी थे। संयम के उस उज्ज्वल हुए महामार्ग पर वे अपने मुस्तैदी कदम एक नहीं अनेकों चौंसठ-चौंसठ वर्ष पर्यन्त बढ़ाते रहे।

बाल्यकाल की माखी-माखी रातें। यौवन के जोश और वेगपूर्ण दिवस। तथा प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था के अनुभवी क्षण उस साधना में ही व्यतीत हुए हैं, जिसे मोक्ष का सच्चा मार्ग कहा जाता है। जिसे भगवत्प्ररूपित सद्धर्म के नाम से आंका जाता है। जिसे 'श्रमण भगवन्त' के नाम से पुकारा जाता है। तब वे दीक्षा स्थविर भी थे यह निर्विवाद है।

वे स्थविर थे ज्ञान में। जिनके मुस्तैदी कदम सतत् साधना के पथ पर बढ़ते रहे हैं। वे क्या कभी ज्ञान में पीछे रह सकते हैं? यह प्रश्नचिह्न ही व्यर्थ है। उनका जीवन ज्ञान की उस अनुपम साधना का केन्द्र ही रहा है। तब भला ज्ञान स्थविर होने में क्या शेष रहता है?

\+ \+ \+ \+ \+

वे महान् थे। महत्ता के मापदण्ड उनका शरीर या आयु ही नहीं थे। अपितु उनके मनसा, वाचा और कर्मणा तीनों ही में महत्ता का दिग्दर्शन होता

होता है। गुणविशिष्ट व्यक्ति ही वस्तुतः जन मन में अपना विशेष स्थान बनाता है।

श्रद्धेय महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी म० सद्‌गुणों की साकार मूर्ति थे। मधुरवाणी, मृदुल सम्यव्यवहार और निरन्तर तत्त्व चिन्तन करते रहना यह सन्त जीवन का ध्रुव ध्येय है। महास्थविरजी म० अपने इन्हीं दिव्यगुणों का संबल एवं पाथेय लेकर अपनी संयमयात्रा में सतत गतिशील रहे हैं।

पुरातन सन्तपरम्परा में वे एक अजोड़ कड़ी तथा अपूरणीय स्थान के अध्यापक कहे जा सकते हैं।

आज व अपने पार्थिव शरीर से भले ही हमारे मध्य में न रहे हों परन्तु अपने सद्‌गुणों से आज भी वे हमें आलोकित कर रहे हैं। तथाभूत दिव्य पुरुष समाज और राष्ट्र की विशेष थाती रहे हैं।

महास्थविर पदविभूषित श्रद्धेय श्रीताराचन्द्रजी म० के मैंने अनेकों बार दर्शन करने का सौभाग्य अधिगत किया है। जब कभी भी मैं उनके श्रीचरणों में बैठा हूँ तब मुझे वहाँ स्नेह एवं सद्‌भावना का अमृत लाभ ही मिला है।

मैं अपनी ओर से श्रद्धेय पुरुष के श्रीचरणों में विनम्रभाव से श्रद्धा के दो पुष्प समर्पित करता हूँ।

वे क्या थे ?

[ले० मुनि श्री कीर्तिचन्द्रजी म० 'यश']

उनके विषय में क्या लिखूँ ? कि वे क्या थे ? उनके जीवन की परिभाषा होना कठिन है और कठिन है उस महान् जीवन को चित्रित करना। मैं कोई ऐसा चितेरा भी तो नहीं हूँ। फिर कैसे करूँ चित्रित उस महान् जीवन को ?

× × × × ×

फिर भी कुछ कहना तो है ही। चाहे असफलता ही क्यों न हस्तगत होवे। उनके चरणों में श्रद्धा के कुछ पुष्प तो चढ़ाने ही हैं। फिर भले ही वे गन्धहीन मुर्झाये हुए, अस्त-व्यस्त निम्न श्रेणी के ही क्यों न हों ?

× × × × ×

वे श्रेष्ठ थे ! श्रेष्ठ ! जी हाँ श्रेष्ठता उनके कण-कण में थी। श्रेष्ठता के वे अनन्य पुजारी थे। पर यह श्रेष्ठता है क्या वस्तु ?

श्रेष्ठता ! हाँ सरलता उज्ज्वलता सरसता ये श्रेष्ठता के पर्यायवाची हैं न ? हाँ तो उस महान् साधक के आचार में विचार में और व्यवहार में कूट कूटकर

भरे थे ये गुण। वे आचार से सरल थे। विचार से सरल और व्यवहार से भी। जहाँ सरलता है वहाँ सरसता भी है और जहाँ सरसता है वहाँ एकता भी है। उस महान् साधक के जीवन में मैंने तीनों का संगम देखा।

× × × × ×

वे ज्येष्ठ थे। ज्येष्ठता वय से नहीं होती होती है ज्ञान से ध्यान से संयम और सदाचार से आत्मिक गुणों के विकास से और विकास ही तो जीवन है न? एवं ज्येष्ठता का मापदण्ड भी तो विकास से ही है। विकासहीन जीवन वो हिमालय होते हुए भी सागर है। सूर्य होते हुए भी पश्चिम है। आकाश होते हुए भी पाताल है। जेष्ठ होते हुए भी ज्येष्ठता से वंचित है। तभी तो 'बिहारी जैसे महाकवि भी अपनी अमर वाणी में उद्घोष कर गये हैं'—

बड़े न हूजे गुनन बिन बिरुद बड़ाइ पाय।
कहत धतूरे को कनक, गहनो घड्यो न जाय॥

परन्तु वे जेष्ठ थे गुणों से, आत्म विकास से जीवन के अभ्युदय से।

× × × × ×

व स्थविर थे! शास्त्रों में स्थविर एक नहीं अपितु तीन-तीन प्रकार के बतलाये हैं। (१) वयस्थविर (२) दीक्षास्थविर (३) ज्ञानस्थविर। वे वय स्थविर तो थे ही पर दीक्षा और ज्ञान स्थविर भी थे। संयम के उस कठते हुए महामार्ग पर वे अपने मुस्तैदी कदम एक नहीं अनेकों चौसठ-चौसठ वर्ष पर्यन्त बढ़ाते रहे।

बाल्यकाल की भोली-भाली रातें। यौवन के जोश और वेगपूर्ण दिवस। तथा प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था के अनुभवी क्षण उस साधना में ही व्यतीत हुए हैं, जिसे मोक्ष का सच्चा मार्ग कहा जाता है। जिसे भगवत्प्ररूपित सद्धर्म के नाम से आंका जाता है। जिसे श्रमण्य भगवन्ता' के नाम से पुकारा जाता है। तब व दीक्षा स्थविर भी थे यह निर्विवाद है।

वे स्थविर थे ज्ञान में। जिनके मुस्तैदी कदम सतत् साधना के पथ पर बढ़ते रहे हैं। व क्या कभी ज्ञान में पीछे रह सकते हैं? यह प्रश्नचिह्न ही व्यर्थ है। उनका जीवन ज्ञान की उस अनुपम साधना का केन्द्र ही रहा है। तब भला ज्ञान स्थविर ज्ञान में क्या रीत रहता ह?

\+ \+ \+ \+ \+

व महान थ। महत्ता के मापदण्ड उनका शरीर या आयु ही नहीं थे। अपितु उनके मनसा वाचा और कर्मणा तीनों ही में महत्ता का दीपदान होता

रहा है। वे जो विचारते उसे ही वाणी का रूप प्रदान करते। जो वाणी द्वारा प्रकट करते उसे कर्म द्वारा साक्षात् भी कर दिखाते थे। तभी तो वे महान् थे।

+ + + + +

वास्तव में वे क्या थे? उसका चित्रण तो कर ही कौन सकता है? इस विषय में लेखनी जड़ है और कल्पना मौन। फिर भी अटपटे शब्दों में उस महान् आत्मा के प्रति कुछ लिख गया हूँ।

शोकोद्गार

मुनि श्री ने जब महास्थविरजी म० के स्वर्गारोहण के दुःखद समाचारों को सुना तो उन्हें असीम दुःख हुआ। महास्थविरजी म० जैन समाज की जीती जागती प्रतिमा थे। उनके तप और संयम साधना के प्रति हम मुनि हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

—मधुरव्याख्यानी श्रीविजय मुनिजी म० रामगढ़

+ + + + +

यद्यपि महास्थविरजी म० के दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ तथापि उनके जीवन के उज्ज्वल कार्यों की महिमा से मैं अत्यन्त प्रभावित था। उनके आकस्मिक स्वर्गवास से मुझे असीम दुःख हुआ।

—श्रीसोहन मुनिजी म० 'वीर पुत्र' मेवाड़ी

नोट—उक्त श्रद्धांजलियों के अतिरिक्त उपाध्याय श्रीप्यारचन्दजी म० (बम्बई) श्रीकिस्तूरचन्दजी म० (जावरा) श्रीसौभाग्यमलजी म० (इन्दौर) श्रीतिलोकचन्दजी म० (देहली) तथा डा० इन्द्र डा० दौलतसिंह कोठारी (देहली) दानवीर सेठ सोहनलालजी दूगड़ (बीकानेर) आदि विद्वान सन्त व गृहस्थ महानुभावों ने श्रद्धेय महास्थविरजी म० को यथासमय श्रद्धांजलियाँ प्रेषित की थी किन्तु खेद है कि व श्रद्धांजलियाँ गुम हो जाने के कारण हम प्रकट नहीं कर पाये एतदर्थ क्षमाप्रार्थी हैं।

वे महान् थे

[विदुषी महासती श्री सोहनकुँवरजी म०]

कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी की संध्या का समय था मैं आहार पानी करके बैठी ही थी कि एक भाई दौड़ा हुआ आया और बोला कि महास्थविरजी म० का स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया है, उन्होंने आप सतियों को क्षमत क्षमापना करने के लिए बुलाया है, सिर्फ अब २०-२५ मिनिट ही शेष शीघ्रता कीजिए।

ज्योंही ये दुःखद समाचार मैंने सुने त्योंही मैं अपनी सतियों के साथ लाल भवन पहुँची। देखा महास्थविरजी म० पाटे पर लेटे हुए हैं। हृदय की धड़कन बढ़ी हुई है। लकवे का दौरा हो जाने से शरीर सारा कम्प रहा था। पास ही के पाटे पर प्रधानमंत्री श्री मदनलालजी म० विराजित थे और अन्य शिष्य मण्डल उनके चारों ओर खड़ा था। महास्थविरजी म० फरमा रहे थे कि मुझे संलेखना सुनाओ मुझे सहायता दो मेरा अंतिम समय आ गया है।

मैंने वन्दना की गुरुदेव ने फरमाया है कि साहनकुँवरजी तुम आ गई। अच्छा हुआ क्षमत क्षामणा है सभी सतियों को मेरी ओर से शुद्ध हृदय से क्षमत क्षामणा है। मैंने कहा—गुरुदेव ! आपने अपनी दीर्घ साधना में खूब जप किया खूब तप किया है, स्वाध्याय और ध्यान किया है भक्ति और भक्ति की है। आपका जीवन निर्मल है, पवित्र है। गुरुदेव ! मेरी तथा अन्य सतियों की ओर से कभी अविनय आशातना हो गई हो तो वह क्षमा कीजियेगा।"

मैंने देखा उस समय अपार वेदना हो रही थी किन्तु महास्थविरजी म० का ध्यान उस दारुण वेदना की ओर नहीं था। व उस वेदना को कुछ समझ ही नहीं रहे थे। वे फरमा रहे थे कि मुझे संथारा करा दिया न। सभी से क्षमत क्षामणा है। मैंने मन ही मन कहा—

"अहो खन्ती ! अहो मुत्ती ! अहो अजस्स सोमया।"

अधिक समय रुकने का नहीं था मैं अपने स्थान पर लौट आई।

महास्थविरजी म० का चित्र मेरी आँखों के सामने था। रात भर निद्रा नहीं आई माला फेरते-फेरते पौने बज गये। उसी समय एक भाई ने आवाज लगाई कि महास्थविरजी म० का स्वर्गवास हो गया। ये कर्णकटु शब्द ज्योंही सुने त्योंही मेरे हृदय के तार झनझना उठे। मैंने कहा गुरुदेव ! गुरुदेव आपका जीवन धन्य है। कितना महान् था आपका जीवन और कितनी महान् है आपकी मृत्यु। आपने महीनों तक बीमारी की हालत में बिस्तरों में करवटें बदलते हुए मृत्यु प्राप्त नहीं की। जिस साधना पथ पर चले थे उस पर जीवन की अन्तिम घड़ियों तक चलते रहे।

भगवन् ! आपका जीवन यहाँ पर भी प्रकाशमान रहा आगे भी प्रकाशमान रहेगा। देवराज देवेन्द्र के शब्दों में मेरी भी यही भावांजलि है—

"इहंसि उत्तमो भन्ते, पच्छा होहिसि उत्तमो।"

रहा है। वे जो विचारते उसे ही वाणी का बल प्रदान करते। जो वाणी द्वारा प्रकट करते उसे कर्म द्वारा साक्षात् भी कर दिखाते थे। तभी तो वे महान् थे।

\+ \+ \+ \+ \+

वास्तव में वे क्या थे? उसका चित्रण तो कर ही कौन सकता है? इस विषय में लेखनी जड़ है और कल्पना मौन। फिर भी अटपटे शब्दों में उस महान् आत्मा के प्रति कुछ लिखा गया है।

शोकोद्गार

मुनि श्री ने जब महास्थविरजी म० के स्वर्गारोहण के दुखद समाचारों को सुना तो उन्हें असीम दुःख हुआ। महास्थविरजी म० जैन समाज की जीती जागती प्रतिमा थे। उनके तप और संयम साधना के प्रति हम मुनि हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

—मधुरव्याख्यानी श्रीविनय मुनिजी म० रामगंज

\+ \+ \+ \+ \+

यद्यपि महास्थविरजी म० के दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ तथापि उनके जीवन के उज्ज्वल कर्यों की महिमा से मैं अत्यन्त प्रभावित था। उनके आकस्मिक स्वर्गवास से मुझे असीम दुःख हुआ।

—श्रीसोहन मुनिजी म० 'वीर पुत्र' मेवाड़ी

नोट—उक्त श्रद्धांजलियों के अतिरिक्त उपाध्याय श्रीप्यारचन्दजी म० (बम्बई) श्रीकिस्तूरचन्दजी म० (जावरा) श्रीसौभाग्यमलजी म (इन्दौर) श्रीत्रिलोकचन्दजी म (देहली) तथा डा० इन्द्र चा दौलतसिंह कोठारी (देहली) दानवीर सेठ सोहनलालजी दूगड़ (बीकानेर) आदि विद्वान सन्त व गृहस्थ महानुभावों ने श्रद्धेय महास्थविरजी म० को यथासमय श्रद्धांजलियाँ प्रेषित की थी किन्तु खेद है कि वे श्रद्धांजलियाँ गुम हो जाने के कारण हम प्रकट नहीं कर पाये एतदर्थ क्षमाप्रार्थी हैं।

वे महान् थे

[विदुषी महासती श्री सोहनकुंवरजी म०]

कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी की संध्या का समय था मैं आहार पानी करके बैठी ही थी कि एक भाई दौड़ा हुआ आया और बोला कि महास्थविरजी म० का स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया है, उन्होंने आप सतियों को क्षमत क्षमापना करने के लिए बुलाया है, दिन अब २०-२५ मिनिट ही शेष शीघ्रता कीजिए।

हमेशा के लिये जिन्दा रही इस दौरे फानी में।
मेहर बन के चमक चमके अपनी जिन्दगानी में।।

श्रमणसंघ के महाप्राण पूज्य गुरुवर्य श्रद्धेय श्रीताराचन्दजी म० की जीवन कहानी भी कुछ इसी प्रकार की थी। वे आये तो संसार में चमकते हुए और संयम जीवन की सुदीर्घ साधना के मधुर क्षण बिताए तो वही चमक वही दमक और वही आब। और यहाँ से आमरण दीक्षा समाप्त कर गये तब हमारे सामने एक नया प्रकाश फेंकते हुए गये।

अब मैं उस महापुरुष के उपकारों पर एक विहंगम दृष्टि डालती हूँ तो सहसा हृदय उनके उपकारों एवं कृपाओं से भाभिभूत हो उठता है। क्या उन असीम उपकारों के सम्मुख हमारा तुच्छ जीवन उऋण बन सकेगा? यही प्रश्न हृदय में निरन्तर ठाठें मारता रहता है।

हमारे गुरुदेव का जीवन महान् था विराट था उनकी छत्रछाया में हम दीपकवत् रह सके। ज्ञान-विज्ञान दान के वारि से हमें अभिषिक्त किया तथा संयम साज से संयमी जीवन को समुन्नत बनाया। आज वह विराट आत्मा हमारे सम्मुख नहीं रहा। क्रूर काल के थपेड़े ने हमारे जीवन से पृथक् कर दिया।

गुरुदेव! आप हमें छोड़ के चले गये किन्तु आपकी जीवनकहानी आज भी तप त्याग और संयम की प्रबल प्रेरणा हमारे जीवन को दे रही है और युग-युग तक देती रहेगी।

गुरुदेव महान् थे!

[महासती श्रीकुसुमवतीजी म० सिद्धान्ताचार्य]

महास्थविरजी म० हमारी समाज के महान् संत विचारक व प्रतिभावान सन्त थे। आपका त्याग आपका वैराग्य आपका जप तप व संयम साधना जन जन के मन में प्रेरणा का पीयूषस्रोत प्रवाहित करता रहा है।

जीवन की सान्ध्य वेला में भी आप भी दिन में बिना कारण सोते नहीं थे। एक क्षण भी निरर्थक जाने नहीं थे—'समयं गोयम मा पमायए' का सिद्धान्त आपके जीवन का मूल सिद्धान्त था।

आपके सरल व सरस स्वभाव से मैं अत्यधिक प्रभावित हुई। गुरुदेव! तुम महान् थे! हमें महान् बनाने के लिये प्रेरणा प्रदान करते रहे। हम तुम्हारी दी हुई प्रेरणा पर चलें।

गुरुदेव का आशीर्वाद

[विदुषी महासती श्री चमनकुंवरजी म०]

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य श्री ताराचन्द्रजी म० के स्वर्गवास से मुझे कितना दुःख हुआ इस असीम व्यथा को व्यक्त करने के लिए मैं किन शब्दों का प्रयोग करूँ। मेरी बुद्धि यह काम नहीं कर रही है कि गुरुदेव के सम्बन्ध में क्या लिखूँ और क्या नहीं। वे कितने महान थे। कितने शांत थे। कितने गंभीर थे। उनका जीवन त्याग वैराग्य के रंग से पूर्ण भीगा हुआ था। उनकी असीम कृपा का वर्णन मेरी यह तुच्छ बुद्धि नहीं कर सकती। गुरुदेव! आपका आशीर्वाद ही हमारे संयमी जीवन का परम साज बने। इस मंगल कामना के साथ विराम लेती हूँ।

जीवन एक कहानी है।

[विदुषी महासती श्रीशीलकुंवरजी म०]

जीवन एक कहानी है। मानव जिस दिन संसार में आता है, उसी दिन से उसकी जीवन कहानी की शुरुआत हो जाती है। यह कहानी यहाँ विकास पाती है और जिस दिन वह चला जाता है उसी दिन उसकी कहानी भी समाप्त हो जाती है।

यह तो साधारण जन-जीवन की बात हुई किन्तु महापुरुष की जीवन कहानी तो कुछ विलक्षण ही होती है। महापुरुष आते हैं तो अपनी जीवन-कहानी की भूमिका तैयार करके आते हैं। वे उन्हें यहाँ विकास देते हैं और यहाँ से विदा होते हैं तो कहानी समाप्त करके ही नहीं विदा होते हैं अपितु अपनी कहानी का प्रभाव जन जीवन के मन-मस्तिष्क पर छोड़ कर जाते हैं।

जिस प्रकार नदी के प्रवाह का लक्ष्य विराट समुद्र में मिलना ही नहीं होता किन्तु अपने आसपास के शुष्क प्रदेश को भी हरा-भरा एवं सरसब्ज बना देता है। महापुरुषों का जीवन भी इसी प्रकार का होता है, वे अपने जीवन से दूसरों के जीवन को भी प्रभावान्वित करते हैं।

महापुरुष जब तक धरातल पर रहते हैं तब तक ज्योतिर्मय होकर रहते हैं वे आध्यात्मिक प्रकाश से स्वयं चमकते हैं और दूसरों को भी चमकाते हैं। उनका जीवन श्रवण करने या अध्ययन करने की चीज नहीं है, अपितु उनके सद्भावों से प्रेरणा की सुलगती हुई चिनगारी लेकर जीवन का विराट रूप देने के लिये है। किसी उर्दू शायर ने ठीक ही कहा है—

संथार किया वह किस से अज्ञात है? आबालवृद्ध सभी उनकी प्रतिभा से प्रभावान्वित थे। वह हँसता हुआ मुखड़ा दिव्य भाल उन्नत नासिका प्रेम और पीयूष बरसाने वाले नेत्र लम्बा कद गेहूँ वर्ण, गठीला सुगठित शरीर। जिसको देखकर मानव आकर्षित हुए बिना नहीं रहता था। जैसा आपका सुन्दर शरीर था उससे भी बढ़कर सरस मधुर एवं कोमल स्वभाव था।

सरलता सरसता और उदारता के गुण आपके जीवन में ओतप्रोत थे। उनके व्यक्तित्व में प्रभाव था वाणी में ओज था विचारों में एकता और संगठन की लगन थी। वह समाज का कर्मठ योगी जहाँ भी गया वहीं समा शांति और प्रेम का माधुर्य बरसाता रहा। आज वह महान् आत्मा हमारे सम्मुख नहीं रही किन्तु उसके तप और त्याग का उज्ज्वल प्रकाश अब भी हमारे अन्तस्य चक्षुओं के सामने चमक रहा है और युग-युग तक चमकता रहेगा।

एक महान् क्षति

[महासती श्री विमलकुमारीजी 'प्रभाकर']

परमश्रद्धेय महास्थविरजी म० वास्तव में समाज के उज्ज्वल चमकते तारे थे। उनकी अलौकिक प्रतिभा से कौन अपरिचित है? वे आदर्श संयमी एवं सरल स्वभावी महापुरुष थे। उस महामानव ने केवल दस-बीस वर्ष ही नहीं अपितु ६४ वर्ष तक ज्ञान दर्शन और चारित्र की ज्योति जगाई। इस ज्योति से ही उनका महान् जीवन चमक उठा था। उसमें एक आदर्श गुण था और वह गुण यह था कि वे ज्येष्ठ-कनिष्ठ सभी सन्त व सतियों के प्रति हार्दिक स्नेह सद्भावना रखते थे। प्रेम और वात्सल्य के द्वारा सबको अपने अनुकूल बना लेते थे।

उनके असामायिक एवं आकस्मिक निधन से महान् क्षति हुई जिसकी पूर्ति निकट काल में होना असंभव है।

प्रथम दर्शन-अंतिम दर्शन

[महासती श्री चन्दनबालाजी 'सिद्धान्त शास्त्री']

मैं सन् १९५६ में गुरुदेव के दर्शनार्थ आपश्रीजी का चपावास समाप्त कर सद्गुरुणी श्री सौभाग्यकुँवरजी म० के साथ जयपुर गई। मैंने वहाँ उस महापुरुष के दीक्षा के पश्चात् प्रथम दर्शन किये थे किन्तु इस दर्शन को कौन जानता था कि प्रथम दर्शन ही नहीं अन्तिम दर्शन है।

गुरुदेव ने जो मुझे शिक्षाएँ दी आशाएँ दी वे मेरे जीवन के लिए कितनी महान् हितकर हैं। उन्होंने कहा—अभी तुम्हारी बाल्यावस्था है, जैसा जीवन

वह चमकता हुआ तारा था।

[महासती श्रीपुष्पवतीजी म० साहित्यरत्न']

सदनं प्रसादसदनं, सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं, येषां केषां न ते वन्द्याः॥

महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी म० हमारी समाज के चमकते हुए नक्षत्र थे। उनका कुसुम से भी कोमल मक्खन से भी मृदु, सरल व सरस स्वभाव से जन मन प्रभावित था। वे श्रमणसंघ के सब से बड़े सन्त थे किन्तु उन में बड़प्पन का अभिमान नहीं था घमण्ड नहीं था। वे अपने को सब से छोटा कहते थे।

मैंने देखा था उस महापुरुष के जीवन में त्याग और वैराग्य का निर्मल प्रकाश। और देखी थी कथनी और करणी में एकरूपता एकतानता और एकनिष्ठा।

आज आपका वह भव्य भौतिक शरीर हमारे सामने नहीं किन्तु कवि कालीदास की काव्यमयी भाषा में आपका यश शरीर विद्यमान है। यशः शरीरेणाद्यापि जीवति।

गुरुदेव! आपके जैसे अनुभवी कर्मयोगी एवं प्रौढ विचारक महासन्त की चिरकाल तक छत्र-छाया की आवश्यकता थी किन्तु वह न मिल सकी। गुरुदेव! आपके शुभाशीर्वाद से हम खूब फलें खूब फूलें और अपने जीवन को संयम-मय बनावें।

राष्ट्र की महान् सम्पत्ति-सन्त

[महासती श्री कौशल्याकुमारीजी शास्त्री']

सन्त राष्ट्र की महान सम्पत्ति है। जब कभी देश या राष्ट्र में उथल-पुथल मचती है, एकान्ति की बिजलियाँ चमकती हैं तो उस समय सन्त शांति का अग्रदूत बन कर जनसमाज का प्रतिनिधित्व करता है। उन्हें अपनी पीयूषवर्षी वाणी से शांति का राजमार्ग प्रदर्शित करता है। मयाक्रान्त जनता को समत्व और अमरत्व का पाठ पढ़ाता है। इस दृष्टि से हम सन्त को विश्व की विभूति भी कह सकते हैं।

श्रद्धेय गुरुवर महास्थविर श्री ताराचन्द्रजी म० एक सच्चे कर्मठ योगनिष्ठ सन्त थे। उनकी तपोपूत वाणी से जैन समाज में जिस अभिनव जागृति का

संचार किया वह किस से अज्ञात है? आबालवृद्ध सभी उनकी प्रतिभा से प्रभावान्वित थे। वह हँसता हुआ मुखड़ा दिव्य भाल उन्नत नासिका प्रेम और पीयूष बरसाने वाले नेत्र लम्बा कद, गेहुँ वर्ण गिट्ठा सुगठित शरीर। जिसको देखकर मानव आकर्षित हुए बिना नहीं रहता था। जैसा आपका सुन्दर शरीर था उससे भी बढ़कर सरस मधुर एवं कोमल स्वभाव था।

सरलता सरसता और उदारता के गुण आपके जीवन में ओतप्रोत थे। उनके व्यक्तित्व में प्रभाव था वाणी में ओज था विचारों में एकता और संगठन की लगन थी। वह समाज का कर्मठ योगी जहाँ भी गया वहीं क्षमा शांति और प्रेम का माधुर्य बरसाता रहा। आज वह महान् आत्मा हमारे सम्मुख नहीं रही किन्तु उसके तप और त्याग का उज्ज्वल प्रकाश अब भी हमारे अन्तस्थ चक्षुओं के सामने चमक रहा है और युग-युग तक चमकता रहेगा।

एक महान् क्षति

[महासती श्री विमलकुमारीजी 'प्रभाकर']

परमश्रद्धेय महास्थविरजी म० वास्तव में समाज के उज्ज्वल चमकते तारे थे। उनकी अलौकिक प्रतिभा से कौन अनभिज्ञ है? वे आदर्श संयमी एवं सरल स्वभावी महापुरुष थे। उस महामानव ने केवल दस-बीस वर्ष ही नहीं अपितु ६४ वर्ष तक ज्ञान दर्शन और चारित्र की ज्योति जगाई। इस ज्योति से ही उनका महान् जीवन चमक उठा था। उसमें एक आदर्श गुण था और वह गुण यह था कि वे ज्येष्ठ-कनिष्ठ सभी सन्त व सतियों के प्रति हार्दिक स्नेह सद्भावना रखते थे। प्रेम और वात्सल्य के द्वारा सबको अपने अनुकूल बना लेते थे।

उनके असामायिक एवं आकस्मिक निधन से महान् क्षति हुई जिसकी पूर्ति निकट काल में होना असंभव है।

प्रथम दर्शन—अंतिम दर्शन

[महासती श्री चन्दनबालाजी 'सिद्धान्त शास्त्री']

मैं सन् १९५६ में गुरुदेव के परामर्श से माधवपुरा का चपावास समाप्त कर सद्गुरुणी श्री शीलकुँवरजी म० के साथ जयपुर गई। मैंने वहाँ उस महापुरुष के दीक्षा के पश्चात् प्रथम दर्शन किये थे किन्तु इस दर्शन को कौन जानता था कि प्रथम दर्शन ही नहीं अन्तिम दर्शन है।

गुरुदेव ने जो मुझे शिक्षाएँ दी आज्ञाएँ दी वे मेरे जीवन के लिए कितनी महान् हितकर है। उन्होंने कहा—अभी तुम्हारी बाल्यावस्था है, जैसा जीवन

वह चमकता हुआ तारा था।

[महासती श्रीपुष्पवतीजी म० 'साहित्यरत्न']

वदनं प्रसादसदनं, सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं, येषां केषां न ते वन्द्याः॥

महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी म० हमारी समाज के चमकते हुए नक्षत्र थे। उनके कुसुम से भी कोमल मक्खन से भी मृदु, सरल व सरस स्वभाव से जन मन प्रभावित था। वे श्रमणसंघ के सब से बड़े सन्त थे किन्तु उन में बड़प्पन का अभिमान नहीं था घमण्ड नहीं था। वे अपने को सब से छोटा कहते थे।

मैंने देखा था उस महापुरुष के जीवन में त्याग और वैराग्य का निर्मल प्रकाश। और देखी थी कथनी और करणी में एकरूपता एकतानता और एकनिष्ठा।

आज आपका वह भव्य भौतिक शरीर हमारे सामने नहीं किन्तु कवि कालीदास की काव्यमयी भाषा में आपका यशः शरीर विद्यमान है। यशः शरीरेणाद्यापि जीवति।

गुरुदेव! आपके जैसे अनुभवी अग्रदृष्टा एवं प्रौढ़ विचारक महासन्त की चिरकाल तक छत्र-छाया की आवश्यकता थी किन्तु वह न मिल सकी। गुरुदेव! आपके शुभाशीर्वाद से हम खूब फलें खूब फूलें और अपने जीवन को संयम मय बनावें।

राष्ट्र की महान् सम्पत्ति-सन्त

[महासती श्री कौशल्याकुमारीजी 'शास्त्री']

सन्त राष्ट्र की महान सम्पत्ति है। जब कभी देश या राष्ट्र में उथल-पुथल मचती है, उत्क्रान्ति की बिजलियाँ चमकती हैं तो उस समय सन्त शांति का अग्रदूत बन कर जनसमाज का प्रतिनिधित्व करता है। उन्हें अपनी पीयूषवर्षी वाणी से शांति का राजमार्ग प्रदर्शित करता है। भयाक्रान्त जनता को समत्व और अमरत्व का पाठ पढ़ाता है। इस दृष्टि से हम सन्त को विश्व की विभूति भी कह सकते हैं।

श्रद्धेय गुरुवर महास्थविर श्री ताराचन्द्रजी म० एक सच्चे कमठ योगनिष्ठ सन्त थे। उनकी तपोपूत वाणी से जैन समाज में जिस अभिनव जागृति का

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान ।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
वही होगी कविता अनजान ॥

उज्ज्वल बनाना चाहोगी वैसा बनेगा एतदर्थ खूब अध्ययन कर ज्ञानदर्शन चरित्र से जीवन चमकाओ।" मुझे आज गुरुदेव के वे मधुर वाक्य रह-रह कर स्मरण आरहे हैं।

वज्रपात

महास्थविर श्री ताराचन्द्रजी म० के स्वर्गवास से जैन समाज शोक मग्न। स्थानकवासी समाज का क्रान्तिकारी सितारा अस्त। श्रमण संघ उनको खोकर दरिद्र हो गया।

—महासती श्री सज्जनकुंवरजी म०

× × × × ×

महास्थविरजी म० के स्वर्गवास के समाचारों से सारे गांव में छमाया छा गया। असामयिक स्वर्गवास से हृदय को कठोर आघात लगा। समाज अनमोल रत्न से वंचित हो गया।

श्री दीपाजी म० सिवाना (मारवाड़)

॥ ताइय सह छक्कम ॥

[ले० मुनि बालचन्द्र श्रमण 'बाल' काव्यतीर्थ साहित्यसूरि]

अमरसीह-मुणीस-गच्छेसि को सुगुरु-पुवियमहत्तमुणिक्किमओ।
विणयध-सासणओ-नयणीकओ समणसंघ-सुमाणियतारओ ॥ १ ॥

—जैनाचार्य श्रीअमरसिंहजी म० (मारवाड़ी) की सम्प्रदाय के पूज्य-गुरुदेव श्रीपूनमचन्दजी म० के करकमलों से दीक्षा ग्रहण की और गुरु आज्ञा का सम्यग् आराधन कर महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी म० नभस के तारे समान श्रमणसंघ में सम्मानित हुए।

बहुगणो जिनसासणअंबरे अगणिआ इह संति हि तारया।
गुणविसेसयओ सुकइन्जइ, तुम समो न हि दीसइ तारओ ॥ २ ॥

—जिन शासन रूप आकाश मण्डल में अनेक तारे चमक रहे हैं परन्तु इन गुणों की विशेषता से आपकी समानता करने वाला दूसरा कोई तारक नहीं है।

कुसुमचन्दब-आसि सुहावओ नवरि तारअ ग्गु इह नामओ।
न बहिरागमिओ अह मंतसि गुरुवरं पि हु तुं ठिइमत्तवं ॥ ३ ॥

—गुणों के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से आप चन्द्र थे परन्तु नाम की अपेक्षा आप तारक के रूप में ही प्रख्यात हुए। इस प्रकार आंतरिक जीवन गुरुतर होते हुए भी आपने संसार में ख्याति प्राप्त करने का जरा भी प्रयत्न नहीं किया।

सुरगई ते पमुहा इह तारया गुरुवरो हुइ तेसि सुसीसगं।
समुवलद्ध विरायइ मंतिसु पवखियय परमा इअ तित्थया ॥ ४ ॥

—इस संसार में गंगा-गोदावरी आदि कई तीर्थ तारक माने गये हैं किन्तु उन सब तीर्थों का शिरताज पुष्कर (पं० रत्न श्रीपुष्कर मुनिजी म०) जो आपकी चरण रज पाकर श्रमणसंघ के मन्त्री पदवक्र में शोभायमान हैं। अस्तु इससे आपकी सर्वोच्च तारकता अवलिवित है।

सुसुयमेव सुणएआई नाणओ सुसुयओ पिय नाणमहो पुण।
बहुविहा जिणतत्तपरूविआ नयणओ जयसीह सुसंसिआ ॥ ५ ॥

—आगम में कहा है—सम्यग ज्ञान से सम्यक् श्रुत की प्राप्ति होती है और सम्यक श्रुत से सम्यग् ज्ञान का प्रकाश उदित होता है। इस तरह नाना प्रकार जिनतत्त्व प्ररूपणा 'ज्ञान" नामक माता के सुपुत्र होकर आपने संसार को सुशरण दिया।

सुक्कसमाउरसीइ तिही हुए मरण-जम्मणा-कम्मणि णिवहणा ।
पयडियं किस एम महप्पणो उदयमत्थमणं मुय हेउयं ॥ ९ ॥

—आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को आपने मानव जीवन में पदार्पण किया और कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी को स्वर्ग की ओर महा प्रयाण किया। इस प्रकार आगम की भाषा में यह महापुरुष उदय में अवतरित हुआ और उदयवेला में ही अस्त होकर विश्व को सर्वोदय का सन्देश दे गया अतः आपका उदय और अस्त दोनों प्रमोद कारक हुए।

— —

धर्मध्वज

[मरुधर केसरी पं० रत्न प्रवर्तक मंत्री श्रीमिश्रीमलजी म०]

छप्पय—

धर्मध्वज गुन कुंज पुंज तन तिम विभिषवर ।
निरख्यारस मधि हृदय धार तमहर मनु दिनकर ॥
शान्त छवि रमणीय साध्वी ससत मरम पर ।
त्यागी अनगार सघना साधक सत्वर ॥
जैपुर में विरछा गया अमर शाल अरविन्द गुनी ।
पुष्कर के उर धीर कर गोविन्द ताराचन्द मुनि ॥

दोहा—

जय मत पुनरपि ज्ञान वृद्ध, स्थानकवासी स्तम्भ ।
जयपुर में आठो रमो स्वर्गो बीच विहंग ॥
मुँह पर नित मुस्कान थी चंचलता तन मात ।
होड़ कर क्या युवक भी वाणी का मिठियास ॥
भूल नहीं अधिकार की व्याख्या की अनपार ।
पीपी ढेग्री दाखाँ पक्षिहारी परणार ॥
बचपन सिद्ध मुनि श्रेष्ठ ढिग रमा सुभागम गाथ ।
उनके आशीवाद स रही विजय तन आप ॥
मेल पणो महिमा घणी विचरया देश विदेश ।
सन्त सती श्रावक सब करत याद हमेश ॥
मर्यादासि मुनि मधुर थी है अर्पित मुनि इश ।
आगम आर शांति मरे सिद्धि विरचा शीश ॥

—

॥ ताइय सइ छक्कम ॥

[ले० मुनि लालचन्द श्रमण 'लाल' कम्मतीर्थ साहित्यसूरि]

अमरसीह-मुणीस-गणंसि जो सुगुरु पुप्फिमहत्थसुदिक्खिओ।
विणय-सासणओ-नयणीकओ समणसंघ-सुमाणिअतारओ ॥ १ ॥

—जैनाचार्य श्रीअमरसिंहजी म० (मारवाड़ी) की सम्प्रदाय के पूज्य-गुरुदेव श्रीपुष्पचन्द्रजी म० के करकमलों से दीक्षा ग्रहण की और गुरु आज्ञा का सम्यग् आराधन कर महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी म० नयन के तारे समान श्रमणसंघ में सम्मानित हुए।

अणुगणो जिनसासणमंडले अगणिआ इह संति हि तारया।
गुणविसेसणओ तुअहिग्गइ, तुम समो न हि दीसइ तारओ ॥ २ ॥

—जिन शासन रूप आकाश मण्डल में अनेक तारे चमक रहे हैं परन्तु उच्च गुणों की विशेषता से आपकी समानता करने वाला दूसरा कोई तारक नहीं है।

कुमुयबन्धव-आसि सुहावओ, नवरि तारय तु इह नामओ।
न बहिरागमिओ वह मंतसि गुरुवरं पि हु तुं ठिइमत्थवं ॥ ३ ॥

—गुणों के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से आप चन्द्र थे परन्तु नाम की अपेक्षा आप तारक के रूप में ही प्रख्यात हुए। इस प्रकार आंतरिक जीवन गुरुतर होते हुए भी आपने संसार में ख्याति प्राप्त करने का जरा भी प्रयत्न नहीं किया।

सुरनई ते पमुहा इह तारया गुरुवरो तुह तेसि सुसीसवं।
समुवलद्ध विरायइ मंतिसु पयक्खिआ परमा इव तित्थमा ॥ ४ ॥

—इस संसार में गंगा-गोदावरी आदि कई तीर्थ तारक माने गये हैं किन्तु उन सब तीर्थों का शिरताज पुष्कर (पं० रत्न श्रीपुष्कर मुनिजी म०) जो आपकी चरण रज पाकर श्रमणसंघ के मन्त्री पदवाज में शोभायमान है। अस्तु इससे आपकी सर्वोच्च तारकता जगद्विदित है।

सुसुअमेव सुयाणजई मायओ, सुसुयओ थिय नायमहो सुया।
बहुविहा जिणतत्तपरूविआ अवयओ जयसीह सुवंसिआ ॥ ५ ॥

—आगम में कहा है—सम्यग् ज्ञान से सम्यक श्रुत की प्राप्ति होती है और सम्यक् श्रुत से सम्यग् ज्ञान का प्रकाश उदित होता है। इस तरह नाना प्रकार जिनतत्त्व प्ररूपणा 'ज्ञान' नामक माता के सुपुत्र होकर आपने संसार को सुशोभित किया।

इस सृष्टि के महाप्रभु थे आप आप थे भाग्य विधाता।
श्रीचरणों से जुड़ा हुआ सबका मधुर-मधुरतम नाता॥
पर काली का यह विधान है, हर आने वाला जाता है।
लुट जाता सौरभ बसन्त का खिला फूल मुरझा जाता है॥
इस सृष्टि के मध्य की भी काल निशा आई प्रलयंकर।
इस सृष्टि के ऊपर दुःख की छायायें आ गईं भयंकर॥
पर सन्तों की दुनियां का तो ये कानून निराला-सा है।
शोक तिमिर भी यहाँ बदल कर बनता शीघ्र उजाला-सा है॥

× × × ×

अस्तु! विदा होते जीवन से कुछ प्रकाश किरणें अपना कर।
हम भी हों अब विदा हृदय की श्रद्धा के फूल चढ़ा कर॥

जीवन दर्शन

['साहित्य रत्न' श्री गणेश मुनिजी म०]

भारत की इस पुण्य धरा पर, तारक गुरु ने जन्म लिया।
आश्विन शुक्ला चतुर्दशी के शुभ दिन को कृत-कृत्य किया॥
राज उदयपुर के अन्तर्गत ग्राम बम्बोरा है सुन्दर।
गगन-चुम्बिनी शैल-श्रेणियों से वेष्टित है परम सुघर॥
श्री शिवलाल जनक थे उनके ज्ञानकुँवर जननी थी।
जनके पुण्य उदय से उज्ज्वल मरुपाट की अवनी थी॥
नव वर्षात्मक कोमल वय में त्यागे सांसारिक सुख साज।
'पूनम' गुरु से दीक्षा लेकर पहना संयम का शुभ ताज॥
यन के विनयशील गुरुवर ने सत्य ज्ञान का बरसाया।
विनय मूल है सभी धर्म का मीठा और सिखलाया॥
घूम रहा विदेशों में गुरु त्यागी और वैरागी बन।
किये उपकार गये जहाँ भी जन जन के तारक बन॥
दौड़-दौड़ कर आते गुरु के चरणों में हर्षित भविजन।
कोमल मृदु वानी का सुनकर हो जाते थे गद्‌गद मन॥
ध्यान लगाते थे प्रभुवर का, गुरु निशादिन हो निश्चल।
हो समाधि में लीन निरन्तर, जप करते थे प्रति पल॥

लो जाने वाला जाता है।

[पण्डितप्रवर श्रीरामप्रसादजी म०]

जीवन की सुविशाल डगर पर राही एक बढ़ा था आगे।
न जाने संस्कार कौन से अन्तर में सहसा जागे॥

दुनियाँ की खुशियों को भूला भूला निज परिजन का क्रन्दन।
फिर भविष्य की आशाओं में, तोड़ा फिर अतीत का बन्धन॥

है विनाश की धरती पर ही सृजन अङ्कुरित पुष्पित होता।
पतझड़ से सूखे उपवन में ही, है वसन्त भी सुरभित होता॥

इस जीवन का सब कुछ तज कर, उस जीवन का सब कुछ पाना।
यही साधना मन्त्र लिये वह, बढ़ा साधना का दीवाना॥

मुनि मर्यादाओं के तट में बहती थी अब भी जीवन धारा।
उत्कण्ठा से वह पक्षी, चूमने सागर का दूरस्थ किनारा।

जीवन के झंझावातों में खड़ा रहा ध्रुव तारा बन कर।
अडिग रहा संकट संकट में अपना आप सहारा बन कर॥

इतना लम्बा समय बिताया संयम पथ पर चलते चलते।
जीवन की संध्या हो आई साम्य सूर्य के ढलते ढलते॥

× × × × ×

एक समय इस महापुरुष को मैंने अपनी आँखों देखा।
अब क्यों न कुछ चित्रित करदूँ अपने ही अनुभव की रेखा॥

मैंने देखा वह विचित्र-सा कोई एक पुराण पुरुष था।
जो जर्जरित बुढ़ापे में भी अपने उल्लासों में खुश था॥

मैंने देखा उनके मान्द्य से अंग-अंग थी बूढ़े तन में।
अथक आत्मा है विराजती तरुण चेतना अन्तर्मन में॥

मैंने देखा मुख मण्डल पर क्या आभाएँ फूट रही हैं।
दृढ़ हड्डियों के भीतर से क्या तरुणाई फूट रही है॥

मैंने देखा सरल हृदय में तरल स्नेह अति लहराता
यहीं स्नेह पा धन्य हो गये मन्त्री मुनि श्री पुष्करजी हैं।
हीरा मुनि देवेन्द्र मुनि भी श्री गणेशमुनी मुनिवर भी हैं॥

महास्थविर अभिनायक जिसके ऐसी वे मुनि पंचमती हैं।
एक सरसता से आप्लावित अभिनव सृष्टि स्नेहमयी है॥

तारक पद

[मुख्य शिष्य मुनि रूपचन्दजी म० 'रजत']

मनहर छन्द—

मैनन को तारो प्यारो जेठ-को दुलारो सारो
भव्यन को रखवारो भारी ध्यान धारो थो।
शान्ति हू को सरोवर स्नेह को सदन भव
मोहादि ममत हर आत्म दमनारो थो॥
साम्य भव काट भव दुगुनी अनन्त वरा
'पूनम' को पटधर धर नभ तारो थो।
स्थविर भूषित गुनी 'तारेन्दु' मुनीन्द्र गुनी
पुष्कर-को हिय हार जैन का सितारो थो॥

दुर्मिल-सवैया—

नर शान्त छटा लखि आप तणी मन हर्षित होवत देख परी।
मुख लोचन सौम्य दिखावत थे मधु वाक्य प्रसारत सुख लरी॥
उपकारक तारक भव्य भणी भव टारक धारक पाप हरी।
मुनि तार' पदांबुज भावांजलि मुनि 'रूप' चढ़ावत मोद भरी॥

दोहा—

जैपुर में जातो रह्यो तारा का परकाश।
पुष्कर हीरे हेरियो पर मिलियो नहीं पास॥
अमरगच्छ तज अमरपद अर्जित करियो नाह।
आतम सुख अधिको लह्यो, रूप कामना याह॥

तारक छन्दावलि

[पण्डित शोभालालजी [illegible], जोधपुर]

❁ शार्दूल विक्रीडित छन्द ❁

वीरों में इस मरुधरा-महि का ऊँचा-घना स्थान है,
आत्मा का जिसकी अनेक कवियों ने भी किया गान है।
पैदा धीर व वीर रत्न जिनकी एक जो खान है
माता भारत का सदैव जिसका देता बड़ा मान है॥१॥

अन्तिम घड़ियों में संथारा शुद्ध भाव से ग्रहण किया।
नश्वर देह, जगत को तज कर, अमरकापुरी प्रस्थान किया॥

नहीं जानते थे हम गुरुवर सहसा ही यों चल दोगे।
अपने प्रिय शिष्यों को सेवा का भी अवसर नहीं दोगे॥

जिस पथ के तुम पथिक बने वह सबको है अपनाना।
कुछ भी सेवा कर न सके हमें यही रहा पछताना॥

गुरुवर तुमने जैन धर्म का जो उद्यान लगाया।
आज तुम्हारे सुधा वचन के वारि बिना कुम्हलाया॥

सत्य अहिंसा निमल जल से तुमने इसे बढ़ाया।
सुरभित सदा रहेगा यश से तेरा बाग लगाया॥

गुरु तुम्हारे उपकारों से उऋण न हम हो सकते।
चरणों में श्रद्धा कुसुमों की अञ्जलि अर्पित करते॥

सन्त सुमन

[श्री सौभाग्य मुनिजी जैन सिद्धान्ताचार्य 'कुमुद' मेवाड़ी]

सन्त सुमन की फुलवारी का वह सुपुष्प मनोहर था।
ज्ञान पराग महक मन निर्मल सौम्य सुधा का आगर था॥

प्रति पल नई मुस्कान लालिमा करती क्रीड़ा आनन पे।
क्रिया कलाप सहजाकर्षक, स्फूर्तिदायक पावन थे॥

मोहकता की मधुर शक्ति शृंगार बनी थी जीवन का।
जन समाज बन मधुप बसी से आश्रय लेते चरणन का॥

वह साधारण पुष्प नहीं था 'तारक' पद अलंकृत था।
उसकी छोटी थिरकन में भी तारकता स्वर अंकित था॥

मधुर महक मानव को देते भौतिक युग पहारों में।
आया, पुन लुप्त हुआ वह, सन्त सुमन के हारों में॥

× × × + +

कोटि कोटि जन भौरों के, गुण गुञ्जनमय शृंगार किये
हुए लीन क्यों ? पुष्प राज ! तुम पुन: खिला ही प्यार दिये॥
और ! दिया नहीं तो नहीं चाहें सेवा तो स्वीकार करो।
सन्त सुमन ! श्रद्धा सुमनों का सत्य हृदय से प्यार करो॥

तारक पद

[पुष्कर शिष्य मुनि रूपचन्दजी म० 'रजत']

मनहर छन्द—

जैनम का तारो प्यारो अठ-को दुलारो धारो
भक्तन को रखवारो भारो ध्यान वारो थो।
शान्ति हू को सरोवर स्नेह को सदन मन
मोहादि ममत्व हर आत्म रमनारो थो॥
शास्त्र मत खाट बस गुणी मस्त बरा
'पूनम' को पटधर धर मन्न तारो थो।
स्थविर भूषित मुनी 'तारेन्दु' मुनिन्द्र गुनी
पुष्कर-के हिय हार जैन को सितारो थो॥

दुर्मिल-सवैया—

नर शान्त छटा लखि आप तणी मन हर्षित होवत हेम घरी।
मुख लोचन सौम्य दिखावत थे मधु वाक्य प्रसारत मुक्त झरी॥
उपकारक तारक भव्य भयी भव तारक वारक पाप अरी।
'मुनि तार' पदांबुज भक्तिवश मुनि 'रूप' चढावत मोद भरी॥

दोहा—

जैपुर में जातो रयो तारा को परकाश।
पुष्कर हीरे देरियो कर चढियो नहीं पास॥
श्रमणगच्छ तज श्रमरपद, वर्जित वरियो चाह।
श्रावक सुख अपिओ सही, कवि कामना याह॥

तारक छन्दावलि

[पण्डित श्रीलालारामजी कविकिंकर, जोधपुर]

◎ शार्दूल विक्रीडित छन्द ◎

वीरों में इस मेदपाट महि का ऊँचा-घना स्थान है,
गाथा का जिसकी अनेक कवियों ने भी किया गान है।
पैदा वीर हु वीर-रत्न जनमें भी एक जो खान है
माता भारत को सदैव जिसका ऐसा बड़ा मान है॥१॥

अन्तिम घड़ियों में संथारा शुद्ध भाव से ग्रहण किया।
नश्वर देह जगत को तज कर, अलकापुरी प्रस्थान किया ॥
नहीं जानते थे हम गुरुवर सहसा ही यों चल होंगे।
अपने प्रिय शिष्यों को सेवा का भी अवसर नहीं दोगे ॥
जिस पथ के तुम पथिक बने वह सबको है अपनाना।
कुछ भी सेवा कर न सके हमें यही रहा पछताना ॥
गुरुवर तुमने जैन धर्म का जो उद्यान लगाया।
आज तुम्हारे सुधा वचन के वारि विना मुर्झायेगा ॥
सत्य अहिंसा निमल जल से तुमने इसे बढ़ाया।
सुरभित सदा रहेगा यश से तेरा बाग लगाया ॥
गुरु तुम्हारे उपकारों से उऋण न हम हो सकते।
चरणों में श्रद्धा कुसुमों की अञ्जलि अर्पित करते ॥

सन्त सुमन

[श्री सौभाग्य मुनिजी जैन सिद्धान्ताचार्य 'कुमुद' मेवाड़ी]

सन्त सुमन की फुलवारी का वह सुपुष्प मनोहर था।
ज्ञान पराग महक मन निर्मल सौम्य सुधा का आगर था ॥
प्रति पल नई मुस्कान लालिमा करती क्रीड़ा आनन पे।
क्रिया कलाप प्रहलादक, स्फूर्तिदायक पावन थे ॥
मोहकता की मधुर शक्ति शृंगार बनी थी जीवन का।
बन समाज धन मधुप उसी से आश्रय लेते चरणन का ॥
वह साधारण पुष्प नहीं था 'तारक' पद अलंकृत था।
उसकी छोटी थिरकन में भी तारकता स्वर झंकृत था ॥
मधुर महक मानव को देने, भौतिक इन महारों में।
आया, पुनः लुप्त हुआ वह, सन्त सुमन के हारों में ॥
× × × + +
कोटि कोटि जन भौरों के, गुण गुञ्जनमय उद्गार लिये
हुए मौन क्यों? पुष्प राज! तुम पुनः बिना ही प्यार दिये ॥
और! दिया नहीं तो नहीं चाहें लेना तो स्वीकार करो।
सन्त सुमन! श्रद्धा सुमनों का सत्य हृदय से प्यार करो ॥

तारक पद

[मुख्य शिष्य मुनि रूपचन्दजी म० 'रजत']

मनहर छन्द—

नैनन को तारो प्यारो जेठ-को दुलारो सारो
भक्तन को रखवारो मारो ध्यान धारो मो।

शान्ति हु को सरोवर स्नेह को सदन भल
मोहादि ममत हर आतम रमनारो मो॥

साम्य भाव ठाट भल गुरुनी मनन बरा
'पूनम' को पटधर धर नभ तारो मो।

स्थविर भूषित मुनी 'तारेन्दु' मुनिन्द्र गुनी
पुष्कर-को हिय हार चैन को सितारो मो॥

दुर्मिल-सवैया—

नर शान्त सुधा छवि आप तरी मन हर्षित होवत देख भरी।
मुख सोहन सौम्य दिखावत मे मधु वाक्य प्रसारत सुख झरी॥
उपकारक तारक मम्म भयी भल टारक वारक पाप घरी।
'मुनि तार' पदांबुज भक्तिमति मुनि 'रूप' चढ़ावत मोर मरी॥

दोहा—

जैपुर में आतो रयो तारा को परकाश।
पुष्कर हीरे हेरियो कर चढ़िया नहीं पास॥
अमरगच्छ तब अमरपद वर्जित वरियो चाह।
आतम सुख अधिको लहै, कवि कामना चाह॥

तारक छन्दावलि

[पण्डित पोबालालजी कविकिंकर जोधपुर]

❁ शार्दूल विक्रीडित छन्द ❁

वीरों में इस मरुधाट-महि का ऊँचा-घना स्थान है,
आभा का जिसकी अनेक कवियों ने भी किया गान है।
पैदा वीर व धीर रत्न जनने की एक जो खान है
माता भारत का सदैव जिसका देखो बड़ा मान है॥१॥

❀ हरिगीतिका छन्द ❀

उस देश में राजे मनोहर ग्राम बम्बोरा सही
अद्धेय तारायन्द्र गुरु की जन्म भूमि है मही।
चरिशाह सद्गुनमाल श्रीशिवलाल जिनके तात थे
श्रीज्ञानकुँवरी मात दम्पति सुगुन म विस्मात थे ॥२॥
नभ वेद निधि विधु बप विक्रम मास आश्विन है महा
तिथि शुक्ल चौदस को हुआ शुभ जन्म सद्गुरु का अहा।
आनन्द में फूले न माये हैं बधायें दे रहे,
मंगल मनावें स्वजन पुरजन भी न बाकी हैं रहे ॥३॥
इस भाँति इष विनोद में रस वर्ष का शिशु हो गया
तब काल के आ गाल में शिशु का प्रपालक सो-गया।
उस समय बादल शोक के घनघोर इन पै छा गये,
इस काल के सम्मुख कहो है कौन जीती हा ! गये ॥४॥

(सोरठा छंद)

सुरपुर गे शिव लाल ज्ञान तबै गमगीन हो।
आपनो ग्राम विहाय उदयापुर में आ गई ॥५॥
तीन वर्ष बेहाल बीते यों विपदा विपै।
उन्यो वैदनी काल उदय पुण्य अनुपम हुओ ॥६॥

(छप्पय छंद)

नभ शर अंक मयंक बप में सुगुरु हमारे,
पूरणचन्द्र मुनिंद विचरते यहाँ पधारे।
विमल देशना गुरु-मुख से सुन सब नर-नारी
धन्य-धन्य हो धन्य पूज्य प्रभु पर उपकारी।
यों विनय सहित कर वन्दना गमन गेह को सब किया।
तब ज्ञानकुँवर तारेन्दु को गुरुपद में भेंटा दिया ॥७॥

(दोहा)

पद पंकज गुरु के पकड़, यों बोला तारेन्दु।
दीन बन्धु गुरु पै दया कर तारो भव सिन्धु ॥८॥
विनयी बाल विलोकि के, पूर्णचन्द्र मुनिनाथ।
संघ साथ स धर दिया शिशु के शिर निज हाथ ॥९॥

(हरिगीतिका छंद)

गुरु साथ करते ही प्रफुल्लित हो गया शिशु गात है,
पा बूँद चातक स्वाति की ज्यों हृदय में हरषात है।
श्री संघ ने दीक्षा महोत्सव प्रेम से अनुपम किया
गुरु-भक्ति का रस भावुकों ने पेट भर-भर कर पिया ॥१०॥

(दोहा)

इस प्रकार आनन्द से अपना तज आगार।
आत्मार्थी शारेन्दु अब अनुपम भे अनगार ॥११॥

(हरिगीतिका छंद)

गुरुपास ज्ञानाभ्यास अब वे प्रेम से करने लगे,
निज चित्त सदा भक्ति से पुनि खूब ही भरने लगे।
प्रिय शिष्य की लखि प्रौढ़ता गुरु हृदय हर्षित हो गया
तब शिष्य भी गुरु की कृपा से अभय भय से हो गया ॥१२॥
जिनकी अलौकिक तर्क पै सघरे कुतर्की अहरत
जैसे दिनेश प्रताप सम्मुख क्षण न तम के ठहरते।
ऐसे पड़े पर लेश भी जिनको नहीं अभिमान था
है हेतु इसका मुख्य यह, 'गुरु-ज्ञान शांति निधान था ॥१३॥
श्री शांत मुद्रा आपकी मनमोहनी मतिमन्त का
गुणगान करती विमल रसना आपकी अरिहन्त का।
देखा दया की दृष्टि से गुरुदेव ने जिसको कहा !
आनन्द ही आनन्द बस नर-वीर के घर हो रहा ॥१४॥
ऐसे प्रकट सन्त चौसठ वर्ष संयम पाल के
गुरु ज्ञान से मिथ्यात्वियों के मोह को पुनि टाल के।
हो शुद्ध मन वचन काय से दरिया बही संभाल के
मर्म को बस सुरलोक जा शिव छत्र के कवि बाल के ॥१५॥

(दोहा)

कलयुग यों कवि धाम जा विलपद यों मुनिवृन्द।
सिधि गए सुरपुर गये गुरुवर ताराचन्द्र ॥१६॥
सुर शिवपुर मा संचर, नर है शिवपुर मीत।
नर तन या हित मान से जापत है मन प्रीत ॥१७॥

(कुण्डलिया छंद)

स्वामी ताराचन्द्र की महिमा को नहिं पार,
पूज्य गुरु के पास जिन संयम लीनो धार।
संयम लीनो धार पार भवसागर कीनो।
शिवसग विधु मम युग वप विक्रम रस भीना ॥
ज्येष्ठ चांदनी चौदस को बदते परिणामी।
विलखत शिष्य विहाय सीरगे सुरपुर स्वामी ॥१८॥

—

तेरी महिमा बड़ी महान्

तर्ज—देख तेरे संसार की हालत

परम पूज्य मुनि मंडल भूषण गुणी बड़े धीमान
मुनिवर ताराचन्द्र महान् तेरी महिमा बड़ी महान्।
तेजस्वी थे घोर तपस्वी और बड़े पुण्यवान
गुरुवर ताराचन्द्र महान् तेरी महिमा बड़ी महान् ॥तेरा॥

माता ज्ञानकुँवर के आप श्री शिवलाल के पुत्र कहाये।
उनका हृदय कमल हर्षाए, दर्श तुम्हारे जो भी पाये ॥
चरण कमल में शीश झुका कर करते सब गुण गान।
गुरुवर ताराचन्द्र महान् ॥

पूनमचन्द्रजी गुरु तुम्हारे, लाखों पापी जिन्होंने तारे।
जैन जगत के दिव्य सितारे, श्रद्धा के तुम केन्द्र हमारे ॥
मारवाड़ मेवाड़ मालवा तुम पर है कुरबान।
गुरुवर ताराचन्द्र महान् ॥

काम, क्रोध मद लोभ लुटेरे जन मन को जो रहते घेरे।
आ सकते थे पास न तेरे, थे घबराये उनके डेरे ॥
संयम का आदर्श धनी तू तप का पुण्य निधान।
गुरुवर ताराचन्द्र महान् ॥

जीवन तक एक अमर कहानी ज्ञान-ध्यान की पुण्य निशानी।
दुनियाँ है जिसकी दीवानी जय-जय-जय गुरुवर ज्ञानी ॥
ज्ञान मुनि जिन शासन का तू हरा-भरा उद्यान।
गुरुवर ताराचन्द्र महान ॥

अमर विभूति

तर्ज—मन डोले मेरा तन

गुण गायें, हम मनायें, गुरु तारक गुण मनहार रे
मन में बसी वो सूरतियाँ ॥

अमर विभूति बीन जगत की निमल उज्ज्वल तारे।
महिमण्डल के कण विहारी वे सब जन के प्यारे॥
सुख पायें, मंगल चाहें था मन मोहन विचार रे।
मन में बसी वो सूरतियाँ ॥

वाणी में मृदुपन था भाला गजन मंच सुहावे।
सुन्दर तन था स्याम सुशोभित ज्ञान पीयूष पिलावे॥
राह बताए, पाठ पढ़ाए वे श्रमणशील आधार रे।
मन में बसी वो सूरतियाँ ॥

मरुनानन्दी वे गुरुवरजी सरल स्वभावी नामी।
शिष्य समूह पे प्रेम अनूठा भव-भव अन्तर्यामी॥
ज्योति जगाए, मन लुभाए, वो महास्थविर शृङ्गार रे।
मन में बसी वो सूरतियाँ ॥

अपुपय माही मंगलकारी संयम व्रत को धारा।
किये महा उपकार जनको मंच है भावी तुम्हारा॥
भूल न जायें विरह सताय हमें छोड़ गये मझधार रे।
मन में बसी वो सूरतियाँ ॥

भाव भरी श्रद्धांजलि अपण मानो स्वामी हमारी।
'रसिक' मन हम पद पंकज के अब हो दव तुम्हारी॥
मसि-मसि सारे शीश नमायें, यह सुनलो करुण पुकार रे।
मन में बसी वो सूरतियाँ ॥

श्री भगतमुनिजी म० 'रसिक' मेवाड़ी

श्रद्धांजलि

तर्ज—पल-पल भीगे उमरिया

जीवन सफल बनायेंगी तारा गुरु गुण गावें
हम मनावें मनावें हम मनावें। टेर॥

शासक के जगमगाते दिव्य सितारे थे तारे थे।
लाखों दिल के देव दयालु प्यारे थे प्यारे थे॥
हिय के हार हमारे थे अमरसिंह गण उजियारे।
प्रेम से प्यारे मनावें हर्ष मनावें॥
भव्य वन्द्य थे जिन आगम के ज्ञाता थे ज्ञाता थे।
अधम जीव जीवन के नव निर्माता थे माता थे॥
संघ के भाग्य विधाता थे गावे जन गण गुण गाथा।
याद पधारे मनावें हर्ष मनावें॥
भाव भरी श्रद्धांजलि स्वीकार करो स्वीकार करो।
अचल गति में अमर शांति को प्राप्त करो प्राप्त करो॥
धर्म मैत्र परिहार करा 'शांति मुनि' श्रद्धा के।
कुसुम पधारें मनावें हर्ष मनावें॥
—श्री शांतिमुनिजी जैन सिद्धान्ताचार्य मेवाड़ी

× × × ×

तारा ने जो तारे हैं, वे नयनों के सितारे हैं।
जो तारा ने न तारे हैं, वे केवल चन्द तारे हैं॥

स्वर्गीय पूज्य गुरुदेव श्री ताराचन्द्रजी महाराजसाहब

[र० —श्री शोभाचन्द्रजी म० शास्त्री]

तर्ज—नगरी-नगरी द्वारे द्वारे

याद हमें गुरुवर की आवे ढूंढ रही है अंखियाँ
त्याग वैराग्य से भलक रही थी सुन्दर जो सुरतियाँ॥धुव॥
तारा गुरुवर नाम है प्यारा जग का तारण हारा
सुयश पताका फहर रही है शासन का रखवारा।
प्रेम पसारा निर्मल धारा खिल गई थी कलियाँ॥१॥
मेघ वर्षा सी श्यामल मूर्ति वाणी सत्य ओंकार की
छूटे फुहारे करुणा धारे भूमि बनी रसधार की।
कर-कर ध्यान प्रसार प्रसार गई जग पर की लहरियाँ॥२॥
चन्दा-सी थी ज्ञान की ज्योति मिथ्यातिमिर नशाया
त्रिविध ताप म दग्ध जीव पर करुणामृत बरसाया।
सदा हृदय में बसी हुई है सखी-सखी अंखियाँ॥३॥

तव सत्संग का पी-पी वारि इस पौधे गुलजार हैं
कण-कण में है तुही समाया तेरा ही विस्तार है।
तेरे ही चरणों में अर्पित भक्ति की ये कलियाँ ॥४॥

भव-सागर अति गहन भरा है नैया फँसी मंझधार है
कोई नहीं मेरा शरण है तरा तू ही खेवनहार है।
पड़ी 'कौशल्या' चरण कमल में पार करो नावरियाँ ॥५॥

गुरु गुणगरिमा

[तर्ज—जादूगर सय्यां छोड़]

जैन सितारे तारण हारे। धन्य तेरा अवतार।
तारक गुरुवरजी ॥ ध्रुव ॥
गुण गण प्यारे दिल न विसारे रटत हैं वारंबार ॥
ज्ञान की ज्योति जगमग होती शिववर शिव के लाल में।
बुझे न तेरे यश का दीपक कभी भी तीनों काल में।
देगा सदा प्रकाश ॥ १ ॥
श्याम वर्ण थे मध से सुन्दर वाणी अमृतधार थी।
दया सुधा से जन मन को नित कर रही सरसार थी।
किया सदा उपकार ॥ २ ॥
जीवन वन में फूल खिलाये सत्य अहिंसा त्याग के।
चरण बढ़ाये श्री भगवन् के सच्चे भक्त भगवान के।
पहुँचेगे शिवलोक ॥ ३ ॥
चुन चुन करके गुण के मोती पिरोवें श्रद्धा के तार में।
उन्हें पहन कर पावें सफलता पहुँचें भवपार में।
ऐसा मेरा विश्वास ॥ ४ ॥
—जैनसाध्वी चन्द्रवतीजी

जीवन सौरभ

संत शीरोमणि संत को तारापन्थ सुजान।
संत शिरोमणि जैन का मान लोक महान् ॥

श्री गुरु पूनमचन्द से, दीक्षित होकर आप।
जैन शिरोमणि हो गये, छूट गये सब पाप ॥

धर्म अहिंसा को सदा करते सत उपदेश ।
मरुधर को मेवाड़ के सुनते सबहि नरेश ॥

युगनिधि-नभ कर विक्रमी इन्द्र काति सुद आन ।
नगर सुजानपुर आयके प्राण त्याग धर ध्यान ॥

मुनिवर ताराचन्द के गावत गुण बिन पार ।
मरुधर वा मेवाड़ में याद करत नर-नार ॥

—कविराज राव रघुवरप्रसाद जोधपुर.

श्रद्धार्चनम्

अयपत्तनाभ्यासमात्म्यविद्यासदने अभ्यासपरता मया संचितपुण्यराशिस्तपसा संतुलितचरित्रः शिष्यो वशी विनया ।

अथवीरितपुराभाय आर्ष्यो जरठे महातपा मातःस्मरणीयो महामुनि स्ताराचन्द्रो महाराजोऽहर्निशामधिजयपुरम् ।

अथसीयदर्शनेन पुरावृत्तं आषाक्षिपराशरप्रमुखानां महामनसां मुनीनां चरितं दृष्टिपथं प्रत्यक्षमिवावतरत् ।

इदमीयधर्मोपदेशेनोपकृता कतिपये भवाम्बुधमग्नस्वेदेनोदतीर्णाः असौ भिन्न माहात्मेवाभिवाय अपितु विरक्तजनीमनेन सकलधर्मावलम्बिनः सहर्षं सर्व सेवन्तेस्म ।

अशीतिवर्षपरिमितवया अपि शिष्यसंपत्सम्पन्नोऽपि अयपमाहात्मा मा केभ्योऽपि अणीयसीमपि सेवां जग्राह ।

आन्वर्थिकममयाराम इवैव महात्मनि परमायतः संप्राप्तीतिस्म असौ स्थितप्रज्ञलक्षणं भगवद्गीतायां सुवर्णं विमर्शितस्म मात्र द्वापरानन्तरं ।

अन्तर्हिते अध्यात्मदिनकरेऽखिलमपि धार्मिकवृन्दं अज्ञानतिमिराकुलमिव भासते ।

एतदीयपवित्रचरित्रमेरवगुणा आत्मानमपि पावयिष्यामि इति शुभभावना ।

शुकदेव पाठक
प्रिंसिपल
दरबार संस्कृत कालेज जोधपुर.

—' पत्रों में से कुछ हृदयोद्गार —

सर्वत्र सन्नाटा ! जैन समाज के तेजस्वी 'तारा' का अस्त !

महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी म० स्था० जैन समाज के तेजस्वी 'तारक' ही थे। उन्होंने अपनी सुदीर्घ संयम साधना की तपस्विता से स्था० जैन समाज के आकाश को आलोकित किया था। संघैक्य के वे परम समर्थक ही नहीं थे अपितु स्था० जैन श्रमणसंघ का एक विराट रूप देने के लिये प्रयत्नशील भी थे। अपने प्रिय शिष्यमण्डल को श्रमणसंघ के श्रेय व संगठन के लिये सदा सतर्क और प्रयत्नशील रहने का भी आदेश दते रहते थे। छोटी उम्र में दीक्षा ग्रहण की और दीर्घकाल तक दीक्षा पर्याय सुचारु रूप से पालते हुए अपने संयम मार्ग को प्रशस्त किया तथा संयम सौरभ से स्व पर जीवन को सुवासित किया।

महास्थविरजी म० के निधन से जैन समाज को बड़ी भारी क्षति पहुँची है—जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में होना संभव नहीं है। उस महापुरुष के चरण-कमलों में सविनय श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—सेठ आनंदराजजी सुराणा, देहली
प्रधानमंत्री एस० एस० जैन कान्फ्रेंस

— दो शब्द —

श्रद्धेय महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी म० एक शान्त और सौम्य प्रकृति के भद्र सन्त थे। रत्नत्रय की शुद्धि एवं वृद्धि की ओर आप श्री का सदैव ध्यान रहता था।

आप श्री ने नन्ही सी उम्र में वैराग्य प्राप्त कर दीक्षित होकर और चिरकाल तक संयम साधना आत्म आराधना और मनोमन्थन कर संलेखनायुक्त समाधिमरण प्राप्त किया।

श्रमणसंघ के इस महान् तारे को आदर्श बना कर अन्य श्रमण और श्रमणी भी अपने जीवन को संयमी बनावें यही मेरी हार्दिक भावना है।

महास्थविरजी म० पर मेरी अटूट श्रद्धा थी। दो-एक साल से आप श्री जयपुर में ही विराजते थे। जब मैं विदेश यात्रा के लिए रवाना हुआ तो आप श्री के दर्शन करके ही गया। मेरी यात्रा काफी सफल रही।

आज वह महापुरुष हमारी आँखों से ओझल हो गया किन्तु मैं उनके तप और त्याग प्रधान जीवन को भूल नहीं सकता। इन्हीं दो शब्दों में अपनी भावभरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। संघ सेवक—

विनयचंद्र दुर्लभजी जौहरी
प्रमुख श्री अ० भा० श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स

× × × ×

श्रद्धेय महास्थविरजी म० शांति और आचार के मूर्तरूप थे। जीवनमुक्त प्रतिमाओं के प्रतीक थे। मोक्ष मार्ग के पथिकों के चिन्तातुर प्रहरी थे। इहलोक और परलोक की सरणि के प्रभावान् प्रदीप थे।

इस प्रकार उनके इहलीला संवरण के पश्चात् दीक्षावृद्ध, ज्ञानवृद्ध और आचारप्रमुख मुनिराज के पुण्योपचय के बिना सम्भवतः दर्शन असम्भव नहीं तो सुलभ भी नहीं हैं।

अन्त में मैं तो केवल अल्पोक्ति किन्तु मधुरं मिरीति उच्चाट पाप कालिकानिकरैकहेतु। इतना कहकर मैं अपनी तुच्छमतिक किन्तु श्रद्धाविभोर, भावविलसित किन्तु प्रणयचकोर श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत करता हूँ।

—पं० रमाशंकर शास्त्री, अजमेर

\+ + + + +

महास्थविरजी म० भगवद्वंश में सब से बड़े सन्त थे। आपका स्वभाव शान्त-दान्त व भद्र था। वृद्धावस्था के कारण आप श्री का जयपुर में विराजना हुआ। मैंने देखा उस महापुरुष में अभिमान नहीं था। व सदा मुस्कराते रहते थे। उनका जीवन पवित्र और निर्मल था।

जैनागमों में पण्डितमरण का गहरा महत्व रहा है। जीवन का सुनहला अवसर भाग्यशालियों को ही प्राप्त होता है। महास्थविरजी म० का मरणपण्डित मरण था। उन्होंने स्वयं संथारा किया था और अन्तिम क्षणों तक उनके शुद्ध भाव बने रहे थे।

मैंने अपने इस लघु जीवन में अनेक सन्तों के दर्शन किये किन्तु आप जैसा सरलस्वभावी व जन प्रेमी सन्त मैंने नहीं देखा।

मैं आज उस महासन्त के चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हुआ गौरव का अनुभव करता हूँ।

—भँवरलाल बोथरा, जयपुर

\+ + + + +

परम पूज्य गुरुदेव श्रीताराचन्दजी म० से मैं भलीभाँति परिचित हूँ क्योंकि आपके बचपन के मधुर क्षण विशेष मेरे परिवार में ही बीते थे। दीक्षा लेने के पश्चात् भी गुरुदेव की मुझ पर असीम कृपा रही है। आपने देश विदेशों में घूम कर जैनधर्म का महान प्रचार किया।

आपका त्याग वैराग्य महान् था जो हमारे लिये गौरव की वस्तु थी। मैं मेहता परिवार की ओर से गुरुदेव के चरण कमलों में हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—कनकमल मेहता, उदयपुर

महास्थविर श्रीताराचन्द्रजी म० के स्वर्गवास के समाचार हमारे संघ के लिये वज्रपात से कम नहीं थे। वे हमारे संघ के अग्रणी और सुदृढ़ स्तंभ थे। सारे संघ ने चार लोगस्स का ध्यान कर उनके समान ही हमारी भावनायें व आत्मायें बने ऐसी भावना भाई।

नेमीचन्द्र जैन

वर्द्धमान स्था० श्रीसंघ सब्जीमण्डी देहली

\+ + + + +

अकस्मात् श्रद्धेय महास्थविरजी म० के स्वर्गस्थ हो जाने के समाचार से हृदय सन्न रह गया। सौभाग्य से एक दिन पहले ही मैंने गुरुदेव की चरणरज शिरोधार्य की थी किन्तु उस समय ऐसी कोई बात नहीं थी।

क्रूर काल के सामने किस का वश चलता है। अभी काफी समय तक आप श्री की छत्रछाया की आवश्यकता थी। आपके स्वर्गवास से हे गुरुदेव! यह स्थानकवासी समाज अनाथ हो गया।

बनारसीदास प्रेमचंद ओसवाल

सदर बाजार, देहली

\+ + + + +

हमने चार दिन पूर्व ही महास्थविरजी म० के दर्शन किये थे और आप श्री के मुखारविंद से मांगलिक पाठ श्रवण कर आये थे।

किसे यह ज्ञात था कि जैन समाज का यह चमकता हुआ सितारा इतना जल्दी अस्त हो जायेगा। यह हस्ती आज हमारे से जुदा हो गई है। गुरुदेव के स्वर्गवास से हमारे को बड़ा सदमा पहुँचा है। हम उनके बताये मार्ग पर चलें।

सनेहीराम रामनारायण जैन, देहली

\+ + + + ×

महास्थविरजी म० की अगाध साधना तप पूत संयम तथा रससिक्त वाणी एवं भव्य विचारों का मेरे मन पर गहरा असर हुआ। उनके दर्शन व चरणस्पर्श से मेरा जीवन परिवर्तन हो गया। मैंने जितनी बार दर्शन किये उतनी बार मुझे नव्य-भव्य प्रेरणा मिली।

डा० मोहनसिंह मुकुन्द, बम्बई

\+ + + + +

महास्थविरजी म० दीप संयमी थे। आपकी संयमसाधना अतीव पवित्र और उत्कृष्ट थी। आपकी शान्त और सौम्य प्रकृति से मैं अत्यधिक प्रभावित था। आप हमारे सन्मार्ग के पथप्रदर्शक थे।

थावरमल लूणकड़, जोधपुर

× × × × ×

महास्थविरजी म० के स्वर्गवास के समाचारों को सुनकर गुरुकुल परिवार को हार्दिक दुःख हुआ शोकसभा का आयोजन किया गया और शोकप्रस्ताव पास किया।

मांगीलाल भण्डारी अधिष्ठाता
श्री लोंकाशाह जैन गुरुकुल सादड़ी मारवाड़

× × × × ×

गुरुदेव के सम्बन्ध में क्या लिखूं। गुरुदेव गुरुदेव ही थे। मैंने अपनी छोटीसी उम्र में बड़े बड़े महात्माओं के दर्शन किये हैं, उन सब में हरएक प्रकार की खूबियाँ रही हुई थी पर वयोवृद्ध श्रीताराचन्द्रजी म० में सब से विशेष खूबी देखने को मिली नम्रता और इससे भी बढ़कर खूबी यह थी कि प्रतिक्षण प्रतिपल ज्ञान ध्यान में मस्त रहना।

—कपूरचन्द बुरड़ाया, देहली

× × × × ×

गुरुदेव की असीम कृपा से ही हमारा यह प्रान्त (मेरा) जैन श्रमणों के आचार और विचार से परिचित बना। इस प्रान्त के ग्रामीणों को गुरुदेव ने शिक्षा देकर जैनधर्म से परिचित किया। इस प्रान्त के छोटे छोटे ग्रामों में घूम कर वर्षावास कर हमारे पर जो महान् उपकार किये हैं उन्हें हम कभी भी नहीं भूल सकते।

सेठ नाथूलालजी परमार, पदराड़ा मेवाड़

× × × × ×

महास्थविरजी म० स्थानकवासी समाज के महान् स्तम्भ थे। महान प्रतिभावान थे और भद्र आत्मा थे।

सेठ रतनलाल मीखमचन्द बांठिया, पनवेल

× × × × +

गुरुदेव कितने महान् थे पवित्र थे निर्मल थे भावुक थे दयालु थे। हमारे पर आपकी असीम कृपा थी। आपकी कृपादृष्टि से ही हमने जैनधर्म का ज्ञान किया था।

सेठ देवीलालजी चोखा, सायरा मेवाड़

× × × ×

महास्थविरजी म० के स्वर्गवास के समाचार अभी अभी जैन प्रकाश से ज्ञात हुए। आप मान्यवान सन्त थे गुणों के भण्डार थे।

वाडीलाल एच० कम्पनी भीले पारले, बम्बई

× × × × ×

महास्थविरजी म० की प्रतिभा विलक्षण थी। उनका अपूर्व त्याग तप तेज व सत्यप्रियता आज भी मेरे मानस में अंकित है।

अनोपचन्दजी पुनमिया, सादड़ी

× × × × ×

महास्थविरजी म० आयु से ही नहीं दीक्षा से भी बड़े थे। आपने अपने आदर्श, तप त्याग और पांडित्य से चतुर्विध संघ में अमिट ख्याति प्राप्त की थी।

जेठमल लूणकड़, जोधपुर

परम आदरणीय महास्थविर म० जैन समाज के चमकते सितारे थे। आपकी प्रतिभा अलौकिक थी। गुरुदेव! हम तो विचार कर रहे थे कि जयपुर का वर्षावास पूर्ण कर हमारे क्षेत्र को पावन करेंगे किन्तु वह तो हमारे मन में ही रह गई।

'गोगुन्दा' स्था० जैन संघ

× × × × ×

अभी अभी यह ज्ञात हुआ कि महाप्राण महास्थविर श्रीताराचन्दजी म० का स्वर्गवास हो गया। जिसे सुनकर मैं अवाक् रह गया। आपने दीर्घ समय तक जो समाज की सेवा की है। हमारे प्रान्त में घूम घूम कर जो धर्मप्रचार किया है, जिससे हम उनके आभारी हैं। वे क्या थे! उसके लिखने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं।

सुखलाल जैन
इन्सपेक्टर सेलटेक्स माढमर

× × × × ×

महास्थविरजी म० की नासिक क्षेत्र पर कृपा दृष्टि थी। उनके स्वर्गवास के समाचारों को सुन कर यहाँ के श्रीसंघ को अत्यधिक दुःख हुआ। नासिक संघ श्रद्धा व भक्तिभाव से श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है।

चान्दमल बिरदीचन्द भण्डेया, नासिक

× × × × ×

महास्थविरजी म० दीर्घ संयमी थे। आपकी संयमसाधना अतीव पवित्र और उत्कृष्ट थी। आपकी शान्त और सौम्य प्रकृति से मैं अत्यधिक प्रभावित था। आप हमारे सन्मार्ग के पथप्रदर्शक थे।

सादरमल सुराणा, जोधपुर

× × × × ×

महास्थविरजी म० के स्वर्गवास के समाचारों को सुनकर गुरुकुल परिवार को हार्दिक दुख हुआ शोकसभा का आयोजन किया गया और शोकप्रस्ताव पास किया।

मांगीलाल भण्डारी अधिष्ठाता
श्री लोंकाशाह जैन गुरुकुल सादड़ी मारवाड़

× × × × ×

गुरुदेव के सम्बन्ध में क्या लिखू। गुरुदेव गुरुदेव ही थे। मैंने अपनी छोटीसी उम्र में बड़े बड़े महात्माओं के दर्शन किये हैं उन सब में हरएक प्रकार की खुबियाँ रही हुई थी पर वयोवृद्ध श्रीताराचन्द्रजी म० में सब से विशेष खूबी देखने को मिली नम्रता और इससे भी बढ़कर खूबी यह थी कि प्रतिक्षण प्रतिपल ज्ञान ध्यान में मस्त रहना।

—कपूरचन्द सुराणा, देहली

× × × × ×

गुरुदेव की असीम कृपा से ही हमारा यह प्रान्त (मेरा) जैन श्रमणों के आचार और विचार से परिचित बना। हम अबोध प्राणियों को गुरुदेव ने शिक्षा देकर जैनधर्म से परिचित किया। इस प्रान्त के छोटे छोटे ग्रामों में घूम कर वर्षावास कर हमारे पर जो महान् उपकार किये हैं, उन्हें हम कभी भी नहीं भूल सकते।

सेठ नाथूलालजी परमार, पदराडा मेवाड़

× × × × ×

महास्थविरजी म स्थानकवासी समाज के महान् स्तम्भ थे। महान प्रतिभावान थे और भद्र आत्मा थे।

सेठ रतनलाल भीखमचन्द पोंठिया, पनवेल

× × × × +

गुरुदेव कितने महान् थे पवित्र थे निर्मल थे भावुक थे दयालु थे। हमारे पर आपकी असीम कृपा थी। आपकी कृपादृष्टि से ही हमने जैनधर्म का ज्ञान किया था।

सेठ देवीलालजी बोल्या, सायरा मेवाड़

महास्थविरजी म० स्थानकवासी समाज की एक आदर्श दिव्य विभूति थे। जिसके लिये स्थानकवासी समाज सहज ही गौरवान्वित हो सकता है। आपका उत्कृष्ट वैराग्य, चरित्रनिष्ठा साधना के प्रति नित्य निरन्तर चिन्तन शीलता गम्भीरता एवं औदार्य आपके अपने निजी गुण थे।

आपका सरल गंभीर व्यक्तित्व नेत्रों से झलकने वाला करुणाभाव और मन मस्तिष्क को पथ देने वाली वाणी कभी भी विस्मृत नहीं की जा सकती।

स्था० जैन श्रावक संघ, बागपुरा (उदयपुर)

× × × × ×

गुरुदेव के स्वर्गवास से हमारे यहाँ के संघ को बड़ा दुःख हुआ। गुरुदेव का जीवन महान् था पवित्र था उत्कृष्ट चारित्र की साधना आराधना थी। ऐसे गुरुदेव की सेवा हम भव भव में चाहते हैं।

स्था० जैन श्रावक संघ वास (मेवाड़)

नोट—स्थानाभाव से कई महानुभावों की श्रद्धाञ्जलियाँ हम दे नहीं सके हैं। एतदर्थ क्षमाप्रार्थी हैं।

प्रात स्मरणीय पूज्य श्री अमरसिंहजी म० मारवाड़ी

— — की — —

भूतपूर्व सम्प्रदाय

पूज्य श्री जीवराजजी म० सर्वप्रथम स्थानकवासी जैन धर्म के क्रियोद्धारक हुए हैं। आपके शिष्य कई हुए हैं। इनमें श्री लालचन्दजी म० प्रमुख थे। उनके सुशिष्य पूज्य श्री अमरसिंहजी म० हुए, जिनके नाम से सम्प्रदाय प्रचलित है। जैनाचार्य श्री अमरसिंहजी म० सा० की जन्मभूमि देहली पिता देवीसिंहजी ओसवाल तातेड़ माता कमलावती जन्म संवत १७१६ आसोज शुक्ला १४ आचार्य श्री लालचन्दजी म० के समीप संवत् १७४१ में दीक्षा ली दीक्षा स्थल देहली। संवत् १७६१ में अमृतसर पंजाब में युवाचार्य पद प्राप्त किया। आचार्य पद देहली में हुआ।

जोधपुर के दीवान खमसिंहजी भंडारी देहली में आपके उपदेश से प्रभावित हुए, फिर आपको भंडारीजी मारवाड़ में लिवा लाये। जोधपुर पाली सोजत आदि अनेक क्षेत्रों में जैन यतियों से शास्त्रार्थ किया और सब प्रथम स्थानकवासी जैनों का झण्डा आप ही ने मारवाड़ में स्थापित किया। उस समय की यह उक्ति प्रसिद्ध है—

यति धर्म जाता रहा, पड़ा रह गया पाट।
उपाश्रय ऊभा हुआ, स्थानक लागा ठाट॥

इस प्रकार आपने मारवाड़ मेवाड़ मालवा और पंजाब आदि क्षेत्रों में स्थानकवासी जैनधर्म का काफी कष्ट करके प्रचार किया। आपके पट्टधर शिष्य श्री तुलसीदासजी म० हुए हैं। संवत् १८१२ में अजमेर शहर में आसोज में स्वर्गवास पधारे।

पूज्य श्री तुलसीदासजी म० का जन्म मथाणा माता पुलाबाई श्री तुलसी दासजी म० के पट्टधर शिष्य श्री सुजानमलजी म० हुए हैं। आपकी जन्मभूमि

महास्थविर म० सा० श्रीताराचन्द्रजी म०—आपका जन्मस्थान बम्बोरा (मेवाड़) है। आपके पिता का नाम शिवलालजी और माता का नाम ज्ञानकुँवरजी ओसवाल है। जन्म संवत् १६४० का है, नौ वर्ष की वय में पूज्य श्रीपूनमचन्द्रजी म० के पास सं० १६५० में समदड़ी (मारवाड़) में दीक्षा ली। आप श्री के माताजी ने भी संयम लिया था। आप जैनदर्शन के सुन्दर विद्वान् प्रकृति के भद्र सरल स्वभावी महापुरुष थे। ऊँचा सा कद सांवला रंग तेजस्वी। आपकी आकृति प्रकृति प्रत्यक्ष मानव का मानस प्रभावित करने वाली थी मारवाड़ मेवाड़, मालवा बम्बई, गुजरात दक्षिण पंजाब, देहली आगरा आदि क्षेत्रों में उग्र विहारी बन कर जैनधर्म का मधुर प्रचार किया। सं० २०१३ कार्तिक शुक्ला १४ के दिन जयपुर में आप श्री स्वर्गवास पधारे। आप श्री के ६ शिष्य हुए। मेवाड़ मंत्री श्रीपुष्कर मुनिजी म० श्रीहीरा मुनिजी म० साहित्यरत्न श्रीदेवेन्द्र मुनिजी साहित्यरत्न श्रीगणेश मुनिजी म० श्री मैरू मुनिजी म० हुए।

श्रीमैरू मुनिजी म० मशार के निवासी ६२ वर्ष की उम्र में दीक्षित हुए थे। जयपुर (राजधानी) में आपका स्वर्गवास हुआ।

मंत्री श्रीपुष्कर मुनिजी की जन्मभूमि उदयपुर जिले के गोगुन्दा तहसील में 'नान्देशमा' है। संवत् १६८१ जालौर (मारवाड़) में दीक्षा हुई। आप १२ वर्ष की वय में दीक्षित हुए हैं। जाति के ब्राह्मण 'पालीवाल' हैं। संस्कृत प्राकृत भाषा के आप माने हुए विद्वान् हैं। आप श्री का ओजस्वी भाषण जन जन के मन मयूर को प्रभावित करने वाला है। आप श्रमणसंघ के मंत्री हैं।

श्री हीरा मुनिजी म० की जन्मभूमि अरावली की गोद में ओमट बास, मावली है। जाति क्षत्रिय पिता पद्मसिंहजी माता धुमीबाई। दीक्षा संवत् १६६५ का पौष बद ४ है। अध्ययन हिन्दी और संस्कृत मध्यमा। आप श्री ने गुरु म० श्री ताराचन्द्रजी म० का जीवन चरित्र भी लिखा है।

श्री देवेन्द्र मुनिजी म० की जन्मभूमि उदयपुर, सं० १६६७ का चैत्र शुक्ला ३ खण्डप मारवाड़ में संयम लिया। आप हिन्दी में साहित्यरत्न एवं संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं। गौर वर्ण ऊँचा कद एवं प्रकृति के बहुत सुन्दर मुनिराज हैं। आपकी माता तथा बहिन दीक्षित हैं। आपकी जाति ओसवाल बरड़िया है। पिता श्री जीवनसिंहजी बरड़िया माता प्रभावतीजी हैं।

श्रमण गच्छीय सती समुदाय

(१) प्रवर्तिनी बाल-ब्रह्मचारिणी श्री सायरकुँवरजी म० की दीक्षा सं० १६८८ में पंचभद्रा (मारवाड़) में हुई। आपकी गुरुणीजी का नाम रामकुँवरजी म० ज्ञान ध्यान, चरित्र की आराधना करने में आपका बहुत ऊँचा स्थान है। आप

मेवाड़ सनवाड़ पिताश्री श्रीविजयसिंहजी मलदारी आप श्री ने माता तथा बहिन के साथ लघुवय में संयम लिया। पूज्य श्रीमुज्ञानमलजी म० भी बड़े प्रभावशाली और प्रबल प्रचारक सन्त थे। आपने मारवाड़ मेवाड़ और दिल्ली प्रदेश में विचर कर जैनधर्म का प्रचार किया था।

पण्डितप्रवर श्रीजीतमलजी म० जैनदर्शन के प्रकृष्ट विद्वान् हुए हैं। आप जैन मुनियों के अद्वितीय कलाकार थे। जोधपुर के महाराजा मानसिंहजी द्वारा जीव तत्त्व पर किये हुए प्रश्न का उत्तर देने के लिये आपने एक चने के दाने जितने स्थान में १०८ हाथियों का चित्र चित्रण किया है जो पानी के एक बिन्दु में असंख्य जीव समझाने के लिये है। यह चित्र अभी भी मन्त्री मुनि श्रीजी के पास सुरक्षित है। कहा जाता है कि आप कभी २ दोनों हाथ तथा दोनों पाँव से कलम चलाया करते थे। स्थानकवासी समाज की ३२ आगम की १२ प्रतिलिपियाँ कर डाली जो अभी अनेक मुनिराजों के पास देखी जाती हैं।

पूज्य श्रीज्ञानमलजी म० हुए। आपके पिता श्रीजोरावरमलजी माता मानकुमारीजी ओसवाल जाति गुलेच्छा। श्रीजीतमलजी म० के दो शिष्य थे। किशनदासजी व श्रीज्ञानमलजी म०। किशनदासजी म० के शिष्य श्रीरुकमीचन्दजी म० हुए फिर उनके श्री रामकिशनजी म० पट्टधर हुए। रामकिशनजी म० के श्रीनारायणदासजी म० हुए। नारायणदासजी म० के दो शिष्य हुए, मुल्तानमलजी म० एवं प्रतापमलजी म०।

पूज्य श्रीपूनमचन्दजी म० हुए। आपकी जन्मभूमि जालौर (मारवाड़) जाति ओसवाल। आपने अपनी बहिन के साथ संयम लिया। दीक्षा समय में आपने भारी संघर्ष का सामना किया था। आपके ६ शिष्य थे। श्रीनवलचन्दजी म० जेठमलजी म० श्रीदयालचन्दजी म० श्रीनेमीचन्दजी म० श्रीपन्नालालजी म० श्रीताराचन्दजी म०।

श्रीजेठमलजी म० प्रसिद्ध योगीराज थे। मारवाड़ में पंचमकाल के केवली माने जाते थे आपका इष्ट महुत बलवान था। रात्रि में ध्यान दिवस में भजन आपका मूल मन्त्र था। आपके शिष्य श्रीनेमीचन्दजी म० हुए हैं। और श्री पन्नालालजी म० के शिष्य श्रीप्रेमचन्दजी उत्तमचन्दजी श्रीजुहारमलजी म० श्रीबागमलजी म० हुए।

श्रीदयालचन्दजी म० के शिष्य हेमराजजी म० हुए। श्रीनेमीचन्दजी म० के तीन शिष्य श्रीहमरुलालजी म० श्रीप्यारचन्दजी म० श्रीदौलतरामजी म० हुए। श्री वृद्धिचन्दजी म० किसी कारणवश पंजाब सम्प्रदाय में चले गये। जिनके शिष्य वर्त्तमान में पंजाब केसरी मंत्री श्री प्रेमचन्दजी म० हैं।

वप की आयु में श्री फूलकुँवरजी म० के पास संवत् १६४६ फागुण वदि १३ के दिन भगवती दीक्षा अंगीकार की। आपका जीवन त्याग एवं वैराग में खूब रंगा हुआ था। संयम-साधना तप-आराधना करना ही आपके जीवन का लक्ष्य था। आपका सा० १४-११-४६ के दिन 'गोगुन्दा' (मेवाड़) में स्वर्गवास हो गया। २४ घण्टे का संथारा आपकी १२ शिष्याएँ वर्तमान समय में मौजूद हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—

श्री भूरकुँवरजी श्री सौभागकुँवरजी श्री पानकुँवरजी, श्री सेहरकुँवरजी श्री शंभूकुँवरजी श्री शीलकुँवरजी श्री सुन्दरकुँवरजी श्री मोहनकुँवरजी श्री सायरकुँवरजी श्री दयाकुँवरजी श्री चन्दनबालाजी श्री सुमागणकुँवरजी।

(क) श्रीभूरकुवरजी म० का जन्म स्थान पूर उदयपुर के पास है। सं० १६६८ में दीक्षा की आप ज्ञान ध्यान में लीन रहती हैं।

(ख) श्रीसौभागकुँवरजी की जन्मभूमि बड़ी सादड़ी। आप प्रकृति के भद्र एवं बड़ी सरल स्वभावी हैं।

(ग) श्रीसेहरकुँवरजी म० की जन्मभूमि मालदेशमा है, होल में दीक्षा सं० १६८१। पानकुँवरजी की सं० १६६६। आप रख व्याख्यान लोकप्रिय है। पानकंवरजी सवाभावी हैं।

(घ) श्रीशंभूकुँवरजी की दीक्षा सं० १६८१। जन्मस्थान बागपुरा काकड़ सुसराल। आपकी प्रकृति एवं वाणी बहुत कोमल है। आपकी वाणी में यह जादू है कि पत्थर सा हृदय भी पानी २ हो जाता है।

(ङ) बाल ब्रह्मचारिणी श्रीशीलकुँवरजी का जन्म स्थान जावद (मेवाड़)। आप श्री शम्भूकुँवरजी की सुपुत्री हैं। आपका जीवन त्याग वैराग्य की आधार शिला पर निर्माण हुआ। आपकी प्रवचन शैली जनजीवन को परिवर्तन करने में अनूठी है। मेवाड़ मालवा मारवाड़ एवं जयपुर आदि क्षेत्रों में परिभ्रमण कर जैनधर्म का खूब २ प्रचार कर रही हैं।

(च) श्रीसुन्दरकुँवरजी की जन्मभूमि गोगुन्दा दीक्षा संवत् १६८८, श्रीमोहन कुँवरजी की जन्मभूमि गोगुन्दा दीक्षा संवत् १६६५, श्री सायरकुँवरजी की जन्मभूमि देलवाड़ा दीक्षा २० ४ श्री दयाकुँवरजी जन्मभूमि राजस्थिया दीक्षा २००६ श्री सुमागणकुँवरजी का जन्मस्थान कराई दीक्षा २००६ बाटी में हुई।

(छ) श्री चन्दनबालाजी की जन्मभूमि उदयपुर है। दीक्षा संवत २००६। आपने बाल्यावस्था में दीक्षा लेकर विद्याभ्यास में अच्छी उन्नति की है। संस्कृत

समय के अतिरिक्त अनेक प्रकार की तपस्यायें आपने की और अभी भी चलती रहती हैं। आपके आचार-विचार की पुनीत प्रवृत्ति जन जीवन के लिए अतीव कल्याणकारी है। आपकी अनेक विदुषी शिष्यायें हैं श्री कुसुमवतीजी श्री पुष्पवतीजी तथा आपकी आज्ञाकारणी श्री पदमकुँवरजी श्री भूरकुँवरजी श्री सोहनकुँवरजी, श्री गेन्दकुँवरजी श्री सौभाग्यकुँवरजी श्री कस्तरकुँवरजी श्री प्रताप कुँवरजी, श्री कैलाशकुँवरजी श्री प्रभावतीजी श्री भीमवतीजी श्री मोहनकुँवरजी श्री प्रेमकुँवरजी श्री चन्द्रकुँवरजी श्री चन्द्रावतीजी श्री रतनकुँवरजी हैं।

(क) श्री सौभागकुँवरजी—१९७४ की दीक्षा जन्म उदयपुर है। आप अच्छी प्रभावशालिनी सती हैं।

(ख) श्री कैलाशकुँवरजी—जन्म स्थान देलवाड़ा (मेवाड़) संवत् १९९३ फागुण सुदी १० आप शांत स्वभावी सवाभावी सती हैं।

(ग) श्री कुसुमवतीजी—आप श्री कैलाशकुँवरजी की सुपुत्री हैं १९९३ की दीक्षा आपने लघुवय में संयमी बनकर मधुर सुन्दर शिक्षा प्राप्त की है। आपने बनारसीय व्याकरण मध्यमा की परीक्षा पास की है तथा जैन सिद्धांताचार्य की परीक्षा भी पास की है। आपकी प्रवचनशैली आज के संसार में अतीव लोकप्रिय है।

(घ) श्री पुष्पवतीजी 'साहित्य रत्न'—आप की दीक्षा १९९३ में हुई, जन्म स्थान उदयपुर बनारसीय व्याकरण मध्यमा काव्य मध्यमा तथा हिन्दी साहित्य रत्न पास हैं। आप अपनी सती समुदाय में अच्छी प्रभावशाली हैं। आपके भाई तथा माता भी दीक्षित हैं। आपकी वाणी में आज माधुरी गुण पुष्कल है।

(ङ) श्री प्रभावतीजी की दीक्षा १९९८ आषाढ़ शुक्ला ३ जन्म स्थान उदयपुर। आप जैन थोकड़ा बोलों की अच्छी जानकार हैं। आप श्री देवेन्द्र मुनिजी की माता हैं। आपका जीवन त्याग प्रधान है।

(च) श्री प्रेमकुँवरजी की दीक्षा २००४ जेठ वदि ११ आपका जन्म स्थान नागपुरा है। आप श्री गणेश मुनिजी की माता हैं।

(छ) श्री चन्द्रावतीजी की दीक्षा २०१४ माह सुद ३ आपका जन्मस्थान उदयपुर है। आपकी मातेश्वरी भी दीक्षित हैं। आपकी अध्ययन शैली अच्छी है। लघुवय में दीक्षित होने से आशा है कि आप भावी जनता के लिए अच्छी सुधारक होंगी।

(२) महासती श्री भूरकुँवरजी—आपका जन्म वीरभूमि मेवाड़ 'मादड़ा भोमट' है। आपके पिता का नाम पन्नालालजी माता का नाम नाथीबाई ७२

(५) श्रीभैरूकुंवरजी की जन्मभूमि नीमेड़ा। दीक्षा सं० २००५ वैशाख शुक्ला ५ देवास (मेवाड़) में हुई। आप जाति के पालीवाल ब्राह्मण हैं। आप कद के लम्बे तथा गौरवर्ण हैं। आपकी प्रवचन शैली काफी सुन्दर है।

(६) श्री बड़े हरकूजी की जन्मभूमि पून्दारा (मारवाड़)। आपकी शिष्यायें श्रीसमथाजी श्रीप्रतापकुंवरजी, श्रीरतनकुंवरजी। आपका विहार क्षेत्र मारवाड़ है।

(७) श्री दोपाजी म० की जन्मभूमि कर्मावस (मारवाड़)। आपकी शिष्यायें श्रीसीताजी श्री अमरावजी श्रीसुगनाजी आदि हैं।

(८) श्रीनजरकुंवरजी म० सा०—आपका विहार क्षेत्र मेवाड़ और मारवाड़ है। आपकी शिष्यायें श्रीरूपकुंवरजी श्रीप्रतापकुंवरजी श्री सेजाजी आदि हैं।

(९) श्रीझमकूजी म०—आप जोधपुर में स्थविरवास रहीं और वहीं आपका स्वर्गवास हुआ है। आपकी शिष्यायें श्रीकस्तुराजी श्रीगवराजी महासती श्रीगवराजी म० ने कई मास खमण तथा दो मास की तपस्यायें भी की हैं।

भाषा के साथ ही प्राकृत भाषा पर आपका अच्छा अधिकार है। जैन सिद्धान्त शास्त्री पास हैं, प्रकृति से कोमल, वाणी मधुर है। आपकी प्रवचन शैली काफी सुन्दर है।

(३) श्रीनेनुजी म० की जन्मभूमि सिरोडा मारवाड़, दीक्षा १६४६ माह सुदी १५। आपने मारवाड़ सीवानची परगना में घूम २ कर जैनधर्म का अच्छा प्रचार किया। प्रकृति कोमल सरल स्वभावी। आपका जीवन पवित्र था। आपकी शिष्यायें श्रीहीराजी महाराज, श्रीपेमाजी म० श्रीहरकूजी म० श्रीरामूजी म० श्री अमरावकुँवरजी म० श्रीसुकनकुँवरजी म० श्रीबगसूजी श्रीविमलवतीजी म०।

(क) श्रीहरकूजी की दीक्षा सं० १६६१। आपकी जन्मभूमि सिवाना (मारवाड़) है। आप त्याग वैराग्य की मूर्ति हैं। आपका शास्त्र ज्ञान अच्छा है।

(ख) श्रीअमरावकंवरजी भी सिवाना की निवासी हैं। सं० १६६४ में संयम लिया। आप अच्छी प्रभावशाली सती हैं। थोकड़ा बोलचाल का आपको अच्छा ज्ञान है।

(ग) श्रीविमलावतीजी की जन्मभूमि सीवाना। आपने अपनी माता के साथ में लघुवय में दीक्षा ली। संस्कृत तथा प्राकृत भाषा का अच्छा ज्ञान है। अभी छोटी उम्र होते हुए भी प्रवचन शैली बहुत सुन्दर है। आपकी वाणी काफी विमल है।

(घ) श्रीरामूजी म० की दीक्षा सं० १६८३। आप स्वभाव के भद्र एवं सेवाभावी सती हैं। जन्म स्थान सीवाना है। सुकनाजी तथा बगुजी आपकी बड़ी सेवाभावी सती हैं।

(४) श्री अभयकुँवरजी ने विक्रम सं० १६५४ में पाली में दीक्षा ली। आप बहुत विदुषी महासतीजी हैं। आपकी प्रवचन शैली जैन जैनेतर जनता के लिए बड़ी प्रभावशाली है। आपकी सेवा में श्री हमकुँवरजी श्रीमदामकंवरजी श्रीबसकुँवरजी हैं। नेत्र ज्योति चली जाने से वर्तमान में आप भीम मेवाड़ में विराजती हैं।

(५) श्री केहरकुँवरजी जन्मस्थान सलोदा (मेवाड़) दीक्षा सं० १६६० मगसर सुद ३। आपकी शिष्यायें श्रीसज्जनकुँवरजी श्रीकंचनकुँवरजी श्रीवल्लभकुँवरजी श्रीकैलाश्याजी हैं।

(क) श्रीसज्जनकुँवरजी की जन्मभूमि तरपाल (मेवाड़) सं० १६७ में आपकी दीक्षा हुई। आपका विहार क्षेत्र उदयपुर के आसपास रहा है। शास्त्र का ज्ञान तथा आचार विचार के साथ जीवन का बहुत उन्नतिशील बनाया है।